वेदोंके याजन कर्म्म करते हुए चातुर्होत्र अर्थात् अध्यात्म और अधियज्ञ कर्म्ममें अभेद दिखानेके लिये अग्निहोत्र आदि मन्त्रोंको प्रवर्त्तित किया। वे लोग गार्हस्थ्य धर्म्म अवलम्बन करके ब्राह्मणोंसे सदा पूजित होकर परम हर्षके सहित समय बिताने लगे; याजन और अध्यापन कार्य्य करते हुए लोकके बीच विख्यात् हुए।

शिष्योंके हिमालय पर्व्वतसे पृथ्वीपर उतरनेके अनन्तर धीमान् द्वैपायन केवल पुत्रके सहित ध्यानपरायण और मौनी होकर निर्ज्जनमें बैठे रहे। उस समय महातपस्वी नारदने उन्हें उस आश्रममें देखा और मधुर वचनसे कहने लगे।

नारद मुनि बोले, हे वशिष्ठ वंशमें उत्पन्न हुए ब्रह्मर्षि! अब वेदध्वनि नहीं सुन पड़ती, तुम अकेले ही क्या सोचते हुए ध्यान परायण हो मौनावलम्बन करके बैठे हो? यह पर्व्वत वेदध्वनिसे रहित हुआ है, इसीसे रज और तमोगुणसे परिपूरित होनेसे राहुग्रस्त चन्द्रमाकी भांति शोभित नहीं होता है। जैसे पहले इसकी शोभा थी, इस समय वैसी नहीं है; यह देवर्षियोंसे सेवित होने पर भी वेदध्वनिसे रहित होके निषादोंके स्थान समान हुआ है; महातेजस्वी ऋषिवृन्द, देवता और गन्धर्व्व लोग वेदध्वनिसे हीन होकर पहलेकी भांति प्रकाशित नहीं होते हैं।

कृष्णद्वैपायन मुनिने नारदका वचन सुनके कहा। हे वेदवाद विचक्षण महर्षि! तुमने जो कुछ कहा, वही मेरे मनके अनुकूल है, तुम्हीं इस विषयको कह सकते हो, तुम सर्व्वज्ञ, सर्व्वदर्शी और सर्व्वत्र कुतूहली हो; तीनों लोकोंके बीच जो कुछ हुआ है, वह सब तुम्हारे मनमें विद्यमान है। हे विप्रर्षि! अब मुझे क्या आज्ञा है, मैं तुम्हारा कौनसा प्रियकार्य्य करूं? हे ब्रह्मर्षि! मुझे जिस विषयका अनुष्ठान करना होगा, उसे कहो। शिष्योंसे पृथक् होनेसे मेरा मन अधिक प्रसन्न नहीं है।

नारद मुनि बोले, वेदोंकी अनावृत्ति ही मल अर्थात् दोष है, ब्राह्मणोंको व्रत न करना ही मल है, वाह्लिक देश पृथ्वीका मल है, और स्त्रियोंको कौतूहल ही मल है। इसलिये तुम वेदध्वनिके जरिये राक्षस भय जनित तमको दूर करते हुए बुद्धिमान पुत्रके सहित वेद पाठ करो।

भीष्म बोले, परम धर्म्मज्ञ व्यासदेवने नारद मुनिका वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित और वेदाभ्यासमें दृढ़व्रती होकर 'वही होगा' ऐसा वचन कहा। अनन्तर वह शिक्षाके सहित ऊंचे स्वरसे मानो सब लोकोंको पूरित करते हुए निज पुत्र शुकदेवके सहित वेदपाठ करने लगे। उन पिता-पुत्रके धर्म्म विषयक विविध वाद और वेद अभ्यास करते रहने पर समुद्रानिलके जरिये सञ्चालित वायु अत्यन्त प्रबल वेगसे बहने लगा। अनन्तर 'इस समय अनाध्याय है, इसलिये वेद पाठसे निवृत्त होजाओ' ऐसा वचन कहके वेदव्यासने पुत्रको निवारण किया। शुकदेवने निवारित होते ही कौतूहलयुक्त होकर पितासे पूछा, हे ब्रह्मन्! यह वायु कहांसे प्रकट हुआ, आप इसका समस्त वृत्तान्त कहिये।

व्यासदेवने शुकदेवका वचन सुनके अत्यन्त विस्मययुक्त होकर वायु अनध्यायका निमित्त क्यों हुआ, उस विषयमें यह वचन कहा। हे पुत्र! तुम्हें दिव्यनेत्र व्यवाहित पदार्थ दर्शन निबन्धन योग संस्कृत भावसे उत्पन्न हुआ है, मन भी स्वयं निर्म्मल है; तुम तमोगुण और रजोगुणसे परित्यक्त होकर सर्व्वज्ञत्वादिके हेतु भूत शुद्ध सत्व गुणमें निवास करते हो। जैसे दर्पणमें निज परछाईं देखी जाती है, वैसे ही तुम आप ही अपनेको देखते हो; इसलिये अपनेमें वेदोंको विभावित करके निश्चयात्मिका अन्तःकरण वृत्तिको विचारो; अर्थात् वायु कहांसे उत्पन्न हुआ उसका विचार करो। सर्व्वव्यापी परमात्माके निकटवर्त्ती होनेके लिये देवयान

और पितृयान नाम दो मार्ग हैं, सात्विक उपासक लोग पुनरावृत्ति रहित जिस मार्गसे गमन करते हैं, उसका नाम देवयान है, और धूमादि पथके जरिये जिस पुनरावृत्तिप्रद स्थानमें गमन किया जाता है, उसे तामस पितृयान कहते हैं। परलोकमें गमन करनेके लिये ये दोही मार्ग हैं, इनके जरिये द्युलोक और भूलोकमें जीवोंका गमनागमन हुआ करता है। पृथ्वी और आकाशमण्डलमें जिस स्थान पर वायु गमन करता है, वह वायुके सञ्चारका स्थान सात प्रकारका है इसलिये उन सात स्थानोंके विषयको विस्तारपूर्व्वक सुनो। देह पिण्ड और ब्रह्माण्डके अभेद निबन्धनसे शरीरमें भी पांच प्रकारको वायु निवास करती है. शरीरको अवलम्बन करके जो सब इन्द्रियें हैं, और अधिदैव साध्यगणोंको अधिकार करके जो सब महाबल महाभूत हैं, उन्होंके समान साम दुर्ज्जय वायुकी उत्पत्ति होती है। समानसे उदान, उदानसे व्यान, व्यानसे अपान और अपानसे प्राण उत्पन्न होता है। दुर्द्धर्ष शत्रु तापन प्राण अनपत्य है, अर्थात् प्राणका कार्य्यान्तर नहीं है, उसके पृथक् पृथक् कर्म्मोंका व्याख्या तुम्हें कहता हूं। वायु प्राणियोंकी पृथक् पृथक् चेष्टाको सब भांतिसे निर्व्वाह करता है, और प्राणियोंके प्राणका कारण होनेसे प्राण नामसे अभिहित होता है, तथा जो वायु धूमज और उष्मज अभ्रको प्रथम पथमें चालित करता है। उसे प्रवह वायु कहा जाता है। आकाशमें स्नेहगुणयुक्त जल बरसनेके समय जो वायु स्नेह क्रमसे विद्युत्त्वको प्राप्त होके अत्यन्त द्युतिशाली होता है, वह शब्दकारी श्वसन आवह नामक द्वितीय वायु स्थानीय होकर होता है, और जो वायु सोम आदि प्रकाशमान पदार्थोंका सदा उदयकार्य्य निर्व्वाह करता है, मनीषी लोग जिसे शरीर स्थित उदान वायु कहा करते हैं, जो वायु चारों समुद्रोंके जलका धारण कर रहा है, जो वायु समस्त जल उठाके जीमूतगणको देनेके निमित्त लाता है, और जलके सहित जीमूतोंको संयोजित करके बादलोंको प्रदान करता है, उस वायुका नाम उद्वह है, यह तीसरा वायु अत्यन्त वृहत् है। और जो वायु बादलोंको ढाकर अनेक प्रकारसे विभिन्न करता है, तथा जल वर्षा आरम्भ किया करता है, उस वारि पूर्ण और वारिहीन वायुको घनाघन कहा जाता है। इकट्ठे होने पर भी सब बादल जिसके जरिये पृथक् पृथक् होजाते हैं, राढ्यमान वेणुकी भांति शब्दायमान वह वायु नद नामसे प्रसिद्ध हुआ करती है। उक्त वायु प्रजापालनके निमित्त संहत और जो स्तनवत् रिक्त होके भी मेघत्व अर्थात् सेचन कारित्वको प्राप्त होती है, जलकी भांति नष्ट नहीं होता। जो वायु आकाश मार्गमें व्योमयानोंको चलाती है, वह पर्व्वतका मर्द्दन करनेमें समर्थ सम्वह संज्ञक वायु चतुर्थ रूपसे गिनी जाती है। इकट्ठे हुए समस्त बादल वेगवान रुक्ष और नागोंको प्रभञ्जन करनेवाली वायुसे उग्र होकर बलाहक अर्थात् बलके जरिये गमन करता है, इस व्युत्पत्ति लभ्य अभिधानको प्राप्त होता है, तथा जिससे दारुण उत्पात धूमकेतु और सम्वर्त्त मेघका सञ्चार हुआ करता है, जो आकाश मण्डलमें गर्ज्जते हुए बादल विशिष्ट होकर निवास करता है, वह विवह नाम महा बलवान वायु पञ्चम रूपसे निर्द्दिष्ट है। जिसके वेगबलसे समस्त दिव्य जल नीचे न गिरके आकाशमार्गके ऊपरके हिस्सेमें निवास करता है और आकाश गङ्गाका पवित्र जल जिससे विष्टब्ध हुआ करता है, सूर्य्य सहस्र किरणधारी होनेपर भी दूरसे जिसके प्रतिघातके कारण एक किरणकी भांति मालूम होके पृथ्वीको प्रकाशित करता है, चन्द्रमा क्षीण होके भी जिसके बलसे फिर मण्डलाकारसे पूर्ण होता है। हे जापक प्रवर! वह परिवह

नाम वायु षष्टमरूपसे गिनी जाती है। जो वायु प्रलयकालमें सब प्राणियोंके प्राणको संहार करती है, मृत्यु तथा वैवस्वत अर्थात् चौदह यमके अन्तर्गत मरण और सूर्य्य पुत्र यम, ये दोनों जिसके पथका अनुसरण किया करते हैं, हे अध्यात्म चिन्तक पुत्र! ध्यानाभ्यासमें अनुरक्त मनुष्योंके लिये जो अमृत रूपसे कल्पित होती है, उस बाह्याभ्यन्तर विषयोंसे उपरत बुद्धि वृत्तिके सहारे उसे अवलोकन करो। दक्ष प्रजापतिके दस हजार पुत्र वेगके कारण जिसके निकटवर्त्ती होकर ब्रह्माण्ड भेदके दिग्दिगन्तमें गमन किया है, जिसके जरिये जीव उपसृष्ट होकर फिर निवृत्त नहीं होते, वह परा नाम वायु सबसे श्रेष्ठ और सबसे दुरतिक्रमणीय है। इस ही प्रकार आदके खण्डन शून्य अदीना परिचितिकी पुत्र परम अद्भुत वायु सर्व्वत्र गमन और समस्त वस्तुओंको धारण करते हुए सदा बह रही है। उस प्रवहमान वायुके जरिये जो यह उत्तम पर्व्वत सहसा कम्पित हुआ था, यही अत्यन्त आश्चर्यका विषय है। हे तात! यह वेद सर्व्वव्यापी विष्णुकी निश्वास-वायु है, यह जब वेगपूर्व्वक समीरित होकर सहसा ऊंचे स्वरसे पाठ किया जाता है, तब स्थावर जङ्गमात्मक जगत् व्यथित हुआ करता है। मूल पुरुषका निश्वास यदि सहसा उत्थित होकर कदाचित जगत्को संहार करे; इसहीसे सब कोई व्यथित होते हैं,—इसलिये वेद जाननेवाले पुरुष प्रबल वायु बहनेके समय वेद नहीं पढ़ते; वेदरूप वायु वेगपूर्व्वक उच्चारित होनेपर बाह्यवायु भयजनक होती है। पराशर पुत्र प्रभु व्यासदेवने यह सब वचन कहके बोले, 'हे पुत्र! अध्ययन करो'—ऐसा कहके उस समय आकाश गङ्गामें स्नान करनेके लिये गमन किया।

३२८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, इतने ही समयके बीच महर्षि नारद स्वाध्याय-रत शुकदेवसे वेदका समस्त अर्थ पूछनेकी अभिलाषा करके आकाश मार्गसे उनके समीप उपस्थित हुए। शुकदेवने देव-ऋषि नारदको आया हुआ देखके अर्घ दान करके वेदोक्त विधिके अनुसार उनकी पूजा की। अनन्तर नारद मुनि आनन्दित होके प्रसन्नचित्तसे बोले, हे तात धार्म्मिक प्रवर! कहो, तुम्हें कैसे कल्याणसे संयोजित करूं? हे भारत! शुकदेवने नारद मुनिका वचन सुनके उत्तर दिया, इस लोकमें जो हितकर हो, आप मुझे उस ही कल्याणसे सम्पन्न करिये।

नारद मुनि बोले, पहले समयमें आत्मानुशीलन परायण तत्त्वजिज्ञासु ऋषियोंके निकट भगवान् सनत्कुमारने यह कथा कही थी, कि विद्याके समान नेत्र नहीं है, सत्यके समान तपस्या नहीं है, रागके समान दुःख नहीं है, और त्यागके समान दूसरा सुख नहीं है। पाप कर्म्मोंसे सदा निवृत्त रहना ही पुण्यशीलता है, सद्व्यवहार और सदाचार ही अत्यन्त उत्तम कल्याण है। असुखकर मनुष्य जन्म पाके जो पुरुष विषयासक्त होता है, वह मुग्ध हुआ करता है, विषयासक्त पुरुष कदाचित दुःख मोचन करनेमें समर्थ नहीं होता, वह केवल दुःखका ही लक्षणमात्र है। विषयासक्त मनुष्यकी बुद्धि मोह जालसे जड़ित होकर विचलित होती है। जो मनुष्य मोह जालमें छिपा रहता है, वह इस लोक और परलोकमें दुःख भोग करता है। जो लोग कल्याणकी इच्छा करें, उन्हें चाहिये, कि सर्व्व प्रयत्नसे काम और क्रोधको निग्रह करें, क्यों कि काम और क्रोध कल्याणको नष्ट करनेके लिये उद्यत हुआ करते हैं। क्रोधसे सदा तपस्याकी रक्षा करे, मत्सरसे श्रीको बचावे, मानापमानसे विद्याकी रक्षा करे और प्रमादसे आत्म-रक्षा करनी चाहिये। अनृशंसता ही परम धर्म्म है,

क्षमा ही परम बल है, आत्मज्ञान ही परम ज्ञान है, और सत्यसे श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है। सत्य कहना ही कल्याणकारी है, और हित वचन कहे; जो प्राणियोंके लिये अत्यन्त हितकर है, मेरे मतमें वही सत्य है। सब कार्य्योंके त्यागी, आशारहित और निष्परिग्रह होकर जिन्होंने सब विषयोंको परित्याग किया है, वेही विद्वान् तथा वेही पण्डित हैं। इस लोकमें जो लोग अपनी वशीभूत इन्द्रियोंके जरिये इन्द्रिय विषयोंका सम्भोग करते हैं, और जो सब विषयोंमें आसक्ति रहित, शान्त-चित्त, निर्विकार और समाहित होते हैं, और आत्मभूत देहेन्द्रियोंके सहित उपस्थित रहके स्वतन्त्र भावसे विद्यमान रहते हैं, तथा देह आदिके सहित तदात्म रहित होकर केवल स्वरूप होते हैं, वे थोड़े ही समयमें मुक्त होकर परम कल्याण प्राप्त करते हैं।

हे मुनि! जिसका जीवोंके सहित सदा दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण नहीं होता, वह परम कल्याण लाभ करता है। किसी जीवकी हिंसा न करे, सबके सङ्ग मित्रताचरण करे, यह मनुष्य जन्म पाके किसीके सङ्ग शत्रुता न करे। चित्त विजयी आत्मज्ञ लोगोंकी अकिञ्चनता, सन्तोष और निराशात्व ही परम कल्याण है, ऐसा प्राचीन लोग कहा करते हैं। हे तात! परिग्रह परित्याग कर जितेन्द्रिय होके इस लोक और परलोकमें शोक रहित स्थानमें निवास करो। जिन लोगोंके भोग वस्तु नहीं हैं, वे शोक नहीं करते; इसलिये अपनी जो कुछ भोग्यवस्तु हो, उसे परित्याग करो। हे प्रिय दर्शन! भोग्यवस्तुओंके त्यागनेसे तुम पाप तापसे मुक्त होगे। जो लोग अजित विषयोंको जय करनेकी इच्छा करें, उन्हें तपस्यामें रत, दान्त, मौनव्रती संयतचित्त और सब आसक्ति-योंसे विमुक्त होना उचित है। जो लोग ब्राह्मण गुणोंमें आसक्त और सदा एकमात्र शास्त्रोक्त होता है, वह थोड़े ही समयके बीच परम सुख लाभ करता है। द्वन्द्वाराम प्राणियोंके बीच जो अकेला मौनी होकर क्रीड़ा करता है, उसे प्रज्ञान तृप्त जानना चाहिये। जो ज्ञानसे तृप्त होता है, वह कदाचित् शोक नहीं करता। शुभ कर्म्मके जरिये देवत्व प्राप्त होता है, शुभा-शुभ मिश्रित कर्म्मके जरिये मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ करता है, और केवल अशुभ कर्म्मोंके जरिये अधम जन्म अर्थात् तिर्य्यग् योनिमें जन्म होता है। इस संसारमें जीव मृत्यु और जराके दुःखसे सदा पीड़ित होकर परिणामको प्राप्त होता है, उसे तुम क्यों नहीं अनुभव करते हो; अहित विषयोंमें हितज्ञ, अनिश्चल वस्तुमें ध्रुव ज्ञान सम्पन्न और अनर्थ विषयमें अर्थज्ञ होकर तुम क्यों नहीं प्रबुद्ध होते हो? जैसे कोषकार बहुतसे आत्मज सूत्रके जरिये बंधकर मोह वशसे अपनेको नहीं जान सकता, तुम भी उस ही प्रकार अपनेको बांधके जाननेमें अस-मर्थ होरहे हो; इस संसारमें परिग्रहका कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि परिग्रहयुक्त पुरुष ही दोषवान हुआ करते हैं, जैसे कोष-कार कीटनिज परिग्रह निबन्धनसे बद्ध होता है। जैसे तालावके कीचड़में फंसके जङ्गली हाथी विशीर्ण होते हैं, वैसे ही स्त्री, पुत्र, कुटुम्बी लोगोंमें आसक्त जीव अवसन्न हुआ करते हैं। जैसे बड़े जालके सहारे मछलियें खींच कर स्थलमें लाने पर दुःखी होती हैं, वैसे ही स्नेह-जालके जरिये आकर्षित जीवोंको अत्यन्त दुःखित देखो। कुटम्ब, पुत्र, स्त्री, शरीर और धन सञ्चय आदि जो कुछ रहता है, परलोकमें जानेपर वह सब न रहेगा, अपना सुकृत और दुष्कृत कर्म्ममात्र ही स्थायी होगा। सब वस्तु परित्याग कर अवश होके जब तुम्हें गमन करना होगा, तब तुम क्यों अनर्थमें आसक्त होकर अपने प्रयोजनका अनु-ष्ठान करनेमें विरत होरहे हो। विश्रान्ति

रहित आलम्बनहीन, पाथेय वर्ज्जित, अदैशिक अन्धकारसे परिपूरित दुर्गम मार्गमें तुम अकेले किस प्रकारसे गमन करोगे ? तुम्हारे प्रस्थान करनेपर कोई भी पश्चात् न जायगा, तुम्हारे गमन करनेपर केवल सुकृत और दुष्कृत कर्म्म तुम्हारा अनुगमन करेंगे। विद्या, कर्म्म, शौचा-चार और बहुत बृहत् ज्ञान प्रयोजनका अनुस-रण नहीं करते, परन्तु जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ है, वैसा पुरुष मुक्त होता है। ग्रामवासी लोगोंका अनुराग ही यह बन्धन-रस्सी है, सुकृ-तशाली मनुष्य इस बन्धन-रस्सीको काटके गमन करते हैं और दुष्कर्म्मी पुरुष उसे नहीं काट सकते। रूप जिसका किनारा, मन स्रोत स्पर्श द्वीप रस लहर, गन्ध कीचड़, शब्द जल, क्षमा नौका चलानेका दण्ड और जिसका धर्म्म नौका आकर्षित करनेकी रस्सी है; वह सत्य मयी स्वर्गमार्ग दुरावहा त्यागरूपी वायुपथगा मिनी शीघ्रतासे गमन करनेवाली नौतार्थ्या नदीसे पार होगा। धर्म्म अधर्म्मको परित्याग करो और सत्य तथा मिथ्याको छोड़ो, सत्यानृत दोनोंको छोड़के जिसके जरिये त्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो सङ्कल्पहीनतासे धर्म्मको परित्याग करो और अलिप्सा निबन्धनसे अध-र्म्मको छोड़ो, बुद्धिके सहारे सत्य और मिथ्याको परित्याग करो और परमार्थ निश्चय निबन्धनसे बुद्धिको त्यागो। हड्डी, स्थूणा, स्नायुयुक्त मांस, रुधिर लिपटे हुए चर्म्मावनद्ध दुर्गन्धि, मूत्र-पु-रीषसे पूरित जरा-शोकसे युक्त रोगका स्थान, आतुर रजोगुण प्रधान इस अनित्य भूतावास शरीरको परित्याग करो।

यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त संसार और महत् तत्त्व अर्थात् बुद्धि महाभूतमय वे पांचो महाभूत, पञ्चप्राण और पञ्च इन्द्रिय तथा सत्त्व, रज, तम, ये तीनों गुण वशीभूत होकर देह त्यागनेके अनन्तर परलोकगामी जीव अव्यक्त-संज्ञक सप्तदश राशिरूपसे निर्णीत होता है। व्यक्त अव्यक्त संज्ञक शब्द स्पर्श आदि इन्द्रियोंके विषय और मन्तव्य, बोधव्य तथा अहङ्कर्त्तव्यके सहित मिलके व्यक्तमय चौबीस गुण हुआ करते हैं, जो इन सब गुणोंसे संयुक्त होता है उसका नाम पुरुष है। त्रिवर्ग, सुख, दुःख, जीवन, इन सबको जो यथार्थरूपसे जानता है, वही उत्पत्ति और लय किस प्रकारसे होती है, उसे जान सकता है। जानने योग्य विषयोंमें जो कुछ जानना होता है, उसे पारम्पर्य्यक्रमसे जानना उचित है। इन्द्रियोंके जरिये जिन जिन विष-योंका ज्ञान होता है; उन्हीं विषयोंको व्यक्त कहा जाता है और अतिन्द्रिय विषयोंको अव्यक्त जानना चाहिये। जीव सदा इन्द्रियोंके जरिये धाराबाहिक क्रमसे तृप्त होता है। लोगोंमें आत्माको वितत और आत्मामें लोगोंको वितत अवलोकन करे, सब अवस्थामें सदा सर्व्व-भूत-दर्शी परावर द्रष्टाकी ज्ञानमूलक शक्ति उसे नहीं देखती। अशुभ कर्म्मोंके जरिये सब भूतोंका संयोग साधित नहीं होता; ज्ञानके जरिये जिन्होंने विविध मोहज क्लेशोंको अति-क्रम किया है, लोकमें बुद्धि प्रकाशके जरिये उससे लोकाचार हिंसित नहीं होता। आत्मामें अधिष्ठित अनादि निधन अव्यय जीवको योगो-पायवित् भगवान अकर्त्ता और अमूर्त्त कहते हैं, जो लोग अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये सदा दुःखित होते हैं, वे दुःखको मिटानेके लिये अनेक प्रकारसे जीवहिंसा किया करते हैं। अन-न्तर वे फिर नये नये दूसरे प्रकारके बहुतेरे कार्य्य आरम्भ करते हैं, आतुर पुरुषके अपथ्य भोजनकी भांति वे पुनर्व्वार उसहीके जरिये दुःखित हुआ करते हैं मोहसे अन्धे मनुष्य सदा दुःखकर विषयोंमें सुख ज्ञान करते हैं, इसीसे वे सदा अपने किये हुए कर्म्मोंके जरिये मथने योग्य वस्तुकी भांति मथित और बद्ध हुआ करते हैं, अनन्तर वे लोग कर्म्मोंके उदयसे इस लोकमें भिन्न योनिसे बद्ध होते हैं और बद्ध होकर

बहुत दुःख सहते हुए चक्रकी भांति संसारमें घूमा करते हैं। तुम कर्म्मोंसे निवृत्त होके बन्धनसे छूटे हो; इसलिये सर्व्ववित और सर्व्वजित होके भावरहित होजाओ। तपोबलसे संयमके हेतु इन्द्रियमात्रसे उत्पन्न बन्धनको अतिक्रम करके बहुतोंने बाधा रहित सुखोदय युक्त सिद्धि प्राप्त की है।

२२८ अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, मनुष्य अशोक होने वा शोकनाशके निमित्त शान्तिकर तथा कल्याणस्वरूप शास्त्रको सुनकर ज्ञान लाभ करता है और उस ही ज्ञानको पाके सुखी होता है। सहस्रों शोकके विषय और सैकड़ों भयजनक कार्य्य प्रतिदिन मूढ़ मनुष्योंको घेरते हैं, पण्डितोंके निकट वे प्रविष्ट नहीं हो सकते; इसलिये अनिष्ट नाशके लिये मेरे समीप एक इतिहास सुनो। यदि बुद्धि वशमें रहे, तो शोक नष्ट होता है, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य अनिष्टके संयोग और इष्ट वियोगसे मानस-दुःखोंमें आक्रान्त हुआ करते हैं। विषयोंके अतीत होनेपर उनके गुणोंकी चिन्ता करे, जो पुरुष उसमें समादर करता है, वह स्नेह-बन्धनसे नहीं छूटता जिस विषयमें अनुराग उत्पन्न हो, उसमें दोषदर्शी होवे, अनिष्टकी बढ़ते हुए देखके मनुष्य उस ही समय विरक्त होवे। जो पुरुष अतीत विषयोंकी अनुशोचना करता है, उसमें धर्म्म, अर्थ और यश कुछ भी नहीं रहता, इसलिये जो नहीं है, उसमें निरक्त न होवे, उस विषयकी चिन्ता करनेसे वह कभी प्रत्यावृत्त न होगा, जैसे सब भूत गुणोंसे युक्त होते हैं, वैसे ही वियुक्त हुआ करते हैं, सब विषय एक ही पुरुषके शोकास्पद नहीं होते। जो लोग मृत वा अतीत लोगोंके लिये शोक करते हैं, वे दुःखके जरिये दुःख लाभ करके दो प्रकारके अनर्थमें फंसते हैं। लोकके शोक विस्तार अवलोकन करके ज्ञानवान पुरुष आंसू नहीं बहाते; सम्यकदर्शी मनुष्योंके किसी विषयमें भी आंसू नहीं गिरते। शारीरिक वा मानसिक दुःखके अभिघात उपस्थित होनेपर जिसमें यत्न नहीं किया जा सकता; उस विषयमें चिन्ता करनी अनुचित है। दुःखके विषयकी चिन्ता न करनी ही दुःख-नाशकी महौषधि है। दुःखकी चिन्ता करनेसे दुःख दूर नहीं होता, बल्कि अत्यन्त वर्द्धित होता है। बुद्धिसे मानस दुःख और औषधिके जरिये शारीरिक दुःख दूर करे, विज्ञानकी यही सामर्थ्य है; इसलिये बालकके सङ्ग समान न होवे रूप, यौवन, जीवन, धनसञ्चय, आरोग्य और प्रिय सहवास, ये सभी अनित्य हैं, इसलिये पण्डित लोग उनकी आकांक्षा नहीं करते। साधारण लोगोंको जो दुःख हुआ करता है, एकबारही उसके लिये शोक करना उचित नहीं है। यदि दुःखका उपक्रम दीख पड़े, तो उसके लिये शोक न करके उसके प्रतिकारकी चेष्टा करे। इस जीवनमें सुखकी अपेक्षा निःसन्देह दुःख ही अधिक है। इन्द्रिय विषयोंमें मोह वशसे स्नेह प्रकाश करना ही मरणके समान अप्रिय है।

जो मनुष्य सुख दुःख दोनो ही परित्याग करता है, वह अत्यन्त सुख स्वरूप ब्रह्मभाव लाभ करनेमें समर्थ होता है, पण्डित लोग उसके लिये शोक नहीं करते। सब अर्थोंके त्यागनेसे दुःख होता है, उसकी रक्षा करनेमें भी कोई सुख नहीं है। अर्थ उपार्ज्जन करनेमें भी बहुत दुःख सहना होता है; इसलिये अर्थ नाशके विषयकी चिन्ता न करे, साधारण मनुष्य पृथक् पृथक् रूपसे विशेष विशेष धनकी अवस्था प्राप्ति पूर्व्वक तृप्त न होकर विध्वंस लाभ करते हैं और पण्डित लोग सन्तोष लाभ किया करते हैं, सब विषयोंका ही अन्त होता है, उन्नति होनेसे ही पतन होता है, संयोग होनेसे वियोग उपस्थित हुआ करता है और उत्पन्न होनेसे

अवश्य मरना होता है। प्यासका अन्त नहीं है तुष्टि ही परम सुख है; इसलिये पण्डित लोग सन्तोषको ही परम धन समझते हैं, गमनशील अवस्था निमिष भर भी नहीं ठहरती, जब कि अपना शरीर ही अनित्य है, तब कौन नित्य-विषयका अनुशीलन करेगा। ज्ञानी लोग सत्य-थको अवलम्बन करके प्राणियोंको सत्ताका विषय अनुशीलन करके परम गति दर्शन करते हुए मनके अतीत वस्तुओंके निमित्त शोक नहीं करते।

मनुष्यके काम भोगसे तृप्त न होकर विषय सञ्चय करते रहनेपर मृत्यु इस प्रकार उसे ग्रहण करके चल देती है, जैसे बाघ हरिनको उठा ले जाता है। जिससे दुःख दूर हो, वैसा उपाय अवलोकन करे, शोक रहित होकर कार्य्यारम्भ करे, मनुष्य मुक्त होनेसे ही दुःख रहित होता हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धमें उपभोगके अतिरिक्त और कुछ भी सुख नहीं देखा जाता। जैसे प्राणियोंका पहले संयोग वशसे दुःख नहीं होता, वैसे ही प्रकृतिस्थ पुरु-षोंके विप्रयोगमें भी दुःख न करे। धीरजके सहारे शिश्न और उदरकी रक्षा करे, नेत्रके जरिये हाथ और पांवकी रक्षा करे, मनके जरिये आंख तथा कानकी रक्षा करे और विद्याके सहारे मन तथा बचनकी रक्षा करनी चाहिये; परिचित वा अपरिचित लोगोंमें प्रणय प्रतिसंहार करके अनुद्धत होकर जो पुरुष विचरता है, वही सुखी और वही पण्डित है। जो आत्मामें अनुरक्त होकर निरपेक्ष और निर्लोभभावसे बैठा रहता है और आत्माकी सहाय करके विचरता है, वही सुखी होता है।

२३० अध्याय समाप्त।

नारद मुनि बोले, जब मनुष्योंको सुख-दुःखमें विपर्य्यास अर्थात् सुखमें दुःखबुद्धि और दुःखमें सुखबोध होता है, तब प्रज्ञा सुनीति अथवा पौरुष उसका परित्राण नहीं कर सकते, स्वभावके अनुसार यत्न करे, जो यत्न करता है, वह अवस ः नहीं होता; प्रियशरीरका जरा मरण रोगसे उद्धार करे। दृढ़ धनुर्द्धरोंके जरिये प्रयुक्त चोखे बाणोंकी भांति शारीरिक और मानसिक रोग शरीरको दुःख करते हैं। प्यासके कारण व्यथित और अयुक्त जीनेकी इच्छा करनेवाले अवश मनुष्योंके विनाशके निमित्त शरीर अपकृष्ट होजाता है। जैसे नदियोंके स्रोत सदा बहते रहते हैं, कदाचित निवृत्त नहीं होते, वैसे ही रात और दिन मनुष्योंको परमायुको ग्रहण करते हुए बार बार गमन करते हैं। शुक्ल और कृष्णपक्ष दोनोंके ये अत्यन्त पौर्व्वापर्य्य उत्पन्न हुए जीवोंको जराग्रस्त करते हैं, निमिषभर नहीं ठहरते हैं। यह अजर आदित्य जो बार बार अस्त होके फिर उदय होता है, वही प्राणियोंके सुखदुःखको जीर्ण करता है। रात्रि मनुष्योंके अदृष्टपूर्व्व अपरिशङ्कित इष्टानिष्ट भावोंको आदान करके अस्त हुआ करती है। पुरुषका कर्म्म यदि पराधीन न हो, तो जो पुरुष जिस वस्तुकी इच्छा करें, कामनाके अनुसार वह उसे प्राप्त कर सकें, संयमशील दक्ष और बुद्धिमान मनुष्य सब धर्म्मोंसे रहित होनेसे निष्फल होते दीख पड़ते हैं और दूसरे निर्गुण अधम पुरुष मूर्ख तथा आशाहीन होके भी सब काम्यवस्तुओंको भोगते हुए दीख पड़ते हैं।

कोई पुरुष सदा जीवहिंसा करनेमें उद्यत और लोगोंको ठगनेमें अनुरक्त रहके सुखसे समय बिता रहे हैं और किसी पुरुषके कुछ चेष्टा न करके बैठे रहनेपर भी लक्ष्मी उनके निकट उपस्थित होती है, तथा कोई मनुष्य अपने कर्म्मके अनुसार पाने योग्य अर्थको भी नहीं पाते हैं; पुरुषके स्वभावके अनुसार अपराध अवलोकन करो। अन्यत्र उत्पन्न हुआ शुक्र अन्यत्र गमन करता है वही शुक्र योनिमें पड़नेसे गर्भ होता है,

कभी नहीं भी होता, उसकी उपलब्धि आमके बीरके भांति जानी जाती है। कोई मनुष्य पुत्रकी कामना करते हुए सदा पुत्रोत्पत्तिके निमित्त सावधान रहते हैं, तोभी उनके सन्तान नहीं होती और किसी किसीके विषधर सर्पकी भांति गर्भसे व्याकुल होनेपर भी उनके आयुष्मान पुत्र उत्पन्न होता है। सन्तानकी इच्छा करनेवाले मनुष्य देवपूजा और तपस्या करके दीनभावसे दश महीना बिताते हैं, परन्तु उनका पुत्र उत्पन्न होके अन्तमें कुलाङ्गार होजाता है। दूसरे पिताके सञ्चित बहुतसे धन धान्यको पाके कुशलपूर्व्वक सम्वर्द्धित होते हैं। स्त्री पुरुषोंके परस्पर अभिप्रायके अनुसार मैथुनके समागम समयमें गर्भ उपद्रवकी भांति आविष्ट होके योनिलाभ करता है। प्राणरोध होनेपर भी जीव उस ही समय स्वर्ग नरकके बीज भूत मांस श्लेष्मसे युक्त स्थूल शरीरान्तरको प्राप्त होता है, मरनेके अनन्तर सदा ही शरीरान्तरके सहित सम्बन्ध हुआ करता है, देहबन्धका कभी विच्छेद नहीं होता। जैसे जलमें नौकाको डूबती हुई देखके चढ़नेवालोंकी सहायताके लिये दूसरी नौका आके उपस्थित होती है, वैसे ही परिणामशील शरीरकोविनष्ट होते देखके जीवके अवलम्बके निमित्त कर्म्मफल उस ही समय देहान्तरकी संयोजना कर देते हैं। सङ्गतिक्रमसे जठरमें पड़े हुए रेतविन्दुको किस प्रकार यत्नके जरिये तुम जीवित गर्भ रूपसे देख रहे हो। जिस जठरमें पड़के खाने पीनेकी सब वस्तु जीर्ण होती हैं, उस उदरमें अन्नकी भांति गर्भ क्यों नहीं जीर्ण होता? गर्भमें मूत्र और मलकी भांति स्वभावसेही रुकी रहती है, गर्भ धारण करने वा छोड़नेमें कोई अचेतन न कर्त्ता नहीं है। उदरमें उत्पन्न गर्भस्राव हुआ करता है, और उस गर्भस्राव निबन्धनसे बहुतोंकी मृत्यु भी होजाती है।

इस योनि सम्बन्ध निबन्धनसे जो लोग बीज छोड़ते हैं, वे पुत्र कन्याके बीच किसी एक सन्तानको पाते हैं और फिर द्वन्द्वयोगसे संयुक्त होते हैं। अनादि प्रवाह सम्बन्धसे देहकी आयुर्नष्ट होते रहनेपर गर्भवास, जन्म, बाल्य, कौमार पौगण्ड, यौवन, स्थविरता, जरा, प्राणरोध और नाश इन दो अवस्थाओंके बीच सातवीं दशा स्थविरता अर्थात् पुत्र दारा कुटुम्ब आदिको पालन करनेके लिये व्याकुलता और नवीं दशा प्राणरोध ये दोनों अवस्था पञ्चभूतोंमें ही प्राप्त हुआ करती है; आत्माका इसके सङ्ग कुछ भी संसर्ग नहीं है। मनुष्योंके अभ्युदयके विषयमें कुछ उपाय नहीं है, इसमें सन्देह विरह है, क्यों कि व्याधके जरिये क्षुद्र हरिनोंकी भांति, ये व्याधिसे सदा छिन्न हुआ करते हैं। व्याधिसे पीड़ित होकर जिसे बहुत साधन परित्याग करना होता है, चिकित्सक लोग यत्नवान होके भी उनके मनके क्लेशको दूर नहीं कर सकते। निपुण वैद्य जो कि चिकित्सा कार्य्यमें दक्ष होके औषध-सञ्चय कर रखते हैं, वे भी व्याधके जरिये प्रपीड़ित हरिनकी भांति मृत्युसे आक्रान्त होते हैं। वे लोग कषाय रस और विविध घृत सेवन करके भी मतवाले हाथीके जरिये टूटे हुए वृक्षकी भांति जरा जीर्ण दीख पड़ते हैं।

इस पृथ्वीमण्डल पर रोगसे आर्त्त मृग पक्षी, श्वापद और दरिद्र मनुष्योंकी कौन चिकित्सा किया करता है; ये सब प्रायःपीड़ित नहीं होते। जैसे प्रबल पशु निर्व्वल पशुओंको आक्रमण करते हैं, वैसे ही सब रोग घोर दुराधर्ष उग्र तेजस्वी राजाओंको आक्रमण करके आदान किया करता है। इस ही भांति दुःखसे पीड़ित मोहशोकसे युक्त सब लोग स्रोतमें छोड़ी हुई वस्तुकी भांति बलवान कालके जरिये हृत होरहे हैं। स्वभावको निग्रह करनेमें नियुक्त होकर देहधारी लोग बहुतसे धन राज्य वा तपस्याके जरिये कदाचित स्वभावको अतिक्रम करनेमें समर्थ नहीं होते। अभ्युदयका फल

उदय होने पर सभी सर्व्वकामी होते हैं, मृत वा जीर्ण नहीं होते और अप्रिय दर्शन नहीं करते सब ही लोगोंके ऊपर ऊपर गमन करनेकी इच्छा करते हैं, और शक्तिके अनुसार यत्न किया करते हैं, परन्तु वह घटना नहीं होती; अप्रमत्त, शठ, शूर और विक्रमी मनुष्य ऐश्वर्य्य-मदसे मत्त और मद्यमदसे मतवाले मनुष्योंकी सब भांतिसे उपासना किया करते हैं। किसी किसी पुरुषके क्लेश असमीचित होकर निवृत्त होते हैं, और कोई कोई मनुष्य प्रकृत रूपसे सब क्लेशोंको भोग किया करते हैं। कर्म्म-फल भोगनेके विषयमें महत् फलकी विषमता देखी जाती है, कोई कोई पालकी उठाते हैं, कोई पालकीमें चढ़के चलते हैं। समृद्धिकाम मनुष्योंके बीच जिनके रथ घोड़े आदि अग्रसर होते हैं, वे स्वतन्त्र हैं। कोई कोई मनुष्य सौ स्त्रियोंसे युक्त होते और उनके यहां अन्य प्रकारकी सैकड़ों स्त्रियां भी वर्त्तमान रहती हैं, स्त्री पुरुष दोनोंके संसर्गसे जो सब जीव सन्तुष्ट होते हैं, उनके बीच मनुष्य लोग एक एक करके जिस स्थानमें गमन करते हैं, वह स्थानस्वतन्त्र है, यह अवलोकन करो; इस विषयमें मोह मत करो। धर्म्म और अधर्म्मको त्यागो सत्य और मिथ्या दोनोंको परित्याग करो, जिसके जरिये त्याग करते हैं, उसे भी त्याग दो। हे ऋषिसत्तम! देवताओंने जिसके सहारे मर्त्य लोकको त्यागके स्वर्गमें गमन किया है, तुम्हारे समीप मैंने उस ही परम गुप्त विषयको कहा है।

परम बुद्धिमान् और शुकदेव नारद मुनिका वचन सुनके उसे अनुशीलन करते हुए निश्चय लाभ न कर सके। उनने विचारा, कि पुत्र-स्त्री आदिके प्रतिपालनमें महान् क्लेश और विद्याभ्यासमें अत्यन्त परिश्रम है, इसलिये जिसमें अधिक क्लेश न हो और महोन्नति हो, ऐसा नित्य स्थान कौनसा है? अनन्तर धर्म्मके परा-वरज्ञ शुकदेवने मुहूर्त्त भर तक अपने उपायके निश्चय करनेमें प्रवृत्त रहके निःश्रेयस सम्बन्धिनी परम गति ही निर्णय की, मैं जिस प्रकार फिर इस योनि सङ्कर-सागरमें न लौटूं, असंश्लिष्ट अर्थात् सर्व्व उपाधिसे छूटकर किस प्रकार उस परम धाममें गमन करूंगा, जिस स्थानमें जानेसे फिर लौटना नहीं पड़ता सर्व्व सङ्ग परित्याग करके मनही मन उस ही उपायको निश्चय करते हुए मैं उस परम भावकी आकांक्षा करता हूं। जिस स्थानमें मेरी आत्मा शान्ति-लाभ करेगी और मैं जिस स्थानमें अक्षय अव्यय और शाश्वतभावसे निवास करनेमें समर्थ हूंगा। उस ही स्थानमें गमन करूंगा, योगके बिना वह परम गति नहीं मिल सकती, और बुद्ध पुरुषका कर्म्मके जरिये देहबन्ध कदापि साधित नहीं होता। इसलिये गृह-स्वरूप देह परित्यागके योग अवलम्बन करते हुए वायुस्वरूप तेजोमय सूर्य्यमण्डलके बीच प्रवेश करूंगा। इस सूर्य्य मण्डलका मेघमण्डलकी भांति नाश नहीं होता और जैसे चन्द्रमा देवताओंके जरिये कम्पित होके पृथ्वीमें पतित होता है, तथा फिर आकाशमें चढ़ता है, सूर्य्य वैसा नहीं है; चन्द्रमण्डल क्षीण होके फिर परिपूर्ण होता हैं, इस ही प्रकार ह्रास वृद्धिको मालूम करके मैं उसकी आकांक्षा नहीं करता। सूर्य्य सदा तीक्ष्ण किरणोंके जरिये सब लोगोंको सन्तापित करता है और सदा अक्षयमण्डल रहके सब पदार्थोंसे तेज आकर्षण किया करता है। इस ही कारणसे दीप्त तेजशाली आदित्यमण्डलमें गमन करनेकी मेरी रुचि होती है। इस शरीरको छोड़के दुर्द्धर्ष होकर मैं निशङ्कचित्तसे सूर्य्यके स्थानमें वास करूंगा। ऋषियोंके सहित मैं अत्यन्त दुःसह सूर्य्यतेजमें प्रविष्ट हूंगा। नाग, पर्व्वत, उर्व्वी, दिशा, आकाश, देव, दानव, गन्धर्व्व, पिशाच, सर्प, राक्षस और लोकके बीच जो सब जीव हैं, उन सबकी

ही आमन्त्रण करता हूं। मैं सूर्य्यमण्डलमें निःसन्देह प्रवेश करूंगा। ऋषियोंके सहित सब देवता मेरे योगबलको अवलम्बन करें।

अनन्तर शुकदेव लोक विख्यात नारद महर्षिसे अनुमति मांगके उनकी आज्ञासे पिताके निकट गये। शुकदेवने महानुभाव कृष्णद्वैपायनमुनिको प्रणाम किया और प्रदक्षिण करके अपना अभिलषित विषय पूछा। महात्मा व्यासदेव शुकदेवका ऐसा वचन सुनके प्रसन्न होकर उनसे बोले, हे पुत्र! तुम इस समय उतनी देरतक निवास करो, जबतक कि तुम्हें देखके मेरे दोनों नेत्र प्रसन्न हों। शुकदेवने निरपेक्ष निःस्नेह और संशयरहित होकर मोक्ष विषयको सदा विचारते हुए गमन करनेमें मन लगाया। वह मुनिसत्तम पिताको परित्याग करके सिद्धोंसे सेवित कैलाशपर्व्वतके ऊपर जानेमें प्रवृत्त हुए।

३३१ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे भारत! द्वैपायनपुत्र शुकदेव पहाड़के शिखरपर चढ़के निर्ज्जन तृणरहित समतल स्थलमें बैठे। उस क्रमयोगके जाननेवाले शुकदेवने चरण प्रभृति समस्त शरीरमें, शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार बुद्धिको धारण किया। अनन्तर सूर्य्यके उदय होते न होते विद्वान् व्यासपुत्र पूर्व्वकी ओर मुंह करके हाथ-पांव स्थिर कर विनीतभावसे बैठ रहे। बुद्धिमान व्यासपुत्रने जिस स्थानमे योग करनेका उपक्रम किया, वहांपर पक्षियोंका संघात, शब्द वा उत्कट दर्शन योग्य विषय कुछ भी न था। उन्होंने उस समय सर्व्वसङ्गसे मुक्त आत्माका दर्शन किया। शुकदेव आत्मदर्शन करनेके अनन्तर हंसने लगे। मोक्षमार्गकी प्राप्तिके लिये उन्होंने फिर योग अवलम्बन करके महायोगीश्वर होकर आकाश अतिक्रम करनेका उपक्रम किया। अनन्तर वह देवर्षि नारदको प्रदक्षिण करके उस परमर्षिसे निज योगका विषय निवेदन करने लगे।

शुकदेव बोले, हे तपोधन! मैंने पथ देखा और उस ही मार्गमें गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ हूं। हे महातेजस्वी! आपकी स्वस्ति होवे, मैं आपकी कृपासे अभिलषित स्थानमें गमन करूंगा।

भीष्म बोले, द्वैपायन पुत्र शुकदेवने नारद मुनिकी आज्ञा पाके उन्हें प्रणाम करके फिर योग अवलम्बन करते हुए आकाशमें आवेश किया। श्रीमान् शुकदेव आकाश चर और निश्चित वायुभूत होकर कैलास पर्व्वतके ऊपरसे उठके आकाशमें गमन करने लगे। विनता पुत्रके समान तेजस्वी, मन और वायुके तुल्य वेगशाली उस द्विजवरने जब आकाश मार्गमें गमन किया, उस समय सब कोई उन्हें देखने लगे। अनन्तर अग्नि और सूर्य्यके समान तेजसे युक्त शुकदेव सर्व्वात्मता निश्चयके जरिये तीनों लोकोंका विचार करते हुए दीर्घ पथको अवलम्बन करके गमन करने लगे। उनके अव्यग्र और अकुतोभय होकर एकाग्रचित्तसे गमन करते रहने पर जङ्गम जीव उनका दर्शन करने लगे। देवताओंने निज शक्तिके अनुसार न्यायपूर्व्वक उनकी पूजा करते हुए फूलोंकी वर्षासे उन्हें परिपूरित किया। गन्धर्व्व और अप्सरावृन्द उन्हें देखके विस्मित हुए तथा सम्यक सिद्ध ऋषि लोग भी उन्हें देखके अत्यन्त विस्मययुक्त होरहे। तपस्याके सहारे सिद्धि लाभ करके यह कौन पुरुष आकाशमें विचरता है? सूर्य्यकी ओर दृष्टि करके निज शरीरके अधोभागको न देखकर हम लोगोंके नेत्रके आनन्दको बढ़ा रहा है, सिद्धगणोंके इस प्रकार वितर्क करते रहने पर तीनों लोकमें विख्यात् परम धार्म्मिक शुकदेव पूर्व्वकी ओर वाग्यत होके तथा सूर्य्यकी तरफ दृष्टि करके और शब्दसे

जरिये मानो अखिल आकाश मण्डलको परिपूरित करते हुए गमन करने लगे । हे राजन् ! पञ्चचूड़ा आदि अप्सराओंने अत्यन्त उत्फुल्ल नेत्र और सम्भ्रान्तचित्त होकर सहसा उन्हें आकाश मार्गसे गमन करते हुए देखके अत्यन्त विस्मित हुईं और सोचने लगीं, कि यह कौन देवता श्रेष्ठगति अवलम्बन करके निःस्पृह और निश्चित विमुक्तकी भांति इस स्थानमें आगमन कर रहा है । अनन्तर उर्व्वशी और पूर्व्वचित्ति अप्सरा जिस स्थानमें सदा निवास किया करती हैं, शुकदेव उस मलयपर्व्वतकी ओर गमन करने लगे । वे दोनों उस ब्रह्मर्षिपुत्रके प्रभावको देखकर अत्यन्त विस्मित होकर कहने लगीं, कैसा आश्चर्य्य है ! वेदाभ्यासमें रत ब्राह्मणकी कैसा ज्ञान समाधान हुआ है । ये पितृसेवासे थोड़े ही समयके बीच परम श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करके चन्द्रमाकी भांति आकाश मण्डलमें विचर रहे हैं, ये पितृभक्त, दृढ़ तपस्वी और पिताके प्रियपुत्र हैं, इसलिये उस अनन्यचित्त पिताके जरिये किस प्रकारसे विसर्ज्जित हुए । परम धर्म्मज्ञ शुकदेवने उर्व्वशीका बचन सुनकर उसके बचनमें ध्यान देके सब ओर देखा । वह उस समय आकाशमण्डल, पहाड़, वन और महारण्यके सहित पृथ्वीतल, तलाव और नदियोंको देखने लगे । अनन्तर चारों ओरसे देवता लोग बहुमान करके हाथ जोड़के द्वैपायनपुत्रको देखने लगे, परम धर्म्मज्ञ शुकदेव उस समय उन देवताओंसे यह बचन बोले, कि पिता यदि शुक कहके आवाहन करते हुए मेरा अनुगमन करें, तो आप सब कोई उन्हें स्थिर करके उत्तर देना । मेरे ऊपर स्नेहवशसे आप लोग मेरे इस बचनको प्रतिपालन करना । शुकदेवका बचन सुनके वनके सहित सब दिशा, नदी, समुद्र और पहाड़ोंने चारों ओरसे उन्हें उत्तर दिया । हे विप्रवर ! आपने जो आज्ञा की, हम लोग उसे स्वीकार करते हैं, जब महर्षि आपको बात पूछेंगे, तो हम लोग उन्हें प्रत्युत्तर देंगे ।

३३२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, महातपस्वी ब्रह्मर्षि शुकदेव ऐसा कहके चार प्रकारके दोष अर्थात् मोक्ष-प्रतिबन्धक धर्म्मज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य्य मदको त्यागके सिद्धिमार्गमें प्रस्थान किया । बुद्धिमान शुकदेवने आठ प्रकारके पुर्य्यष्टक संज्ञक लिङ्ग शरीर परित्याग करके पांच प्रकारके रज अर्थात् शब्द स्पर्श आदि पांचों विषयोंके प्रवर्त्तक बासनामय रजोगुणको परित्याग किया, अनन्तर सत्त्व अर्थात् शुद्धिके जरिये सर्व्वत्याग करके, जिसके सहारे सर्व्वत्याग करते हो, उसे भी परित्याग करो, नारद मुनिके इस उपदेशके अनुसार सत्त्वगुणको भी परित्याग किया, वह मानो अद्भुत मालूम हुआ । अनन्तर वह प्रज्वलित धूमरहित अग्निकी भांति नित्य निर्गुण लिङ्गवर्ज्जित आदित्यान्तर्य्यामी परब्रह्ममें प्रतिष्ठित हुए । उस महापुरुषके उपरम समयमें जगत्के दुर्भाग्य सूचक उल्कापात, दिग्दाह और भूमिकम्प होने लगा, वह भी अद्भुत मालूम हुआ । वृक्षोंकी शाखा और पर्व्वतोंको शिखर टूट टूट गिर पड़ीं । हिमालय पहाड़ निर्घात् शब्दके जरिये मानो विदीर्ण हुआ । सहस्र किरणधारी सूर्य्य प्रकाशित न हुए । अग्नि देव भी प्रज्वलित न रहे ; तालाव, नदी और समुद्र क्षुब्ध हुए । देवराज इन्द्र उस समय सुगन्धित जल बरसाने लगे । दिव्य सुगन्धियुक्त पवित्र वायु बहने लगी ।

हे भारत ! जिस समय शुकदेव मुनि हिमशैलसे सूर्य्यमण्डलकी ओर जारहे थे, उस समय उन्होंने उत्तर दिशाको अवलम्बन करके हिमवान और मेरुसे उत्पन्न श्वेत और पीतवर्ण सुवर्ण तथा रौप्यमय तिर्य्यग्वा ऊपरके

शिखरमें प्रथम जो योजन लम्बा मनोहर दिव्य दो शृङ्गोंको संश्लिष्ट देखा था। जब वह अविश्रकृचित्तकर वहांसे ऊपरको उठे, तब सहसा वे दोनों शृङ्ग अलग अलग होके दीख पडे। हे महाराज! वे उस समय अद्भुत रूपसे मालूम हुए थे। वह उस पहाड़को दोनों शिखरों परसे सहसा चले गये, उक्त गिरिराजने उनको गतिको न रोका, अनन्तर आकाश मण्डलमें देवताओंका अत्यन्त महान् शब्द प्रकट हुआ था। हे भारत! शुकदेवके अतिक्रान्त और शैल शृंगोंके द्विधा होनेपर शैलवासी गन्धर्व और ऋषियोंका "धन्य धन्य" शब्द सुनाई देने लगा। हे महाराज! उस कालमें गमन करनेके समय शुकदेव मुनि देवता, गन्धर्व ऋषि, यक्ष, राक्षस और विद्याधरोंसे पूजित हुए थे। आकाश मण्डल सब प्रकारसे दिव्य फूलोंके जरिये परिपूरित हुआ था। अनन्तर धर्मात्मा शुकदेवने ऊपरको ओर गमन करते हुए फूलोंसे युक्त वन और रमणीय मन्दाकिनो नदीको देखा। इस नदीमें अप्सरावृन्द शून्याकारसे शुकदेवको देखकर वस्त्र रहित होके क्रीड़ा करनेमें ही अनुरक्त थीं। शुकदेवका प्रशान्त जानके पिता व्यासदेवने स्नेहयुक्त होके उत्तम गति अवलम्बन कर पुत्रके पश्चात् गमन करते हुए उसका अनुसरण किया इधर शुकदेवने वायु लोकके उच्च भागमें आकाश गतिका अवलम्बन करके निज प्रभाव प्रदर्शित करते हुए ब्रह्मत्व लाभ किया। महा तपस्वी व्यासदेव दूसरी भांतिके महायोग युक्त गति अवलम्बन करके उठे और निमेष भरके बीच उस स्थान पर आके उपस्थित हुए, जहांसे शुकदेवने गमन किया था। वहां देखा कि शुकदेवने पर्व्वतको शिखरको द्विधा करके गमन किया है; उस समय ऋषियोंने उनके पुत्रके उस कार्य्यको उनके समीप वर्णन किया। अनन्तर पिता व्यासदेव ऊंचे स्वरसे "शुक" इस दीर्घ शब्दके जरिये तीनों लोकोंको अनुनादित करते हुए रोने लगे। धर्म्मात्मा शुकदेव उस समय सर्व्वमुख और सर्व्वात्मा हुए थे; इसलिये उन्होंने 'भो' शब्दके जरिये अनुनाद करते हुए प्रत्युत्तर दिया। तिसके अनन्तर स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् एकाक्षरनाद 'भो' इस शब्दको ऊंचे स्वरसे उच्चारण करके प्रत्युत्तर दिया। तभीसे अबतक उच्चारण किये हुए पृथक् पृथक् शब्दके अनुसार शुकके निमित्त सभी प्रत्युत्तर दिया करते हैं। शुकदेवने उस समय शब्द आदि विषयोंको परित्याग करते हुए निज प्रभाव प्रदर्शित किया और अन्तर्हित होकर परमपद पाया।

व्यासदेव अत्यन्त तेजशाली पुत्रको उस महिमाको देखकर उसहीको सदा चिन्ता करते हुए पहाड़को शिखर पर बैठ रहे। अनन्तर मन्दाकिनीके किनारे जो सब अप्सरा क्रीड़ा कर रही थीं, वे सब उस मुनिसत्तमको देखके अत्यन्त भयभीत और लज्जित हुईं, कोई जलमें ही बैठ रही, कोई गुल्म लताकी आड़में खड़ी होगई, किसी किसीने शीघ्रताके सहित पहरनका वस्त्र ग्रहण किया। उसे देखके महर्षिने निज पुत्रको मुक्तता तथा अपना सक्तता जानके प्रसन्न और लज्जित हुए। इतने ही समयमें देव गन्धर्व्वोंसे घिरे हुए महर्षियोंसे पूजित भगवान पिनाकपाणि महादेव उनके सम्मुख प्रकट हुए। महादेव उस पुत्र-शोकसे दुःखी द्वैपायन मुनिको धीरज देके बोले, कि पहले तुमने मेरे समीप अग्नि, भूमि, जल, वायु और आकाशके सदृश वीर्य्यवान पुत्र मांगा था, तुम्हारे वैसे ही लक्षणोंसे युक्त पुत्र उत्पन्न होके तपस्यासे सम्वर्द्धित हुआ और मेरी कृपासे ब्रह्म तेजमय तथा पवित्र हुआ था। हे विप्रर्षि! उसने अजितेन्द्रिय देवताओंसे भी दुःष्प्राप्य परम गति पाई है, इसलिये तुम उसके लिये क्यों शोक करते हो; जब तक सब पर्व्वत विद्यमान रहेंगे, जब

तक समुद्र वर्त्तमान रहेगा, तबतक पुत्रके सहित तुम्हारी अक्षयकीर्त्ति होगी। हे महामुनि! मेरी कृपासे तुम इसलोकमें सब प्रकारसे अनपायिनी निज पुत्रकी सदृशी छाया देख सकोगे।

हे भारत! महामुनि द्वैपायन स्वयं भगवान रुद्रदेवसे अनुनीत होके पुत्रकी छाया देखके परम हर्षके सहित वहांसे लौटे। हे भरत श्रेष्ठ। तुमने मुझसे जो पूछा था, यह मैंने उस ही शुकदेवके जन्म वृत्तान्तको विस्तारके सहित कहा है। हे राजन्। पहले समयमें देवर्षि नारद और महायोगी व्यासदेवने कथा प्रसङ्गसे मेरे निकट इस विषयको वर्णन किया था। जो लोग शमपरायण होके इस मोक्षधर्मसे युक्त पवित्र इतिहासको धारणा करेंगे, वे परमपद प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे।

३३३ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ और सन्न्यासी, इनके बीच जो लोग सिद्धि अवलम्बनकी अभिलाष करें, उन्हें कौनसे देवताकी पूजा करनी चाहिये। किसकी कृपासे उन्हें अनावृत्तिफलक स्वर्ग मिलेगा और किस प्रकार परम कल्याण प्राप्त होगा। देव और पितर कर्म्ममें कौन सी विधिके अनुसार आहुति देनी होगी, मुक्त होनेपर किस स्थानमें जाना होगा। मोक्ष किस प्रकार होती है, स्वर्गमें जाकर ऐसा कौनसा कार्य्य करे, जिसके जरिये वहांसे फिर च्युत होना न पड़े। देवताओंका देवता कौन है। पितरोंका पिता कौन है, और उससे भी श्रेष्ठ और कौन है; आप मेरे समीप उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे अनघ! तुम प्रश्नवित् होकर इस समय मुझसे जिस गूढ़ प्रश्नका विषय पूछते हो, वह देवताओंके अनुग्रह वा ज्ञानागमके बिना सौ वर्षमें भी निर्णय करके नहीं कहा जा सकता। हे शत्रुनाशन महाराज! इस कठिन आख्यानको भी तुम्हारे समीप व्याख्या करना मुझे उचित बोध होता है। प्राचीन लोग इस विषयमें नारद और नरनारायण ऋषिके सम्वादयुक्त प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं।

हे महाराज! पहले समयमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके सत्ययुगमें विश्वात्मा सनातन नारायण चार मूर्त्ति धारण करके धर्म्मात्मज रूपसे प्रकट हुए, मेरे समीप पिताने इस विषयको कहा था, कि नर-नारायण, हरि तथा कृष्ण इस चतुर्व्यूह स्वायम्भुभावसे उत्पन्न हुए, तिसमेंसे अव्यय नर और नारायणने बदरिकाश्रमको अवलम्बन करके शकटके समान पर प्रेरणीय मायामय शरीरसे निवास करते हुए तपस्या की थी। उस लोकप्रसिद्ध शरीरस्वरूप शकटकी आठ प्रकारकी अविद्या चक्रकी भांति ढोया करती है, वह पञ्चभूतोंसे युक्त और मनोरम है। जिस शकटमें अधिष्ठित होकर आदि पुरुष लोकनाथ नरनारायण तपस्यासे कृश और धमनि सन्ततिके जरिये आवृत्त होकर देवताओंके भी दुर्निरीक्ष्य हुए थे। वे जिसके ऊपर कृपा करते थे, वह उनकी अनुमतिके अनुसार अन्तर्य्यामीके जरिये प्रेरित होकर निश्चय ही उन दोनोंका दर्शन करनेमें समर्थ होता था। उस ही समय महामेरु पर्व्वतकी शिखरसे उतरकर महर्षि नारद गन्धमादन पर्व्वत पर्य्यन्त सब लोकोंमें भ्रमण कर रहे थे।

हे महाराज! शीघ्रगामी देवर्षि नारद नर नारायण ऋषिके ब्रह्म यज्ञादिके समय उस बदरिकाश्रममें उपस्थित हुए, देव, असुर, गन्धर्व्व, किन्नर और महोरगोंके सहित समस्त लोक जिसमें प्रतिष्ठित है, क्या यह उन्होंका निवास स्थान है। ऐसा सोचके उनके मनमें बहुत ही कौतूहल उत्पन्न हुआ। पहले जो मूर्त्ति केवल एक ही थी, अब वह धर्म्म-बुद्धिके

लिये चार प्रकार होकर धर्म आदिके जरिये विविध रूपसे वर्णित हुई है। कैसा आश्चर्य है! नर-नारायण, कृष्ण और हरि, इन चारोंके जरिये इस समय धर्म्म अनुगृहीत हुआ है। कृष्ण तथा हरि किसी कारणान्तर निबन्धनसे धर्म्म प्रधान होकर स्थिति करते हैं, और ये दोनों तपोनिष्ठ होरहे हैं। ये परम तेजस्वी सब भूतोंके पिता और यशस्वी देवता हैं, इस-लिये इनका उपासना कर्म्म क्या है? ये दोनों महाबुद्धिमान कौनसे देवता तथा पितर लोगके बीच किसकी पूजा करेंगे। महर्षि नारद मन-ही मन ऐसोही चिन्ता करते हुए नारायणमें भक्ति वशसे उस समय सहसा उन दोनों महा-त्माओंके सम्मुख प्रकट हुए। नर नारायणने देव और पितृकार्य्यको पूरा करके नारदकी ओर देखा और देखते हो शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार उनकी पूजा की। भगवान् नारद ऋषि अपूर्व्व विधि विस्तर और महत् आश्चर्य्य अवलोकन करके उनके निकट बैठे। वह प्रसन्न अन्तःकरणसे महादेव नारायणको देखके उन्हें नमस्कार करके यह वचन बोले।

नारद मुनि बोले, हे देव! समस्त पुराणके सहित साङ्गोपाङ्ग सब वेदोंके बीच तुम अज, नित्य, धाता और अनुत्तम अमृत रूपसे सम्मत तथा वर्णित होते हो; भूत-भविष्यत और यह समस्त जगत् तुममें प्रतिष्ठित है। गार्हस्थ्यमूलक चारों आश्रमवाले अनेक मूर्त्तियोंके अव-लम्बसे तुम्हारी पूजा किया करते हैं। तुम समस्त जगत्के पिता, माता और शाश्वत गुरु हो; इस समय तुम कौनसे देवता तथा किस पिताकी पूजा करते हो, इसे मैं जाननेकी इच्छा करता हूं।

श्रीभगवान बोले, हे ब्रह्मन्! यह आत्मगुह्य सनातन विषय अवक्तव्य होनेपर भी तुम्हारी भक्तिमत्तासे कहनाउचित समझके तुम्हारेसमीप यथार्थ रूपसे वर्णन करता हूं। जो दुर्लक्ष्य, अविज्ञेय अव्यक्त अचल और शाश्वत है; जो इन्द्रियविषयों और सब भूतोंसे रहित है; वही जीवोंका अन्तरात्मा और क्षेत्रज्ञ रूपसे वर्णित होता है, वही त्रिगुणातीत पुरुष रूपसे कल्पित हुआ करता है। हे द्विज सत्तम! उसहीसे त्रिगु-णात्मक अव्यक्तकी उत्पत्ति होती है; जो व्यक्त न होनेपर भी व्यक्त भावसे निवास करता है, वही अव्यया अर्थात् अपरिणामवती प्रकृति है। जो सत्ता स्वयं अव्यक्ता अर्थात् घट पट आदि व्यक्त पदार्थोंमें सत्स्वरूपसे विद्यमान होरही है, वही प्रकृति है; उसे ही हम दोनोंकी उत्पत्तिका कारण जानो और जो सदसदात्मक अर्थात् निष्कल भावसे सत् असत् कार्य्योंके कारण है, उसको कल्पनाके अधिष्ठानत्व निबन्धनसे तदा-त्मक है, उसे ही हम देव और पितर कल्पना करके पूजा करते हैं। हे द्विज। उससे बढ़के परम देव तथा परम पिता दूसरा कोई भी नहीं है, वही हम लोगोंको आत्मा है, इस ही लिये उसकी हम पूजा किया करते हैं। हे ब्रह्मन्। उसहीसे यह लोकभाविनी मर्य्यादा प्रसिद्ध हुई है, 'देव और पितृ कर्म्म करना चाहिये' यही उसकी आज्ञा है। ब्रह्मा, स्थाणु मनु, दक्ष, भृगु धर्म्म, यम, मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, विवस्वान, सोम, कर्द्दम, क्रोध, अर्व्वाक और क्रीत, ये इक्कीस प्रजापति उससे उत्पन्न हुए हैं और ये सभी उस परम देवताको सनातनी मर्य्यादाका सम्मान किया करते हैं। उसके लक्ष्यसे देव और पितृ कर्म्म सदा करना योग्य है,—इसे यथार्थ जानके उत्तम द्विज लोग उसकी कृपासे आत्मज्ञान पाते हैं। स्वर्गवासी शरीरधारी जीव भी उसे नम-स्कार करते हैं और वे लोग उसकी कृपासे तदादिष्ट गति पाते हैं। जो लोग पञ्चप्राण, मन, बुद्धि तथा दशों इन्द्रिय इन सत्तरहों गुण और कर्म्मसे रहित हैं, यह निश्चय है, कि वे पन्द्रह कला अर्थात् स्थूल शरीर परित्याग

करके तुष्ट हुआ करते हैं। हे ब्रह्मन्! मुक्त मनुष्योंकी गति विलक्षण है, वह सब गुणोंसे युक्त और निर्गुण रूपसे कहा जाता है और ज्ञानयोगके सहारे दीख पड़ता है। हम दोनों उसहीसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा जानके उसी सनातन आत्माकी पूजा किया करते हैं। वेद तथा अनेक मत समाश्रित सब आश्रमवाले भक्तिपूर्व्वक उसकी पूजा करते हैं और वह शीघ्र ही उन लोगोंको सद्गति प्रदान करता है। इस लोकमें जो लोग सद्भावसे युक्त होकर ऐकान्तिकी भक्ति करते हैं, वे परिणाममें उसमें ही प्रवेश किया करते हैं। हे नारद! यह गुप्त वृत्तान्त तुम्हारे समीप कहा गया। हे विप्रर्षि! मेरे ऊपर भक्ति और प्रीति करनेसे तुमने सहजमें इसे सुना है।

३३४ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, द्विपदोंमें श्रेष्ठ महर्षि नारद पुरुषोत्तम नारायणका ऐसा वचन सुनके सब लोकोंके हितके अवलम्बन द्विपदोंमें वरिष्ठ नारायणसे फिर वच्यमाण रीतिसे यह वचन कहने लगे।

नारद मुनि बोले, हे लोकनाथ! आपने स्वयम्भू होकर भी जिस निमित्त धर्म्मके स्थानमें चार रूपसे जन्म ग्रहण किया, उस लोक हितकर कार्य्यको सिद्ध करिये। अब मैं आपकी आद्या प्रकृतिका दर्शन करनेके लिये गमन करता हूं, मैं सदा गुरुजनोंकी पूजा किया करता हूं, पहिले कभी दूसरेके गूढ़ विषयको प्रकाश नहीं किया, वेदोंको भली भांति पढ़ा है और उत्तम रीतिसे तपस्या की है, तथा कदाचित् मिथ्या वचन नहीं कहा है। हाथ, पांव, उदर और उपस्थ, इन चारोंको शास्त्रके अनुसार संयत किया है। मैं सदा शत्रु-मित्रमें समदर्शी होकर उस आदिदेवके निकट शरणागत हुआ हूं और सदा एकान्त भावसे उसकी ही प्रार्थना किया करता हूं। इन सब कार्य्योंसे परिशुद्ध-सत्त्व होके भी मैं किस निमित्त अन्त रहित ईश्वरका दर्शन करनेमें असमर्थ होरहा हूं। नित्य धर्म्मको पालन करनेवाले नारायणने विधातृपुत्र नारदका ऐसा वचन सुनके यत्नके सहित उनका विधिपूर्व्वक सम्मान करके गमन करनेके लिये आज्ञा दी।

अनन्तर नारद मुनि उस प्राचीन नारायण ऋषिकी पूजा करके उनके समीपसे विदा हुए और योगयुक्त होकर आकाशमें उठे और सहसा सुमेरु पर्व्वतके ऊपर आके उपस्थित हुए। उन्होंने उस गिरिशृङ्गके निर्ज्जन स्थानपर पहुंचके मुहूर्त्त भर वहां निवास किया। वहां स्थित होके वायुकोनकी ओर देखते देखते नीचे कहे हुए अद्भुत पदार्थको देखा, क्षीरोदधिके ऊपरतरफ श्वेत नामसे विख्यात जो विशाल द्वीप है, वह सुमेरु पर्व्वतके मूल स्थानसे बत्तीस हजार योजन ऊंचा है, यह कवियोंके जरिये निश्चितरूपसे वर्णित हुआ है। वहांपर स्थूल शरीरकी आसक्तिसे रहित, शब्द आदि विषय योगसे हीन, निश्चेष्ट, परमात्माके ध्यानमें रत शुद्धसत्त्व प्रधान पुरुष निवास करते हैं। वे सब पापोंसे रहित हैं और तेजस्विता निबन्धनसे पापी मनुष्योंके नेत्रको मोषण किया करते हैं, वे वज्रके समान हड्डी और शरीर सम्पन्न हैं। मान अपमानको समान जाननेवाले दिव्य रूपशाली और योगप्रभावजनित बलसे युक्त हैं। उनके मस्तक छत्रके समान हैं, उनका शब्द बादल गर्ज्जनेके समान है, वृषण और बाहु पीनत्व रहित है, चरण सैकड़ों नाड़ी और रेखाओंसे युक्त हैं, उनके श्वेतवर्णके साठ दांत हैं अर्थात् जगत्‌रूपी चनाचर्व्वण करनेमें समर्थ और सम्वत्सरसे युक्त हैं, अष्टदंष्ट्रा अर्थात् दिशाओंकी भांति सबके आश्रयभूत हैं, सूर्य्यके जरिये प्रकाट हुए महीना, ऋत, सम्वत्सरात्मक महा-

कालमय विप्रवत्सको पायसकी भांति शिक्षण करते हैं। जिससे सब लोग उत्पन्न हुए हैं और जिससे जगत्की उत्पत्ति हुई है, सब वेद, धर्म्म, शान्त स्वभाववाले मुनि और देवता लोग जिसके वशमें स्थित हैं; उन लोगोंने भक्तिके जरिये उसही देवको हृदयमें व्यक्त किया है।

युधिष्ठिर बोले, हे भरतसत्तम! वे श्वेत-द्वीप निवासी पुरुष किस प्रकार निरिन्द्रिय निराहार, निश्चेष्ट और परमात्म ध्यान-परायण हुए थे तथा उन लोगोंकी उत्तम गति किस प्रकारकी है; जो सब मनुष्य इस लोकमें मुक्त होते हैं, उनका जैसा लक्षण है, श्वेत द्वीपवासी पुरुषोंका भी वैसा ही लक्षण है; इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है, आप मेरा सन्देह दूर करिये। आपहीको सब कथा आश्रय करती हैं, हम भी आपका आश्रय कर रहे हैं।

भीष्म बोले, हे राजन्! यह वृत्तान्त बहुत विस्तीर्ण है मैंने अपने पिताके निकट इसे सुना था। तुम्हारे समीप जो कहना होगा, वह सब कथाके बीच साररूपसे सम्मत हुआ है। पहले समयमें उपरिचर नाम पृथिवीके स्वामी एक राजा थे, वह देवराजके सखा और नारायणके भक्तरूपसे विख्यात थे। वह धार्म्मिक सदा पितृभक्त और निरालस थे, इसीसे नारायणके वरप्रभावसे उन्होंने साम्राज्य पाया था। वह सब भूतोंके अहिंसक सत्यपरायण राजा प्रथम पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकार ज्ञान-विधिके अनुसार सूर्य्यमुखनिःसृत भगवान विष्णुकी पूजा की, अनन्तर शेष बची हुई वस्तुओंसे पितरोंकी तृप्तिका विधान किया, पितरोंके तर्पणके अनन्तर बची हुई सामग्रीके जरिये ब्राह्मणोंको हव्यविभागकर आश्रितोंको भोजन कराके सबके पीछे बचे हुए अन्नका स्वयं भोजन करते थे। वह आदि मध्य और अन्त रहित लोककर्त्ता अविनाशी देवोंके देव जनार्द्दनके विषयमें सब प्रकारसे भक्तिमान थे। वह शत्रुनाशक राजा नारायणमें अत्यन्त भक्ति करता था, इसीसे देवराज उसे अपने साथ एक ही आसनपर बैठाते थे। निज राज्य, धन, स्त्री और वाहन आदि जो कुछ था, उस राजाने भगवानके उद्देश्यसे उन सब वस्तुओंको समर्पण किया था।

हे राजन्! वह राजा सावधान होकर काम्य और नैमित्तिक यज्ञीय कार्य्योंको सात्वत विधिके अनुसार निबाहता था। पञ्चरात्र अर्थात् पांच प्रकारके ज्ञान सम्पन्न मुख्य मुख्य महानुभाव ब्राह्मण उसके स्थानमें भगवत् प्रोक्त उपचारके सहित उत्तम भोज्य-सामग्रियोंको भोजन करते थे, उस शत्रुनाशन राजाके धर्म्मानुसार राज्यशासन करते रहनेपर उसका वचन कदापि मिथ्या नहीं हुआ और मन भी कभी किसी दोषके जरिये दूषित नहीं हुआ। उसने शरीरके जरिये अणुमात्र भी पाप कार्य्य नहीं किया। चित्र-शिखण्डि नाम जो सप्तऋषि विख्यात् हैं, उन सबने एकवाक्य होकर महागिरि सुमेरुके ऊपर जिस श्रेष्ठ शास्त्रको बनाया वह सात मुखके जरिये बाहर होके अत्यन्त उत्तम लोक धर्म्म रूपसे विख्यात् हुआ है। मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और महातेजस्वी वसिष्ठ, ये सात, पुरुष चित्र-शिखण्डि नामसे महत् अहङ्कार आदि मूर्त्ति धारण करके सप्त प्रकृति रूपसे विख्यात् हैं। स्वायम्भुव मनु आठवें हैं, ये मूल प्रकृति कहाते हैं, इन सबने लोकोंको धारण किया है और इन्हींसे शास्त्र प्रकट हुए हैं। एकाग्रचित्त, दांत 'संयममें रत' वर्त्तमान, भूत, भविष्यत, सत्य धर्म्म परायण इन मुनियोंने यही श्रेष्ठ है, यही ब्रह्म है, यही अनुत्तम हितकर है, मनही मन ऐसा विचार करके सब लोकों और शास्त्रोंको बनाया है। उस शास्त्रमें धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषय वर्णित है। द्युलोक और भूलोकमें विख्यात् विविध मर्य्यादा भी स्थापित हुई है।

प्रायुक्त उत्पन्न हुए सब लोग उन ऋषियोंके सहित दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्ष पर्य्यन्त तप स्याके जरिये सर्व्वभूत संयोगी नारायण हरिकी आराधना करके उनके सहारे अनुशासित हुए थे। उस समय सब लोकोंको हितकामनासे सरस्वती देवीने उन ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रवेश किया था।

अनन्तर उन तपोवित् द्विजातियोंने शब्द, अर्थ और हेतु विषयमें इस प्रथम सृष्टिके लिये मर्य्यादा प्रवर्त्तन किया। जिस स्थानमें कारु-णिक नारायण निवास करते थे, पहले ऋषि-योंने वहांपर ओंकारस्वर पूजित उस शास्त्रको उन्हें सुनाया। तब अनिर्द्दिष्ट शरीरगामी अदृश्य पुरुषोत्तम भगवान प्रसन्न होकर उन ऋषियोंसे बोले, सब लोकके धर्म्म जिससे प्रवृत्त हो, उस ही प्रकारसे यह अत्यन्त उत्तम लाख हजार श्लोकरचित हुई हैं। ये लोकमें प्रवृत्ति और निवृत्ति हेतुसे ऋक्, यजु, साम, अथर्व्व तथा आङ्गिरस वेदके जरिये सेवित होंगी। मैंने प्रमाणके अनुसार दयासे ब्रह्मा और क्रोधसे रुद्रको उत्पन्न किया है, तुम लोग तथा समस्त प्रकृति सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, भूमि, जल, अग्नि नक्षत्रसमूह अथवा भूत शब्दसे जो कुछ मालूम होता है, उसके सहित ब्रह्मवादी लोग यथार्थ रूपसे निज निज अधिकारमें वर्त्त-मान रहेंगे। प्रमाणके अनुसार यह शास्त्र ही सबसे श्रेष्ठ होगा और मेरी यह आज्ञा सबको ही प्रमाणित होगी। स्वायम्भुव मनु स्वयं इस शास्त्रसे धर्म्म वर्णन करेंगे। उशना और बृह-स्पति जब उत्पन्न होंगे, तब वे दोनों तुम लोगोंकी बुद्धिके सहारे उद्धृत इस शास्त्रके प्रवक्ता होंगे।

हे द्विजसत्तम ऋषिवृन्द! स्वायम्भुव मनु प्रणीत धर्म्मशास्त्र, शुक्राचार्य्य कृत और बृहस्प-तिके बनाये हुए शास्त्रोंका मर्त्त्यलोकमें प्रचार होने पर प्रजापालक वसु बृहस्पतिके निकट तुम लोगोंके बनाये हुए इस शास्त्रको पावेगा। वह सदभिप्रायशाली राजा मेरा भक्त होगा, वह लोकके बीच उस ही शास्त्रके अनुसार सब कार्य्योंको निबाहेगा सब शास्त्रोंके बीच लोकमें यही सबसे उत्तम है, यह अर्थ और धर्म्म जनक तथा श्रेष्ठ रहस्यरूप गिना जावेगा। इस शास्त्रके प्रवर्त्तन हेतुसे तुम लोग प्रजावन्त होगे, प्रजापाल वसु राजा इस शास्त्रके प्रभावसे महान् और श्रीसंयुक्त होगा। उक्त राजाके इस लोकसे गमन करने पर यह शास्त्र अन्तर्हित होगा, यह सब वृत्तान्त मैंने तुम लोगोंके समीप वर्णन किया

अदृश्य पुरुषोत्तमने इतनी बात कहके उन ऋषियोंको त्यागके किसी अनिर्द्दिष्ट दिशाकी ओर प्रस्थान किया। अनन्तर सर्व्वलोकार्थ चिन्तक वे पितर लोग ऊपर कहे हुए धर्म्म योनि सनातन शास्त्रका लोकमें प्रचार करने लगे। प्रथम कल्पित-युगमें अङ्गिरासे बृहस्पति उत्पन्न हुए, उनके समीप सांग उपनिषत् शास्त्र स्थापित करके सर्व्व धर्म्म प्रवर्त्तक सब लोकोंको धारणाकरनेमें समर्थ सप्तर्षियोंने तपस्या करनेका निश्चय करके यथाभिलषित देशमें गमन किया।

३३५ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर महाकल्पके बीतनेपर जब अंगिराके पुत्र बृहस्पति उत्पन्न होके देव-ताओंके पुरोहित हुए, उस समय देवताओंने निवृत्ति लाभ की। हे राजन्! बृहत्, ब्रह्म और महत्, ये सब शब्द एक ही पर्य्यायवाची हैं, इसलिये बृहत्व, ब्रह्मत्व और महत्व गुणसे युक्त उस पुत्रका नाम बृहस्पति हुआ। वह थोड़े ही समयमें अत्यन्त विद्वान् होगये। राजा उप-रिचर वसु उनके प्रधान शिष्य थे, उन्होंने उनके समीप चित्रशिखण्डिज शास्त्रको पूरी रीतिसे पढ़ा, राजा उपरिचर वसु पहले दैवविधिके

अनुसार शुद्धसत्व होकर इन्द्रके सुरलोक पालन करनेकी भांति अखण्ड भूमण्डलको पालन किया था। उस महानुभाव राजाने अश्वमेध नाम महत् यज्ञका अनुष्ठान किया। उपाध्याय बृहस्पति उस यज्ञमें होताका कार्य्य निर्व्वाह करनेके लिये व्रत हुए। प्रजापतिके पुत्र महर्षि एकत, द्वित और त्रित, ये तीन पुरुष सदस्य हुए थे। अनन्तर धनुषाख्य, रैभ्य, अर्व्वावसु, मेधातिथिऋषि, महर्षि ताण्ड्य, शान्ति ऋषि, महाभाग वेदशिरा, ऋषिश्रेष्ठ कपिल शालिहोत्र-पिता, आद्य, कठ, तैत्तिरि, वैशम्पायन, पूर्व्वज कण्व और देवहोत्र ये सोलह ऋषि उस यज्ञमें दीक्षित हुए थे। हे राजन्! उस महायज्ञमें सब यज्ञकी सामग्री इकट्ठी की गई थी, उक्त यज्ञमें पशुहिंसा नहीं हुई थी, राजा यजमान होकर अत्यन्त श्रद्धावान था। वह अहिंस्र, पवित्र, अक्षुद्र और निराशी होकर सब कार्य्योंमें संस्तुत हुआ था। आरण्यक स्थानोद्भूत सब भाग उसमें कल्पित हुए थे। अनन्तर देवोंके देव भगवान्ने अन्य पुरुषोंके लिये अदृश्य होकर केवल राजाके ऊपर प्रसन्नता निबन्धनसे उसे स्वयं दर्शन दिया और निज यज्ञभाग पुरोडासको आघ्राण करके स्वयं ग्रहण किया। भगवान् हरिमेधा नारायणके अदृश्य होकर यज्ञभाग ग्रहण करनेसे बृहस्पति क्रुद्ध होकर स्रुवा उठाके वेगपूर्व्वक दौड़े। वह स्रुवासे आकाशमें आघात करते हुए क्रोधवश होकर आंसू बहाने लगे, और उपरिचर राजासे बोले, यह उल्लित यज्ञभाग मेरे सम्मुखमें निःसन्देह स्वयं नारायणको ग्रहण करना होगा।

युधिष्ठिर बोले, इस यज्ञमें उल्लित सब यज्ञभाग साक्षात् देवताओंके जरिये प्राप्त हुआ था, परन्तु सर्व्वभूत संयोगी हरि किस निमित्त नेत्र गोचर न हुए?

भीष्म बोले, अनन्तर भूमिपाल उपरिचर और दूसरे सदस्यगण क्रोधयुक्त बृहस्पति मुनिको प्रसन्नकरके सबने असम्भ्रान्त होकर उनसे कहा, कि आपको क्रोध करना उचित नहीं है। आपने जो क्रोध प्रकाश किया, वह सत्ययुगका धर्म्म नहीं है। हे बृहस्पति! जिसका यज्ञभाग उठ गया है, वह देवता क्रोधी नहीं है। आप अथवा हम लोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं हैं। वह जिसके ऊपर कृपा करे, वही उसका दर्शन करनेमें समर्थ होसकता है। अनन्तर एकत, द्वित, त्रित और चित्रशिखण्डिगण उनसे बोले, कि हम प्रजापति ब्रह्माके मानस पुत्ररूपसे विख्यात् हैं; और किसी समय हम लोगोंने निःश्रेयस लाभके निमित्त उत्तर दिशामें गमन किया, वहां सहस्र वर्षतक क्लेश सहके श्रेष्ठ तपस्याचरण करते हुए स्थिर होकर काष्ठकी भांति एक चरणसे खड़े रहे। हमने जिस स्थानमें महादारुण तपस्या की थी, वह स्थान क्षीरोदसागरके किनारे सुमेरुके उत्तर तरफ है। हम वरदाता वरण्य देवोंके देव सनातन नारायणका किस प्रकार दर्शन करेंगे, किस उपायसे नारायण देवको अवलोकन करनेमें समर्थ होंगे, इस ही प्रकार चिन्ता करते हुए, जब व्रत समाप्त होनेपर स्नान किया, उस समय प्रहर्षणकारी अशरीरिणी वाणी कोमल और गम्भीर स्वरसे सुन पड़ी,—हे विप्रवृन्द! तुम लोगोंने प्रसन्न अन्तःकरणसे उत्तम रीतिसे तपस्या की है, तुम लोग भक्त हो और किस प्रकार नारायणका दर्शन करोगे, उस विषयके जिज्ञासु हुए हो, इसलिये क्षीरसागरके उत्तर भागमें महाप्रभावयुक्त श्वेतद्वीप है, वहांपर चन्द्रमाके समान तेजसे युक्त नारायणमें रत मनुष्य एकान्त भावसे पुरुषोत्तममें भक्ति करके निवास करते हैं, श्वेतद्वीप निवासी सब पुरुष अतिन्द्रिय, निराहार, अनिस्पन्द, अत्यन्त भक्तिनिष्ठ और परमात्माके ध्यानमें रत हैं, वे लोग सनातन देव सहस्रार्चि

नारायणमें प्रवेश किया करते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! इसीलिये तुम लोग वहां ही जाओ, उस स्थानमें हमारा स्वरूप प्रकाशित है।

अनन्तर हम लोग उस अशरीरिणी वाणीको सुनके यथा-प्रसिद्ध मार्गको अवलम्बन करके उस देशमें गये। जब हम लोग नारायणका ध्यान करते हुए उनके दर्शनकी इच्छासे श्वेत महाद्वीपमें पहुंचे, तब वह हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए और नयनगोचर होते ही उस ही समय अन्तर्द्धान होगये। उनके तेजःप्रभावसे हम लोगोंकी दर्शनेन्द्रिय आच्छन्न होगई, इससे फिर हम उस पुरुषको न देख सके; किन्तु उनके दक्षिण दर्शन निबन्धनसे हम लोगोंमें विज्ञान उत्पन्न हुआ। जिन्होंने तपस्या नहीं की है, वे लोग सहसा उसे नहीं देख सकते, इससे हम लोगोंने एक सौ वर्षतक उस समयके अनुसार महत् तपस्या करके व्रत समाप्त होनेपर शुभाचार मनुष्योंको देखा; वे लोग चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण, सब लक्षणोंसे युक्त होके सदा हाथ जोड़के उर्द्ध मुख अथवा कोई कोई पूर्व्व ओर मुख करके जप कर रहे हैं। उन महात्मा लोग जो जपकरते थे, उसका नाम मानस जप है, वैसी एकाग्रचित्तता निबन्धनसे नारायण प्रसन्न होते हैं, हे मुनिवर! युग क्षयके समय सूर्य्यकी जैसी प्रभा होती है, उनमेंसे हर एककी वैसी ही प्रभा थी। हमने विचारा, कि वह द्वीप केवल तेजका आधार है। उस द्वीपके निवासी मनुष्योंके बीच सभी महातेजस्वी थे, कोई एक दूसरेसे अधिक तेजस्वी न दीख पड़े।

हे वृहस्पति! अनन्तर हमने फिर युगपत समुदित सहस्र सूर्य्यकी प्रभाको सहसा निरीक्षण किया। अनन्तर वे समस्त मनुष्य एकत्रित होकर प्रसन्नचित्तसे हाथ जोड़कर शीघ्रताके सहित वेगपूर्व्वक दौड़के उनके निकट गये। वे सब कोई 'नम' केवल यही वचन बोलने लगे। हम लोग उस समय "नमोनम" यह विपुल ध्वनि सुनने लगे। अनन्तर उन मनुष्योंने उस देवकी पूजाका उपहार लाके उपस्थित किया; हम लोगोंके नेत्रकी ज्योति और इन्द्रियोंके अवसन्न होनेसे कुछ भी न दीख पड़ा। एक मात्र विततरूपसे उच्चारित शब्द ही हमें सुनाई देने लगा। हे पुण्डरीकाक्ष! तुम्हारी जय हो, हे विश्वभावन! तुम्हें नमस्कार है, हे हृषीकेश महापुरुष! हे पूर्व्वज! तुम्हें नमस्कार है। शिक्षाक्षर युक्त इस ही शब्दको हम लोग सुनने लगे। उस समय सर्व्वगन्धवह पवित्र वायु-दिव्य पुष्पों और कर्म्मयोग्य औषधियोंसे युक्त होकर बहने लगा। उन अत्यन्त निष्ठायुक्त पञ्चकालज्ञ परम भक्तिमान मनुष्योंने वचन, मन, कर्म्मके जरिये नारायणकी पूजा की। उन लोगोंने जिस प्रकार वचन उच्चारण किया, बोध होता है, उस ही के अनुसार वहां पर नारायण प्रकट हुए, परन्तु हम लोग उनकी मायासे मोहित होकर उन्हें देखनेमें समर्थ न हुए। हे आङ्गिरस प्रवर! वायुके सम्यक् निवृत्त और पूजाका उपहार प्रतिपादित होनेपर हम लोगोंका चित्त चिन्तासे व्याकुल हुआ। उन शुद्धयोनि सहस्र मनुष्योंके बीच किसीने मन अथवा दर्शनके सहारे हम लोगोंका सम्मान नहीं किया। एक भावसे युक्त शान्त मुनियोंने ब्रह्मभावका अनुष्ठान करते हुए हम लोगोंके विषयमें कोई भाव प्रकाशित न किया। अन्तमें जब हम लोग अत्यन्त थक गये और तपस्याके जरिये कर्षित हुए, तब आकाशसे कोई अशरीर भूत हमसे नीचे कहा हुआ वचन बोला, अदृश्य पुरुष बोला, ये जो सब इन्द्रियोंसे रहित श्वेत-वर्ण पुरुष दीखते हैं, इन द्विज श्रेष्ठोंके दीख पड़नेसे ही देवेश हरिका दर्शन होता है। हे मुनिश्रेष्ठ! तुम लोग जिस स्थानसे आये थे, शीघ्र ही वहां चले जाओ; भक्तिहीन मनुष्य किसी भांति उस देवका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते। हे द्विजसत्तम! बहुत समयतक

अत्यन्त भक्तिनिष्ठ होने पर प्रभा-मण्डलके सहारे उस दुर्द्दर्श्य भगवानका तुम लोग दर्शन करनेमें समर्थ होगे ; इसलिये तुम लोगोंको महत् कार्य्य करना होगा। हे विप्रवृन्द ! इसके अनन्तर सत्ययुगके बीतने और विपर्य्यस्त होने पर वैवस्वत मन्वन्तरमें त्रेतायुगके प्रारम्भसमय देवताओंकी कार्य्य-सिद्धिके निमित्त तुम लोग सहाय होगे। अनन्तर हम लोग उस अमृत समान अद्भुत वचनको सुनके उनकी कृपासे शीघ्र ही अनुमिलषित स्थानमें चले आये। इस प्रकारकी कठोर तपस्या और हव्य कव्य प्रदान करने पर भी जब हम लोग ही उस देवका दर्शन न कर सके, तब तुम किस प्रकारसे उसके दर्शन करनेमें समर्थ होगे। विश्वस्रष्टा हव्य-कव्य भोक्ता महत् भूत अनादि-निधन अव्यक्त नारायण देव दानवोंसे पूजित हैं, इस-लिये उनका दर्शन करनेके लिये पुण्यपुञ्जकी आवश्यकता है। उदार बुद्धि बृहस्पतिने इस ही प्रकार एकतके वचन तथा द्वितके मतानुसार सदस्योंसे अनुनीत होकर यज्ञको समाप्त करके देवताओंकी पूजा की। राजा उपरिचर वसु यज्ञ समाप्त होनेपर प्रजापालन करने लगे। अनन्तर उन्होंने ब्रह्मशापद्वारा स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रवेश किया था। हे नृपश्रेष्ठ ! वह सत्य-धर्म्मयुक्त सदा धर्म्मानुरागी राजा भूमिके अन्तर्गत होनेपर भी नारायण-परायण होकर नारायण मन्त्रको जपते हुए उनकी कृपासे फिर स्वर्गमें गये। उन्होंने नारायणमें निष्ठानिबन्धनके कारण पृथ्वीतलसे थोड़े ही समयके बीच ब्रह्मलोकमें जाकर परम पद पाया।

३३६ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, यदि महात्मा राजा उपरिचर वसु परम भागवत थे, तब किस लिये वह स्वर्गसे भ्रष्ट होकर पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुए।

भीष्म बोले, हे भारत ! इस विषयमें प्राचीन लोग ऋषिवृन्द और देवताओंके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासको कहा करते हैं। यज्ञ करना होगा, अज शब्दसे बकरा जानना चाहिये, अन्य पशु नहीं ; यही वैदिकी मर्य्यादा है।

ऋषिवृन्द बोले, यज्ञके समय 'बीजके जरिये त्याग करें' यही वैदिकी श्रुति है। बीजहीका नाम अज है, इससे बकरा मारना उचित नहीं है। हे देववृन्द ! यज्ञमें पशुवध करना साधुओंका धर्म्म नहीं है, यह सत्ययुग सबसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसमें किस प्रकार पशुहिंसा हो सकती है।

भीष्म बोले, इस ही प्रकार देवताओंके सङ्ग ऋषियोंका विवाद होते रहने पर आकाशचर नृपश्रेष्ठ समग्रबल वाहनसे युक्त श्रीमान् राजा उपरिचर वसु उस स्थानमें उपस्थित हुए। द्विजातिवृन्द उस आकाशगामी वसुको सहसा गमन करते हुए देखके देवताओंसे बोले, यही राजा हम लोगोंके सन्देहको दूर करेगा, महात्मा वसुने विधिपूर्व्वक यज्ञ किया है, यह दानपतिश्रेष्ठ और सर्व्वभूतोंके हितप्रिय है, इसलिये यह किस प्रकार अन्यथा वचन कहेगा। देवताओं और ऋषियोंने ऐसा ही विचारके सहसा उस वसुराजके निकट जाके पूछा, हे राजन् ! अज अथवा ओषधि इन दोनोंमेंसे किस वस्तुके सहारे यज्ञ करना चाहिये। आपका वचन हम लोगोंके समीप प्रमाण स्वरूपसे माना जायगा। राजा उपरिचर वसु हाथ जोड़के उन लोगोंसे बोले, हे द्विजोत्तम-गण ! आप लोगोंके बीच किसका क्या मत है, उसे सत्य कहिये।

ऋषिवृन्द बोले, हे नराधिप ! धान्यके जरिये यज्ञ करना चाहिये, यह हम लोगोंका पक्ष है, और देवताओंका पशुके जरिये ही यज्ञ करना मत है। हे राजन् ! इन दोनों मतोंके बीच आपको जो सम्मत हो, उसे हम लोगोंके समीप प्रकट करिये।

भीष्म बोले, उपरिचर वसुने देवताओंका मत जानके उनके पक्षको अवलम्बन करके बकरेसे ही यज्ञ करना उचित है, ऐसा ही वचन कहा। अनन्तर सूर्य्यके समान तेजस्वी सब मुनियोंने क्रुद्ध होकर देव-पक्षपाती विमानमें स्थित वसुसे कहा, हे राजन्! तुमने जिस कारणसे देवताओंका पक्ष ग्रहण किया है, उस ही निमित्त स्वर्गसे गिरो और आजसे तुम्हारी आकाश-गति विनष्ट हुई। हमारे शापसे तुम पृथ्वीतल भेद करके उसमें प्रवेश करोगे।

हे राजन् उस समय उस ही मुहूर्त्तमें राजा उपरिचर वसुने नीचे गिरके भूविवरमें प्रवेश किया, परन्तु नारायणको आज्ञावशसे स्मृति शक्तिको परित्याग नहीं किया। इधर देवता लोग इकट्ठे होकर उक्त उपरिचर वसुके शाप विमोचन करनेके निमित्त अव्यग्र भावसे चिन्ता करने लगे, यह उक्त राजाके सुकृतका फल है। 'यह महानुभाव राजा हमारे लिये शाप-ग्रस्त हुआ है। हे देववृन्द! इसलिये हम लोगोंको इकट्ठे होके इसका प्रत्युपकार करना चाहिये।' देवता लोग इस विषयमें उद्योगी हो मनही मन निश्चय करके प्रसन्नचित्तसे उपरिचर वसुसे बोले, हे राजन्! तुम ब्राह्मण और देवताओंमें भक्ति किया करते हो, इसलिये सुरासुरगुरु हरि तुमपर अत्यन्त प्रसन्न होकर शाप विमोचन करेंगे। हे नृपवर! महानुभाव ब्राह्मणोंका अवश्य सम्मान करना योग्य है, उन लोगोंके तपोबलसे तुम्हें अवश्य उत्तम फल प्राप्त होगा। हे नृपसत्तम! जब कि तुम सहसा आकाशसे भ्रष्ट होके भूतलमें गिरे हो, तब हमलोग तुम्हारे ऊपर एक अनुग्रह करेंगे। हे निष्पाप! तुम शाप वशसे जबतक भूमिके छिद्रमें वास करोगे, तबतक हमारे अनुष्ठान निबन्धनसे समाहित ब्राह्मणोंके सहारे यज्ञ-समयमें उत्तम रीतिसे होमकी वसु धारा पाओगे; ग्लानि तुम्हें स्पर्श न कर सकेगी। हे राजेन्द्र! भूविवरमें निवास करनेके समय तुम्हें भूख प्यास न लगेगी, वसुधारा पान करनेसे तुम तेजपुञ्जके जरिये परिपूरित होगे। हमारे वर-प्रभावसे भगवान् प्रसन्न होकर तुम्हें ब्रह्मलोकमें ले जायगे। उन देवताओंने इस ही प्रकार राजाको वरदान करके निज निज स्थानपर गमन किया और महा तपस्वी ऋषियोंने भी निजाश्रमको प्रस्थान किया।

हे भारत! अनन्तर उपरिचर वसुने विश्वक्सेन भगवान्‌की पूजा की और सदा नारायण मुखोच्चारित मन्त्रका जप करने लगे। वह भूविवरमें वास करके भी पञ्च महाकालमें पञ्च यज्ञके जरिये सुरपति हरिको पूजा करते थे। अनन्तर भगवान नारायण उस अनन्यभक्त, जित चित्त हरिपरायण राजाको भक्तिसे प्रसन्न हुए, वरदाता भगवान विष्णु उस समय निकटवर्त्ती महावेगशाली विहङ्गवर प्रियपात्र गरुड़से बोले, हे महाभाग खगेश्वर! मेरे वचनके अनुसार अवलोकन करो। संशितव्रत धर्म्मात्मा वसु नाम सम्राट् ब्राह्मणोंके कोपसे पृथ्वीतलमें प्रविष्ट हुआ है। हे खगवर! अब ब्राह्मण लोग उनके जरिये सम्मानित हुए हैं, इसलिये तुम मेरी आज्ञाके अनुसार उस भूगर्भमें छिपे हुए राजाके निकट गमन करो। हे गरुत्मन्! तुम उस अधश्चर राजाको शीघ्र ही नभश्चर करो। अनन्तर वायुके समान वेगशाली गरुड़ने दोनो पङ्ख फटकारते हुए जिस स्थानमें वसुराज निवास करते थे, उस पृथ्वीविवरमें प्रवेश किया विनता पुत्र गरुड़ सहसा उसे उठाके शीघ्र ही आकाशमें उड़े और उन्हें आकाशमें परित्याग किया, उस ही मुहूर्त्तमें वह राजा फिर उपरिचर हुआ और उसने सशरीर ब्रह्म लोकमें गमन किया। हे कुन्तीनन्दन! इस ही प्रकार वाक्य दोषनिबन्धनसे वह महात्मा वसु ब्रह्म शापसे अधोगतिको प्राप्त हुए थे, देवताओंकी आज्ञानुसार वह केवल परम पुरुष हरिकी

आराधना करके थोड़ेही समयके बीच हिमशैलपरसे छूटके ब्रह्म लोकमें गये।

भीष्म बोले, हे नृपवर! जिस प्रकार मनुष्यगण उत्पन्न हुए थे वह सब तुम्हारे समीप मैंने वर्णन किया। महर्षि नारदने जिस प्रकार श्वेत द्वीपमें गमन किया था, वह सब तुम्हारे समीप कहता हूं, एकाग्रचित्त होकर सुनो।

३३७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, भगवान् महर्षि नारदने श्वेत महाद्वीपमें पहुंचके उन सफेदवर्ण चन्द्रमा समान मनुष्योंको देखा और सिर नीचा करके उन लोगोंको पूजा की; फिर उनके जरिये मनहीमन पूजित होकर नारायणका दर्शन करनेके अभिलाषी होकर जपपरायण और समस्त कृच्छ्रसाध्य व्रत करते हुए स्थित रहे। वह विप्रवर एकाग्रचित्त समाहित और ऊर्द्ध्वबाहु होकर निर्गुण और गुणात्मक विश्वात्माकी स्तुति करने लगे।

नारद मुनि बोले, हे देवोंकेदेव! तुम जीवोंके अन्तर्यामी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम सर्व्वव्यापकत्व-निबन्धनसे निष्क्रिय हो; असङ्गत्व हेतुसे निर्गुण हो, उदासीन बोधरूप होनेसे लोकसाक्षी हो, देहद्वयके प्रकाशक जीव हो, इसीसे क्षेत्रज्ञ कहाते हो, शरीर और जीवेशसे व्यायान होनेसे पुरुषोत्तम हो, देशकाल तथा यथार्थमें परिच्छेद रहित होनेसे अनन्त हो। स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरके जलानेवाले होनेसे पुरुष हो, समष्टि स्थूल शरीर आदिके दाहक हो, इसलिये महा पुरुष कहाते हो, अन्नमयादि पुरुषोंके बीच उत्तम अर्थात् सत्य ज्ञान और आनन्द स्वरूप होनेसे पुरुषोत्तम हो सत्त्व, रज और तमोरूप तथा त्रिगुण; तीनों गुणोंके सङ्घात रूप होनेसे प्रधान हो। तुम अमृत अर्थात् सुधा स्वरूप हो और अमृताख्य अर्थात् देवरूपी हो; अनन्ताख्य अर्थात् शेषनाग स्वरूप हो, तुम अव्याकृतात्मा होनेसे व्योम हो; अनादि होनेसे सनातन हो; कार्य्य और कारण रूपसे व्यक्त तथा अव्यक्त हो, ऋतधाम अर्थात् सत्यप्रकाश हो; आदिदेव नारायण और कर्म्म फलदाता हो, इसही कारण वसुप्रद कहाते हो; तुम दक्ष आदि प्रजापति स्वरूप हो, मोक्षोपदेशक सनकादि सुपति स्वरूप हो, अश्वत्थ प्रभृति वनस्पति स्वरूप हो। तुम महा प्रजापति अर्थात् चतुर्मुख स्वरूप हो। तुम ब्रह्मादि जीव रूपसे पशुओंके पति हो, इसलिये ऊर्ज्जस्पति कहाते हो। वाक्यके प्रवर्त्तक होनेसे वाचस्पति हो। तुम जगत्पति अर्थात् इन्द्र स्वरूप हो, मनस्पति अर्थात् सूत्रात्मा हो, दिवस्पति सूर्य्य स्वरूप हो, मरुत्पति प्राणवायु स्वरूप हो, जलपति वरुण स्वरूप हो, तुम्हीं पृथ्वीपति राजा हो, दिक्पति इन्द्र आदि दिक्पाल स्वरूप हो; अर्थात् महाप्रलयकालमें जगत्के आधार होनेके पूर्व्वनिवास हो; अप्रकाश्य हो; इसलिये गुह्य कहाते हो; ब्रह्माको वेद प्रदान किया है इसलिये ब्रह्म पुरोहित हो; ब्राह्मण शरीर साध्य यज्ञ और अध्ययनादि स्वरूप हो, इस निमित्त ब्रह्मकायिक कहाते हो, महाराजिक नामक देवगण विशेष और चतुर्म्महाराजिक, महाभासुर, सप्त महाभाग अर्थात् सप्त संख्यक महत् यज्ञभाग स्वरूप हो। तुम यमगण हो इसलिये याम्य कहाते हो; तुम चित्रगुप्तादिरूप होनेसे महायाम्य कहे जाते हो; यमपत्नीमें आसक्त होनेसे संज्ञासंज्ञ हो; तुम तुषित और महातुषित देवगण स्वरूप हो; मृत्यु स्वरूप होनेसे प्रतर्द्दन कहाते हो; मृत्युकी सहायताके जरिये कल्पित काम रोगादि स्वरूप हो, इसीसे परिनिर्म्मित कहाते हो; तदन्य शम अर्थात् आरोग्य स्वरूप होनेसे अपरिनिर्म्मित हो; कामादि ग्रस्त न होनेसे वशवर्त्ती हो; शमादिमान हो, इसलिये अपरिनिन्दित कहाते

हो ; सर्व्व-आतीव रूपोंमें अनन्त हो, इसीसे अपरिमित कहाते हो ; तुम शास्य होनेसे वश-वर्त्ती हो, और शास्ता हो, इसलिये अवशवर्त्ती कहाते हो। तुम अग्निहोत्र आदि यज्ञ, ब्रह्म-यज्ञ आदि महायज्ञ, यज्ञ सम्भव ऋत्विक आदि यज्ञयोनिवेद, यज्ञगर्भ अग्नि और यज्ञ हृदय अर्थात् यज्ञादि उपासना स्वरूप हो। तुम यज्ञ स्तुत, यज्ञभाग हर पञ्च यज्ञ हो और अहो-रात्र, मास, ऋतु, अयन और सम्वत्सर इस पञ्च-काल कर्तृत्वरूपसे जो गीतामें प्रसिद्ध है, तुम उनके पति हो, इसलिये पञ्चकाल कर्त्तृपति कहाते हो ; पञ्चरात्र नाम आगमगम्य होनेसे तुम पञ्चरात्रिक हो। तुम अकुण्ठित हो, इसही निमित्त वैकुण्ठ कहाते हो ; किसीके निकट पराजित न होनेसे अपराजित हो। तुम मान-सोपाधिक हो, इससे मानसिक कहाते हो और नामसे विदित रहनेसे तुम्हारे नाम नामक हो। तुम ब्रह्माके भी प्रभु हो, इसीसे परस्वामी कहाते हो ; तुमने वेद व्रत समाप्त किया है, इससे तुम्हारा नाम सुस्नात है। तुम त्रिदण्ड-धारी हो, इसीसे हंस और परमहंस नाम है ; दण्डादि हीन होनेसे महाहंस कहाते हो, तुम परम याज्ञिक सांख्ययोग और सांख्य मूर्त्तिस्व रूप हो। तुम जीवमात्रमें शयन कर रहे हो ; इसीसे अमृतेशय नाम है; हृदयमें शयन करनेसे हिरण्येशय हो, इन्द्रियोंमें शयन करनेसे देवे-शय कहाते हो, समुद्रके जलमें शयन किया करते हो, इसलिये कुशेशय हो, वेदके बीच निवास करते हो, इससे ब्रह्मेशय नाम है, ब्रह्मा-ण्डमें विद्यमान हो, इसीसे पद्मेशय कहाते हो, तुम विश्व संसारके ईश्वर होनेसे विश्वेश्वर कहाते हो ; भक्तोंको पालन करनेके लिये सब दिशाओंमें तुम्हारी सब सेना गमन करनेमें समर्थ हैं ; इसहीसे तुम्हारा नाम विश्वक्सेन है। जगत्‌में सत्त्व रूपसे तुम्हारा सम्बन्ध है। इसीसे तुम जगदन्वय हो, तुम ही जगत्‌की प्रकृति हो ; अग्नि तुम्हारा ही मुख स्वरूप है, तुम्हीं वाड़वामुख अग्नि स्वरूप हो, तुम्हीं आहुति और सारथि अग्निरूप हो, तुमही वषट्-कार तुम्हीं ओंकार, तुम ही जप हो ; तुम ही मन और चन्द्रमा हो, तुम ही आवेक्षणके जरिये संस्कृत यज्ञीय हवि स्वरूप हो। तुम ही सूर्य्य तुम्हीं दिग्गज, तुम्हीं दिग्भानु और तुम ही विदिग्भानु हो। तुमही हयशिरा, तुम्हीं तैत्ति-रीय उपनिषद्‌में पठित प्रथम त्रिसुपर्ण मन्त्र अर्थात् आदित्यदैवत जगत्‌कर्त्ता हो, इस ही लिये प्रथम त्रिसौपर्ण कहाते हो, तुमने ब्राह्मण आदि वर्णोंको धारण किया है, इसीसे तुम्हारा नाम वर्णधर है। तुम गार्हपत्य, दक्षिण, आव-हनीय, सभ्य और आवसथ्य—पञ्चाग्नि स्वरूप हो। नाचिकेत नाम अग्निको तीन बार जिसने चयन किया है, तुम वही त्रिनाचिकेत-संज्ञक हो ; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन षड़ङ्ग निधान वेद स्वरूप हो। तुम प्राग् ज्योतिष और ज्येष्ठ सामग नामक सामगान स्वरूप हो ; तुमने सामगोंके व्रतको धारण किया है, इससे सामिक व्रतधर हो। तुम अथर्व्वशिरा नाम उपनिषत् रूप हो, सौर, शाक्त, गाणपत्य, शैव और वैष्णव, इन पञ्चागमसे प्रतिपाद्य हो, इस ही निमित्त पञ्च महाकल्प कहाते हो। तुम ही फेणपाचार्य्य, वालखिल्य, वैखानस, अभग्नयोग और अभग्नवि-चार हो। तुम ही युगादि, युगमध्य, युगनिधन आखण्डल अर्थात् इन्द्र हो ; तुम्हीं प्राचीनगर्भ और कौशिकमुनि स्वरूप हो ; तुम अनेक पुरु-षोंसे स्तुत होते हो, इसीसे तुम्हारा नाम पुरु-ष्टुत है। तुम पुरुहूत, विश्वकर्त्ता, विश्वरूप, अनन्तगति, अनन्त शरीर, अनन्त अनादि, अमध्य, अव्यक्तमध्य, अव्यक्त निधन, व्रतावास, समुद्राधिवास, यशोवास, तपोवास, दमावास लक्ष्म्यावास, विद्यावास, कीर्त्त्यावास श्रीवास, सर्व्वावास, वासुदेव और सर्व्व मनोरथप्रद हो,

इस ही निमित्त सर्व्वहन्तक कहाते हो। तुमने रामावतारमें हनुमानको वाहन बनाया था, इसलिये हरिहय हो, तुम ही हरिमेध अर्थात् अश्वमेधयज्ञस्वरूप हो, तुम महायज्ञभाग हर, वरप्रद, सुखप्रद, धनप्रद, हरिमेध अर्थात् हरि-भक्त, यम, नियम, महानियम, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र, महाकृच्छ्र, सर्व्वकृच्छ्र नियमधर, निवृत्त भ्रम, प्रवचनगत अर्थात् अध्ययनमें प्रवृत्त ब्रह्मचारी हो, तुम पृश्निगर्भ प्रवृत्त अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तरमें पृश्नि जो कि जन्मान्तरमें अदितिरूपसे उत्पन्न हुई थी, उसके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। तुम वेद-क्रिय अज, सर्व्वगति, सर्व्वदर्शी, अग्राह्य, अचल, महाविभूत, महात्म-शरीर अर्थात् विराटमू-र्त्तिधारी, पवित्र, महापवित्र, हिरण्मय, बृहत, अप्रतर्क्य, अविज्ञेयब्रह्माग्र, प्रजासर्ग-कर, प्रजानिधनकर, महामायाधर, चित्रशि-खण्डी, वरप्रद, पुरोडाशभागहर, गताध्वर, छिन्नतृष्ण, छिन्नसंशय, सर्व्वतोवृत, निवृत्तरूप, ब्राह्मणरूप, ब्राह्मणप्रिय, विश्वमूर्त्ति, महामूर्त्ति, और बान्धव हो। हे भक्तवत्सल ब्रह्मण्यदेव! मैं तुम्हारा दर्शन करनेके निमित्त अभिलाष करता हूं, तुम एकान्त दर्शन मोक्षस्वरूप हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम्हें नमस्कार है।

३३८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, विश्वरूपधारी भगवानने इस ही प्रकार गुह्य और तथ्य नामोंके सहारे स्तुत होकर उस मुनिश्रेष्ठ नारदको दर्शन दिया। उस समय भगवानका वह शरीर चन्द्रमासे कुछ विशुद्ध और चन्द्रमासे किञ्चित प्रभेद विशिष्ट था, कुछ अग्निवर्ण और कुछ नक्षत्राकृतिके समान था, वह सर्व्वभूत संयोगी प्रभु किञ्चित शुक्लपक्षके समान कुछ स्फटिकसमान नीलाञ्जन चयप्रख्य और किञ्चित जातरूप सदृश प्रभायुक्त थे; किसी स्थलमें प्रवालाङ्कुर वर्ण, किसी स्थानमें श्वेतवर्ण, कहीं सुवर्ण वर्णाभ, किसी च अन वैदूर्य्य समान, कहीं नील वैदूर्य्य सदृश, किसी स्थानमें इन्द्र नील प्रभायुक्त, कहीं मयूरग्रीवाके समान आभासे युक्त, किसी स्थानमें मुक्ताहार सदृश सनातन नारायणने यह सब अनेक प्रका-रका वर्ण और रूपधारण किया था, वही श्रीमान् भगवान् सहस्र नेत्र, सहस्र शीर्ष सहस्रपात्, सहस्रोदर और सहस्र बाहु है और कभी वह अव्यक्त भावसे निवास करता है; वह दिवनारा-यण सुखमण्डलसे ओङ्कार और ओंकार सम्बन्ध-वती सावित्रीको उद्गीरण करते हुए अन्य मुखोंसे चारों वेदोंको उच्चारण करके आरण्यक मन्त्रोंका गान करने लगे। उस देवेश्वर हरिने उस समय यज्ञपतिकी मूर्त्ति धारणकर वशी होकर हाथके सहारे वेदी, कमण्डलु, सफेद वर्णकी मणि, दोनों उपानह, कुशसमूह, मृग-चाल दण्डकाष्ठ और प्रज्वलित अग्निको धारण किया था। द्विजसत्तम नारदने प्रसन्न-चित्त तथा संयतवाक्य होकर उस सत्तम प्रसन्न परमेश्वरको प्रणाम करके उनकी वन्दना की; आदि देव अव्यय हरि उस समय नतशिरा नारद मुनिसे कहने लगे।

श्रीभगवान् बोले, महर्षि एकत, द्वित और त्रित मेरे दर्शनकी अभिलाषासे इस स्थानमें आये थे परन्तु वे लोग मेरा दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हुए, ऐकान्तिकके बिना कोई भी मुझे नहीं देख सकता; तुम योगियोंमें श्रेष्ठ हो, इसीसे मेरा दर्शन पाया है। हे द्विज! मेरा यह उत्तम शरीर धर्म्मके गृहमें उत्पन्न हुआ है, तुम सदा उसहीका भजन करो, जहांसे आये हो; अब उस ही स्थानमें गमन करो। हे विप्र! इस समय मेरे समीप जो वर मांगनेकी इच्छा हो, वह मांगो मैं अव्यय होके भी इस समय विश्वमूर्त्ति धारण करके तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं।

नारद मुनि बोले, हे देव! मैंने अब भग-वानका दर्शन किया, तब आज मेरी तपस्या,

यम और नियमका फल प्रत्यक्ष प्राप्त हुआ । हे भगवन् ! तुम विश्वदर्शी सिंहस्वरूप सर्व्वमूर्त्तिमय महा प्रभु और सनातन हो ; इसलिये मैंने जब तुम्हारा दर्शन किया, तब इससे बढ़के दूसरा वर मेरे लिये कौनसा है ?

भीष्म बोले, भगवान् इसी भांति विधाता पुत्र नारदको दर्शन देकर फिर उनसे बोले, हे नारद ! तुम गमन करो, देरी मत करो, ये सब अनिन्द्रिय अनाहार चन्द्रवर्च्चस पुरुष हमारे भक्त हैं, ये लोग एकाग्रचित्त होकर हमारा ध्यान करते हैं ; इसलिये इन लोगोंके लिये विघ्न न होना चाहिये । ये सब महाभाग पुरुष सिद्ध हैं, और येही पहले मोक्षपथावलम्बी हुए हैं, ये तम और रजोगुणसे निर्म्मुक्त हैं, इससे ये लोग मुझमें निःसन्देह प्रवेश करेंगे । जो नेत्रसे देखे नहीं जाते, गन्धवत् सूंघनेके विषय नहीं हैं, और रस वर्ज्जित सत्त्व, रज और तम, ये तीनों गुण जिनको भजना नहीं करते ; जो सर्व्वगत साक्षि चैतन्य स्वरूपसे लोगोंकी आत्मा कहे जाते हैं । सब प्राणियों तथा शरीरके नष्ट होनेसे वह विनष्ट नहीं होते । जन्म रहित शाश्वत, नित्य, निर्गुण, निरस, निष्क्रिय पुरुष जो चौबीस तत्त्वोंसे भी अतीत पचीसवां कहके विख्यात् है, वही एकमात्र ज्ञानदृश्य है, ऐसा ही वर्णित हुआ करता है ; इस संसारमें द्विजसत्तमगण जिसमें प्रवेश करके मुक्त होते हैं, उसको सनातन वासुदेवको परमात्मा जानो । हे नारद ! शुभाशुभ कर्म्मोंमें जो कदाचित लिप्त नहीं होता, उस देवकी महिमा और महात्म अवलोकन करो । सत्त्व, रज और तम, इन तीनोंको गुण कहते हैं, ये सब शरीरोंमें स्थित रहते तथा भ्रमण किया करते हैं । क्षेत्रज्ञ जीव इन सब गुणोंको भोग करता है, परन्तु गुण उसे भोग नहीं कर सकते । वह निर्गुण है, परन्तु गुणभोगी है, और गुणस्रष्टा होके भी गुणाधिक है ।

हे देवर्षि ! जगत्प्रतिष्ठा पृथ्वी जलमें लीन होती है, जल अग्निमें लीन हुआ करता है, अग्नि वायुमें लय होती है, वायु आकाशमें लीन होजाती है, आकाश मनमें प्रलयको प्राप्त हुआ करता है, और परम भूत मन उस ही अव्यक्तमें लीन होता है । हे ब्रह्मन् ! अव्यक्त भी निष्क्रिय पुरुषमें लीन होजाता है, उस सनातन पुरुषके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है । उस एकमात्र शाश्वत पुरुष वासुदेवके अतिरिक्त इस जगतमें स्थावर जङ्गम कोई पदार्थ भी नित्य नहीं है । महाबलवान वासुदेव सब भूतोंके आत्मभूत हैं । पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये पांचो महाभूत मिलके शरीरसंज्ञक होते हैं । हे ब्रह्मन् ! जो क्षिप्रकारी अदृश्य होके इस शरीरमें प्रविष्ट होता है, वह यथार्थमें उत्पन्न न होके भी मानो उत्पन्न होके शरीर चेष्टा निर्व्वाह करता है ; धातु संघातके अतिरिक्त शरीर कदापि उत्पन्न नहीं होता । हे ब्रह्मन् ! जीवके बिना वायु चेष्टा नहीं कर सकती । इस शरीरमें जो प्रविष्ट होता है, वही जीव है ; भगवानके व्यूह विशेष विश्वविधायक सङ्कर्षण और शेष नामसे वह प्रभु संख्यात् होता है । जो पुरुष निज कर्म्मोंके जरिये उससे जीवन्मुक्तत्व लाभ करते हैं, और प्रलयकालमें सब भूत जिसमें लीन होते हैं, वे सब भूतोंके मन प्रद्युम्न नामसे पठित हुआ करते हैं ; जो सङ्कर्षणसे उत्पन्न होता है, वही कर्त्ता कारण और कार्य्य स्वरूप है ; और प्रद्युम्नसे यह स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् उत्पन्न होता है ; इस होका नाम अनिरुद्ध है ; यही ईश्वर है, और सब कार्य्योंमें व्यक्त होरहा है । हे राजेन्द्र ! भगवान् वासुदेव जो क्षेत्रज्ञ और निर्गुण स्वरूपसे वर्णित हुए हैं, उन्हें ही सङ्कर्षण अर्थात् जीव जानो ; सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न उत्पन्न होते हैं, इसे ही मन कहा जाता है । प्रद्युम्नसे जो अनिरुद्ध उत्पन्न होते हैं, वह भी

अहंकार और ईश्वर हैं। हे नारद! मुझसे ही स्थावर जङ्गममय समस्त जगत् सद्सत् पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इस लोकमें मेरे भक्त लोग मुझमें प्रविष्ट होके मुक्त होते हैं; मुझे निष्क्रिय पचीसवां पुरुष जानो, मैं निर्गुण निष्कल निर्द्वन्द और निष्परिग्रह हूं। तुम ऐसा मत समझो, कि रूपवान होकर दीख पड़ता हूं। मैं इच्छा करनेसे मुहूर्त्त मात्रमें ही विलीन होसकता हूं, मैं जगत्का गुरु और नियन्ता हूं।

हे नारद! तुम जो मेरा दर्शन करते हो, यह मेरी ही उत्पन्न करी हुई माया है; इस ही प्रकार सब भूतोंमें गुणोंके सहारे संयुक्त न होनेसे तुम मुझे जाननेमें समर्थ न होते। हे नारद! तुम्हारे समीप मैंने इन चारों मूर्त्तियोंके विषयको पूर्ण रीतिसे वर्णन किया; मैं कर्त्ता, कार्य्य और कारण हूं; मैं ही जीव संघात अर्थात् जड़वर्ग हूं और मुझमें ही जीव स्थित होते हैं। "मैंने जीवका दर्शन किया"—तुम्हारी इस समय ऐसी बुद्धि न हो, हे ब्रह्मन्! मैं सर्व्वत्रगामी और सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हूं, प्राणियोंके शरीर नष्ट होनेपर मैं विनष्ट नहीं होता। हे मुनि! वह मोक्षनिष्ठ महाभाग मनुष्य सिद्ध हुए हैं, वे लोग तम और रजोगुणसे छूटकर मुझमें प्रविष्ट होंगे। सब लोकोंके आदिभूत अनिर्व्वचनीय चतुर्म्मुख हिरण्यगर्भ सनातन देव ब्रह्मा मेरे अनेक विषयोंका ध्यान किया करते हैं। रुद्रदेव मेरे क्रोधवश ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। देखिये, ये ग्यारह रुद्र मेरी दहिनी ओर स्थित हैं, बारहों आदित्य मेरी बाईं ओर खड़े हैं, अगाड़ीमें सुरोत्तम आठों वसु निवास करते हैं, पीछे नासत्य और दस्र नाम सर्व्वदाहय प्रजापति और सत्यात्मा सप्तर्षियोंको देखो। सब वेदों और सैकड़ों यज्ञों, अमृत और महौषधियोंको देखो, तपस्या, नियम और पृथक् पृथक् समस्त यम तथा अणिमा आदि अष्टगुणयुक्त ऐश्वर्य्यकी एकत्रित मूर्त्तिके समान देखो। श्री, लक्ष्मी, कीर्त्ति और ककुद्मिनी पृथ्वी अर्थात् पर्व्वतमय ककुदयुक्त पृथ्वी और वेदमाता सरस्वती देवीको मुझमें निवास करती हुई देखो।

हे नारद! ज्योतिश्रेष्ठ आकाशचारी ध्रुव, अम्भोधर चारों समुद्र, नदियें और समस्त तालाब तथा मूर्त्तिमान पितरोंको देखो। हे मुनिसत्तम! देखो, सत्व, रज और तम, ये तीनों गुण मूर्त्ति-रहित होकर मुझमें निवास करते हैं। हे मुनि! देवकार्य्योंसे पितृकार्य्य श्रेष्ठ है, एकमात्र मैं ही सब पितरोंका आदि पिता हूं, मैं पश्चिमोत्तर समुद्रमें हयशिरा होके श्रद्धान्वित होकर उत्तम रीतिसे होम किये हुए हव्य कव्यको पान करता हूं। मैंने पहले ब्रह्माको उत्पन्न किया, उन्होंने मेरे जरिये उत्पन्न होके स्वयं यज्ञरूपधारी होकर मेरी पूजा की थी। अनन्तर मैंने उनके ऊपर प्रसन्न होकर यह सब उत्तम वर प्रदान किया, कि सृष्टिके आरम्भमें तुम हमारे पुत्र और सब लोगोंके अध्यक्ष होगे और अहंकारको उत्पन्न करनेसे विधाता नामसे विख्यात् होगे। कोई पुरुष तुम्हारी निर्द्दिष्ट की हुई मर्य्यादाको अतिक्रम न कर सकेगा। हे संशितव्रत महाभाग तपोधन ब्रह्मन्! वर मांगनेवाले देवता, असुर, ऋषि और पितरोंको सदा तुम वरदान करोगे; तुम विविध प्राणियोंके उपास्य होगे। हे ब्रह्मन्! मैं देवकार्य्य साधन करनेके लिये सदा उत्पन्न होके पुत्रकी भांति तुम्हारा अनुशास्य और नियोज्य हूंगा।

अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको यह सब तथा और भी अनेक प्रकारके मनोहर वर देकर मैं प्रसन्न होकर निवृत्त हुआ था। सब धर्म्मोको परम निवृत्ति ही निर्व्वाणरूपसे कही गई है। इसलिये निवृत्तिनिष्ठ और सर्व्वाङ्ग निवृत होकर धर्म्माचरण करे, यह सांख्य शास्त्रका निश्चित-निश्चय है, आचार्य्योंने आदित्य मण्डलस्थ विद्यासहाय समाधिनिष्ठ कपिलसे कहा था, वह भगवान् हिरण्यगर्भ वेदमें विविध रूपसे स्तुत

हुए हैं। हे ब्रह्मन् ! मैं उस ही योगमें अनुरक्त होकर योगशास्त्रमें वर्णित हुआ हूं, मैं शाश्वत होके भी व्यक्तभावसे आकाशमें निवास करता हूं।

अनन्तर सहस्र युगोंके बाद जगत्का संहार करूंगा। सब चराचर भूतोंको अपनेमें स्थापित करके अकेला ही महाविद्याके सङ्ग विहार करूंगा। अन्तमें महाविद्याके जरिये फिर सारे जगत्को उत्पन्न करूंगा। जो मेरी चौथी मूर्त्ति है, उसने अव्यय शेषको उत्पन्न किया है, उस शेषको ही सङ्कर्षण कहते हैं, सङ्कर्षण ही प्रद्युम्नको उत्पन्न करता है। प्रद्युम्नसे अनिरुद्धकी उत्पत्ति होती है। इस ही प्रकार बार बार मैं सृष्टि करता हूं; अनिरुद्धके नाभि-कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं; ब्रह्मासे सब स्थावर जङ्गम जीव उत्पन्न होते हैं। इस लोकमें जैसे आकाशमें सूर्य्य उदय और अस्त होता है, वैसे ही कल्पके आदिमें बार बार यह सृष्टि हुआ करती है। जैसे सूर्य्यके अदृश्य होने पर महाबलवान काल बलपूर्व्वक फिर उसे लाके उपस्थित करता है, वैसे ही मैं सब प्राणियोंके हितके लिये वाराह मूर्त्ति धारण करके सागर-रमेखला सत्त्वगणसे आक्रान्त नष्ट प्राय पृथ्वीको बलपूर्व्वक निज स्थानपर लाऊंगा और बलसे गर्व्वित हिरण्याक्ष दैत्यको मारूंगा। इसके अतिरिक्त मैं फिर देवताओंके कार्य्यको सिद्ध करनेके लिये नरसिंह शरीर धारण करके यज्ञ-नाशक दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको मारूंगा। विरोचनका पुत्र बलि नाम एक बलवान महासुर जन्मेगा; वह देवता, असुर और राक्षसोंसे अवध्य होकर इन्द्रको उनके राज्यसे निकाल बाहर करेगा। उसके जरिये तीनों लोक अपहृत और शचिपति इन्द्रके पराजित होनेपर मैं अदितिके गर्भमें कश्यपके वीर्य्यसे द्वादश आदित्यरूपसे उत्पन्न हूंगा।

हे नारद ! अनन्तर मैं अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रको राज्य देकर देवताओंको निज निज स्थान पर स्थापित करूंगा। दानियोंमें श्रेष्ठ बलि सब देवताओंसे अवध्य है, इसलिये मैं उसे पाताल तलमें बसाऊंगा। मैं त्रेतायुगमें भृगुवंशमें राम रूपसे उत्पन्न हूंगा और उस समय समृद्धिशाली बल-वाहन युक्त क्षत्रियोंका नाश करूंगा। त्रेता और द्वापरके सन्ध्यांश उपस्थित होनेपर जगत्पति दाशरथि राम रूपसे अवतार लूंगा। हे द्विज ! प्रजापतिके पुत्र एकत और द्वित ऋषि त्रितके विषयमें अत्याचार करनेसे कुरूप होकर वानरयोनि लाभ करेंगे, उनके वंशमें जो सब इन्द्रके समान पराक्रमी महाबली महावीर्य्यवान वनवासी बन्दर उत्पन्न होंगे, वेही मेरे सुरकार्य्य साधनके विषयमें सहाय होंगे। अनन्तर मैं पुलस्त्य कुल कलंक महा घोर रौद्रमूर्त्ति सब लोकोंके कण्टकरूपी रावण राक्षस पतिको उसके अनुयायियोंके सहित मारूंगा। द्वापर और कलियुगके सन्धि-कालमें कंसके निमित्त मथुरामें मेरी उत्पत्ति होगी, उस समय मैं बहुतेरे देवकण्टक दानवोंका संहार करके कुशस्थली नाम द्वारकामें निवास करूंगा, द्वारकापुरीमें निवास करतेहुए अदितिके अप्रिय कार्य्य करनेवाले नरक, भौम, मूर और पीठ नामक दानवोंको मारूंगा। प्राग्ज्योतिषपुरवासी विविध धन रत्नोंसे युक्त दानव श्रेष्ठको मार कर समस्त स्त्री-रत्न कुशस्थलीमें लाऊंगा।

अनन्तर बाणराजाके प्रिय और हितैषी महेश्वर तथा महासेन नाम सदा उद्योगी दोनों दैत्योंको जिन्हें देवता लोग भी प्रणाम करेंगे, मैं पराजित करूंगा। अनन्तर बलिके पुत्र सहस्र भुजावाले वाणासुरको जीतके सौभ निवासी समस्त दानवोंका बध करूंगा। हे द्विजवर ! गार्ग तेजसे परिपूरित कालयवन नामसे जो पुरुष उत्पन्न होगा, मैं उसका बध करूंगा। सब राजाओंके विरोधी जरासन्ध नामक जो बलवान असुर गिरिव्रजमें अत्यन्त प्रबल राजा होगा, मेरी ही बुद्धि कौशलसे

मृत्युका मुख देखेगा। धर्मपुत्र युधिष्ठिरके यज्ञमें मैं शिशुपालका बध करूंगा, पृथ्वी पर महाबली सब राजाओंके इकट्ठे होनेपर अकेला इन्द्रपुत्र धनञ्जय मेरा सहाय होगा मैं भाइयोंके सहित युधिष्ठिरको स्वराज्यमें स्थापित करूंगा, उस ही समय सब लोग कहेंगे, कि ईश्वर नर-नारायण ऋषि-रूपसे कार्य्यके निमित्त उद्योगी होकर चत्रियकुलको जला रहा है। हे सत्तम! पृथ्वीके अभिलषित भारको उतारके आत्मज्ञानके अनुसार द्वारकामें स्थित सब यदुवंशियोंमें घोर प्रलय उत्पन्न करूंगा। मैं चारों मूर्त्तियोंको धारण करके तथा अपरिमेय कार्य्योंको पूरा करके ब्रह्मासे सत्कृत होकर निज लोकोंमें गमन करूंगा। हे द्विजवर! मैं हंस कच्छप, मत्स्य, वाराह, नृसिंह, दाशरथि राम, कृष्ण और कल्कि रूपसे उत्पन्न हूंगा। वेद-श्रुति जिस समय नष्ट होगी उस समयमें मैं उसे फिर लौटा लाऊंगा। पहले सतयुगमें मैंने जो सब वेदश्रुति बनाई थी, वह अतिक्रान्त हुई है, अथवा पुराणोंके बीच किसी किसी स्थलमें सुनी जाती है। मेरी बहुतेरी उत्तम उत्पत्ति व्यतीत हुई है, लोककार्य्योंको निर्व्वाह करके फिर निज प्रकृतिको प्राप्त हुई है। हे ब्रह्मन्! तुमने मोक्ष निष्ठायुक्त बुद्धि अवलम्बन करके इस समय जिस प्रकारसे मेरा दर्शन किया है, ब्रह्मा भी इस प्रकार मेरा दर्शन नहीं कर सकते। हे सत्तम! तुम भक्तिमान हो, इस ही लिये मैंने तुम्हारे समीप प्राचीन और भविष्य रहस्योंको वर्णन किया है।

भीष्म बोले, इस ही प्रकार वह भगवान विश्वमूर्त्तिधारी अविनाशी देव इतनी कथा सुनाके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये। महा तेजस्वी नारद इच्छित अनुग्रह लाभ करके नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये बदरिकाश्रममें गये। हे तात! महर्षि नारदने जिस प्रकार दर्शन किया और जिस प्रकार सुना था, उस ही भांति ब्रह्माके स्थानमें नारायणके मुखसे वर्णित चारों वेदोंसे युक्त सांख्य-योग संयुक्त पञ्चरात्र नामक यह महा उपनिषत सुनाया था।

युधिष्ठिर बोले, इस आश्चर्यभूत भगवान महात्माकी कथा ब्रह्मा नहीं जानते थे, जो उन्होंने नारदके मुखसे सुना, भगवान पितामह उस ही देवसे उत्पन्न हुए हैं, इससे वह अत्यन्त तेजस्वी नारायणके प्रभावको किस लिये नहीं जानते थे?

भीष्म बोले, हे राजेन्द्र! सौ हजार महाकल्पकी सृष्टि और प्रलय व्यतीत हुई हैं। हे राजन्! सृष्टिके आरम्भमें प्रजाको उत्पन्न करनेवाले प्रभु प्रजापति उत्पन्न होते हैं, इसलिये वह देवप्रवर आत्मप्रभव सर्व्वनियन्ता परमात्माको नारदसे भी अधिक जानते थे। ब्रह्माके स्थानमें जो सब सिद्ध लोग इकट्ठे हुए थे, नारदने उन्हींको वह वेद-सदृश पुराण सुनाया था। हे राजन्! अनन्तर सूर्य्यदेवने उन शुद्धचित्तवाले सिद्धोंके निकट उसे सुनके निज अनुगामी पवित्र बुद्धिवाले छः हजार ऋषियोंको सुनाया था। तापदाता सूर्य्यके समीप जो सब लोग स्थित थे, उन्होंने उनसे भी उक्त विषय कहा था। हे तात! सूर्य्यके अनुगामी ऋषियोंने सुमेरु पर्व्वतपर इकट्ठे हुए सब ऋषियोंको यह उत्तम उपाख्यान सुनाया था। हे राजेन्द्र! अनन्तर देवताओंके निकटसे द्विजवर मुनिसत्तम असितने उस विषयको सुनके पितरोंके समीप वर्णन किया था। हे तात! मेरे पिता शान्तनुने यह मुझसे कहा। हे भारत! मैंने उनसे सुनके इस समय तुम्हारे समीप वर्णन किया। जिन देवता अथवा मुनियोंने इस पुराणको सुना है, वे लोग सब प्रकारसे परमात्माकी पूजा करते हैं। हे राजन्! इस परम्परासे प्रचलित ऋषिप्रणीत आख्यानको जो पुरुष वासुदेवका भक्त नहीं है, तुम उससे किसी प्रकार न कहना। हे राजन्! तुमने मेरे समीपमें जो

सैकड़ों उपाख्यान सुने हैं, उन सबके बीच यह सारस्वरूपसे निकाला गया है। हे राजन्! सुरासुरोंने जिस प्रकार समुद्रको मथके अमृत निकाला था, वैसे ही पहली समयमें ब्राह्मणोंने इस कथारूपी अमृतको बाहर किया है। जो मनुष्य अत्यन्त सावधान और मोक्षमार्गमें आरूढ़ होके सदा इसे पढ़ेंगे अथवा सुनेंगे, वे श्वेतद्वीपमें जाके चन्द्रमाके समान मनुष्य शरीर धारण करके सहस्रार्चि युक्त परम देवमें प्रविष्ट होंगे, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। आर्त्त पुरुष आदिसे अन्ततक इस कथाको सुननेसे रोगसे छूट जाता है, जिज्ञासु पुरुष मनोवांछित फल पाता और भक्त निज गन्तव्य गतिको पाता है। हे राजन्! तुम भी सदा पुरुषोत्तमको पूजा करना वह समस्त जगतका पिता, माता और गुरु है। हे महाबाहु युधिष्ठिर! महाबुद्धिमान जनार्द्दन सनातन भगवान ब्रह्मण्यदेव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे जनमेजय! धर्म्मराज और उनके भातृगण इस उत्तम आख्यानको सुनके सब कोई नारायणमें रत हुए। हे भारत! "उस भगवानकी ही जय हुई" अनन्तर सब कोई जप परायण होके सदा इस ही वचनको उच्चारण करने लगे। हम लोगोंके गुरु महामुनि कृष्णद्वैपायनने नारायणका नाम उच्चारण करते हुए परम जप्य मन्त्रका जप किया। वह आकाशसे अमृतमय क्षीरसागरमें जाके देवेश्वरकी पूजा करके फिर अपने आश्रमपर चले आते थे।

भीष्म बोले, हे धर्म्मराज! यह नारद मुनिका कहा हुआ उत्तम उपाख्यान तुम्हारे निकट कहा गया; यह परम्परा क्रमसे प्रचलित हुआ चला आता है, पहले पिताने मुझसे यह उपाख्यान कहा था।

सूत बोले, वैशम्पायनके सहारे यह सब विषय कहा गया, जनमेजयने उसे सुनकर विधिपूर्व्वक आचरण किया था। हे नैमिषारण्यवासी द्विजश्रेष्ठ पुरुषो! आप सब लोगोंने ही तपस्या और व्रताचरण किये हैं, सब कोई वेदज्ञ ब्राह्मणोंके बीच मुख्य होनेसे शौनकके महायज्ञमें दीक्षित हुए हैं, इस समय आप लोग होम और यज्ञके द्वारा शाश्वत परमेश्वरकी पूजा करिये। इस परम्परा प्रचलित आख्यानको पहली समयमें पिताने मुझसे कहा था।

३३८ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे सूत! वह देव सर्व्व-शक्तिमान भगवान् स्वयं यज्ञेश्वर होकर किस प्रकार यज्ञ करता है, वह वेदकर्त्ता होके किस प्रकार वेद-वेदाङ्गवेत्ता कहके विख्यात हुआ। उस क्षमावान निखिल सामर्थवान भगवानने निवृत्ति धर्म्म अवलम्बन किया है, इसके अतिरिक्त वह निवृत्ति धर्म्मका विधान भी करता है; किस प्रकारसे देवताओंको प्रवृत्तिधर्म्मभागार्ह किया है; प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म्म परस्पर विरुद्ध होनेपर भी दोनों किस प्रकार उसमें स्थित हुए, तुमने सब धर्म्मसंहिता सुनी है, इसलिये हमारे इस गुप्त सन्देहको दूर करो।

सौति बोले, हे शौनकोत्तम! धीमान वेदव्यासके शिष्य वैशम्पायनकी पूजा करके राजा जनमेजयने जो प्रश्न किया था, मैं उस ही पौराणिकी कथाको तुम्हारे समीप कहता हूं इन देहधारियोंके अन्तरात्माका माहात्म्य सुनके महाप्राज्ञ राजा जनमेजयने वैशम्पायन मुनिसे जो कहा था, उसे सुनो।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! ये ब्रह्मासे युक्त सुरासुर और मनुष्योंके सहित सब लोग अभ्युदय विधिमें संसक्त हुए देखे जाते हैं। आपने कहा निर्व्वाण मोक्ष ही परम सुख है, इस लोकमें पुण्य पापसे रहित होकर जो लोग मुक्ति लाभ करते हैं, वेही सहस्रार्चि

अर्थात् अनन्तचिद्रूप देवमें प्रवेश किया करते हैं, मैंने ऐसा ही सुना है। यह पञ्चविधि मोक्ष प्रतिपादक धर्म्म अत्यन्त कष्टसे अनुष्ठान किया जाता है, देवता लोग जिसे परित्याग करके हव्य-कव्य भोजी हैं, उसका अनुष्ठान करना कितना कठिन है, वह इसीसे जाना जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मा, रुद्र, बलाराति देवराज इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, वरुण, आकाश, स्वर्ग और भूर्लोक तथा इनके अतिरिक्त जो सब देवतावृन्द हैं, वे सब आत्मपरिनिर्म्मित प्रलयसे अनभिज्ञ हैं। इस ही कारण जिन्होंने काल परिमाणसे स्मृति और प्रवृत्ति मार्गको अवलम्बन किया है, वे लोग शाश्वत, अव्यय और अक्षर निवृत्ति मार्गका आश्रय नहीं करते हैं; क्रियावान मनुष्योंमें काल परिमाणसे महान् दोष दीख पड़ता है। हे विप्र! मेरे हृदयमें यह संशय शल्यकी भांति उपस्थित है, तुम इतिहास कहके उसे छेदन करो, इस विषयमें मुझे अत्यन्त आश्चर्य्य होरहा है। हे द्विजवर! यज्ञके समय देवता लोग किस लिये भागहर रूपसे वर्णित हुए हैं? किस लिये देवता लोग यज्ञमें पूजित होते हैं। हे द्विजसत्तम! यज्ञ-स्थलमें जो लोग अपना हिस्सा लेते हैं, वे महायज्ञके सहारे याग करनेमें प्रवृत्त होने पर किसे यज्ञका भाग प्रदान किया करते हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे प्रजानाथ! तुमने अत्यन्त गूढ़ प्रश्न किया है, जिन लोगोंने तपस्या, वेदाध्ययन तथा पुराणोंको नहीं सुना है, वे सहसा इसका उत्तर देनेमें समर्थ नहीं हैं। पहले मैंने भी इस विषयको अपने गुरु महर्षि वेदव्याससे पूछा था, उन्होंने हम लोगोंसे जो कहा था; वह तुम्हारे समीप कहूंगा। सिद्ध चारणोंसे सेवित रमणीक सुमेरु पर्व्वतके ऊपरमें महाभाग वेदव्यासके सुमन्त, जैमिनि, दृढ़व्रत, पैल, मैं और शुकदेव, येही पांच पुरुष शिष्य थे; वह इन सब समागत दमयुक्त, पवित्र आचारमें रत, क्रोध जीतनेवाले और जितेन्द्रिय पांचो शिष्योंको चारोंवेद तथा पांचवां वेद महाभारत पढ़ाते थे। मेरे समान शिष्योंके वेदाभ्यास करते रहने पर कदाचित हम लोगोंको सन्देह हुआ था, तुमने जो पूछा है, हमने भी उस ही प्रकार गुरुके समीप वही प्रश्न किया था। हे भारत! इसलिये गुरुके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, इस समय तुम्हारे समीप वह सब वर्णन करूंगा। निखिल अज्ञान रूपी अन्धकारके हरनेवाले पराशरके पुत्र श्रीमान् व्यासदेव शिष्योंके वचनको सुनके बोले कि, हे शिष्यवृन्द! मैंने परम दारुण अत्यन्त महत् तपस्या की थी, इसहीसे समस्त भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान विषय मुझसे छिपे नहीं हैं। मैंने तपस्या करके इन्द्रियनिग्रह किया है, इसीसे नारायणकी कृपासे क्षीरसागर तटके समीप मेरी इच्छाके अनुसार यह त्रैकालिक ज्ञान उत्पन्न हुआ है, इसलिये तुम लोगोंके संशयके विषयको विधिपूर्व्वक उत्तम रीतिसे कहता हूं, तुम सब कोई सुनो। सृष्टिके आरम्भमें जो घटना हुई थी, मैंने उसे ज्ञाननेत्रसे देखा है। सांख्य योगवाले पुरुष जिसे परमात्मा कहते हैं, वह निज कर्म्मके सहारे महापुरुष कहके प्रसिद्ध होता है, उसहीसे अव्यक्त उत्पन्न होता है, पण्डित लोग इस ही अव्यक्तको प्रधान समझते हैं। अव्यक्त ईश्वरसे ही लोक सृष्टिके लिये व्यक्त उत्पन्न हुआ था, लोग उसेही अनिरुद्ध और महान् आत्मा कहा करते हैं। जो व्यक्त होके पितामहको उत्पन्न करता है, उस सर्व्व तेजोमयको ही अहंकार कहा जाता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि, ये महाभूत अहंकारसे उत्पन्न होते हैं। वह महाभूतोंको उत्पन्न करते फिर उनके गुणोंको प्रकट करता है। समस्त भूतोंसे जो मूर्त्तिमान रूपसे सिद्ध होते हैं उनके नाम सुनो।

मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, महात्मा वशिष्ठ और स्वायम्भुव मनु, इन आठोंको अष्ट-प्रकृति जानना चाहिये, क्यों कि अष्ट-प्रकृतिसे ही सब लोक प्रतिष्ठित हैं। जगत् पितामह ब्रह्माने सब लोगोंको सिद्धिके लिये वेदवेदाङ्ग संयुक्त और यज्ञाङ्ग सम्पन्न किया है। अष्ट-प्रकृतिसे ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है। क्रोधयुक्त रुद्रने अवतार लेके स्वयं दशरुद्रोंको उत्पन्न किया है। ये सब ग्यारह रुद्र विकार पुरुषरूपसे वर्णित होते हैं। वे सब रुद्रगण प्रकृति और देवर्षि लोग उत्पन्न होके सब लोकोंको कार्य्यसिद्धिके लिये ब्रह्माके समीप गये। वहां जाके बोले, हे पितामह! आपने प्रभुविष्णु होकर हम लोगोंको उत्पन्न किया है, इस समय हम लोगोंमेंसे जिसे जिस अधिकारमें स्थित रहना होगा, उस विषयमें उपदेश दीजिये। आपने जो अर्थ चिन्ता विषयक अधिकार निश्चय किया है, साहङ्कार कर्त्ता उसे किस प्रकार प्रतिपालन करेंगे। अधिकारके विषयमें कौन विचार करेगा और उसका कैसा बल होना चाहिये, आप उसे वर्णन करिये। महादेव प्रजापति ऐसा बचन सुनके उन देवताओंसे वच्यमाण रीतिसे वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे देवतावृन्द! तुम लोगोंने मेरे समीप उत्तम विज्ञप्ति की है, तुम्हारा मङ्गल हो, तुम लोगोंने जैसा सोचा है, मुझे भी वैसी ही चिन्ता उत्पन्न हुई है। तीनों लोकोंको किस प्रकार धारण करना चाहिये, तुम्हारा और मेरा किस प्रकारसे बल नष्ट न हो, इसे जाननेके लिये चलो हम सब कोई यहांसे गमन करके उस लोकसाक्षी अव्यक्त महापुरुषके शरणापन्न होवें, वह हमारे लिये जो हितकर होगा, वही उपदेश करेंगे।

अनन्तर वे लोकहितैषी ऋषिवृन्द और देवता लोग क्षीरसागरके उत्तर तटपर गये। वहां वे लोग ब्रह्मोक्त-वेद कल्पित तपस्याका अनुष्ठान करने लगे। वह दारुण तपस्याचरण महानियम नामसे विख्यात् हुआ। वे लोग ऊर्द्ध दृष्टि, ऊर्द्ध्वबाहु और एकाग्रचित्त हुए सभी एक चरणसे निवास करते हुए काष्ठकी भांति स्थित रहे। इसी प्रकार उन लोगोंने देवपरिमाणसे सहस्र वर्षतक अत्यन्त दारुण तपस्या करके वेद वेदाङ्ग भूषित मधुर वाणी सुनी।

श्रीभगवान बोले, हे ब्रह्मा आदि देवतावृन्द! हे तपस्वीगण! तुम्हारा स्वागत पूछनेके अनन्तर उत्तम वचन सुनाता हूं। तुम्हारा कार्य्य मुझे मालूम हुआ है। वह कार्य्य अत्यन्त वृहत् और लोक-हितकर है, तुम लोगोंको प्राणवायुकी परिपुष्टि करनेवाली प्रवृत्तियुक्त उक्त कार्य्य करना योग्य है। हे देवगण! कामनाके निमित्त मेरी आराधनासे तुम लोगोंने उत्तम तपस्या की है। हे महा सत्त्वगण! तुम लोग इस तपस्याका महत् फल भोग करोगे। लोकगुरु लोकपितामह ब्रह्मा और सब देवता लोग स्थिर होकर मेरे उद्देश्यसे यज्ञ करें और तुम सब कोई यज्ञमें हमारे नित्य भागको कल्पना करो, कि कौन किस अधिकारका स्वामी होगा, फिर उसमें जिस प्रकार तुम लोगोंका कल्याण होगा, उसे मैं वर्णन करूंगा।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, अनन्तर ब्रह्मा आदि देवता और महर्षि लोग यह वचन सुनके पुलकित हुए और वेदमें कही हुई विधिके अनुसार वैष्णव यज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञमें ब्रह्माने स्वयं नित्य भागकी कल्पना की और देवता तथा देवर्षि वृन्द अपना अपना भाग स्थिर करने लगे। उस सत्ययुगमें धर्म्मयुक्त परम सत्कृत सब भाग आदित्य वर्ण, तमोगुणसे रहित सर्व्वव्यापी सर्व्वगामी, वरदाता पुरुष प्रभु ईशान देवके निकट उपस्थित हुए। अनन्तर शरीररहित आकाशमें वरदाता देव अहिप्रवरने उन सब स्थित देवताओंसे यह वचन कहा, कि जिसने जिस भागकी कल्पना की

हो, वे सब भाग उस ही प्रकार मेरे निकट उपस्थित हुए हैं, इसलिये मैं प्रसन्न हुआ हूं, अब आवृत्तिलक्षण फल प्रदान करूंगा। हे देवगण! तुम लोगोंके सम्बन्धमें मेरे प्रसादसे यह लक्षण उत्पन्न होगा, कि तुम लोग युगयुगमें अनेक दक्षिणायुक्त यज्ञके जरिये यजन करते हुए प्रवृत्ति फलभागी होगे। जो देवता अथवा मनुष्य लोग सब लोकोंके बीच यज्ञके जरिये पूजा करनेमें प्रवृत्त होंगे, वे तुम लोगोंके लिये वेदमें कहे हुए सब भागोंकी कल्पना करेंगे इस महायज्ञमें जिसने जिस भांति मेरे भागको कल्पित किया है, मैंने वेदसूत्रमें उसे वैसा ही यज्ञभागी किया है; इसलिये तुम लोग लोकके बीच निज अधिकारमें अधिष्ठित होके यज्ञभागके उचित फल और सर्व्वार्थ चिन्तक होकर सब लोगोंको उत्पन्न करोगे। जो सब कार्य्य प्रवृत्तिफलके सहारे सतकृत होकर प्रचारित होंगे, उन्हीं सब कार्य्योंके जरिये तुम लोग अप्यायित और बलसंयुक्त होकर सब लोकोंको धारण करोगे। तुम लोगोंके विषयमें मेरी यह भावना होती है, कि तुम लोग सब यज्ञोंमें मनुष्योंके जरिये पूजित होगे। अनन्तर तुम लोग मेरा ध्यान करोगे। इस ही निमित्त सब वेद, यज्ञ और औषधि उत्पन्न हुई हैं; पृथ्वीतलमें यह सब वेदविधिके अनुसार पूर्णरीतिसे प्रयुक्त होनेसे देवता लोग प्रीति लाभ करेंगे।

हे सुरश्रेष्ठगण! जबतक यह कल्प नष्ट न होगा, तबतक तुम लोगोंकी प्रवृत्ति गुण कल्पित निर्म्माण, मेरे जरिये विहित हुआ है, इसलिये तुम लोग निज निज अधिकारके ईश्वर होकर लोकके हितका विचार करो। मरीचि, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ ये सातों मानससे उत्पन्न हुए हैं, ये लोग वेदवित् और मुख्य वेदाचार्य्य प्रवृत्तिधर्म्म परायण प्रजापतिरूपसे कल्पित हुए हैं। क्रियावान पुरुषोंका यह सनातन पथ कहा गया है; सर्व्व शक्तिसंयुक्त अनिरुद्ध लोक सर्गकर रूपसे वर्णित हुए हैं। सन, सनत्सुजात, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, कपिल और ऋषिप्रवर सत्तम, ये ब्रह्माके मानसपुत्र कहाते हैं, इन लोगोंमें स्वयं विज्ञान उत्पन्न हुआ है, इन्होंने निवृत्ति मार्गको अवलम्बन किया है। ये सांख्य ज्ञान विशारद मुख्य योगवित् पुरुष धर्म्मशास्त्रोंके आचार्य्य और मोक्षधर्म्मके प्रवर्त्तक हैं। प्रथम जो अव्यक्तसे त्रिगुणात्मक अहङ्कार प्रकट हुआ, जो उससे भी परे हैं, वही क्षेत्रज्ञ रूपसे कहा गया है। वह अहङ्कार क्रियावान मनुष्यों अर्थात पुनरावृत्ति विशिष्ट लोगोंके लिये दुर्लभ पथस्वरूप है। जो जीव जिस जिस कर्म्ममें जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं, प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति मार्गमें वे उस ही महत् फलको उपभोग करते हैं। ये लोकगुरु जगतके आदिकर्त्ता प्रभावयुक्त प्रजापति तुम लोगोंके पिता, माता और पिता मह हैं; ये मुझसे अनुशिष्ट होकर सब प्राणियोंके वरप्रद होंगे। जो ललाटसे उत्पन्न होकर रुद्ररूपसे इनके आत्मज हुए हैं, वे ब्रह्माकी आज्ञासे सब भूतोंको धारण करनेमें समर्थ होंगे। अब तुम लोग अपने अपने अधिकारपर जाके विधिपूर्व्वक विचार करो, समस्त लोगोंके बीच सब कार्य्योंके अनुष्ठानमें प्रवृत्त रहो, विलम्ब मत करो।

हे सुरोत्तमगण! इस लोकमें परमायुका परिमित समय है, इसलिये प्राणियोंके कर्म्म और गतिका विषय वर्णन करो। इस समय इस कालसे श्रेष्ठ सत्ययुग प्रवर्त्तित हुआ है; इस युगमें यज्ञीय पशु अहिंस्य रहेंगे, इसमें अन्यथा न होगा। हे देवगण! इस सतयुगमें सब धर्म्म चार चरणसे स्थित रहेंगे। अनन्तर त्रेतायुग प्रवर्त्तित होगा, उसमें तीनों वेद वर्त्तमान रहेंगे, धर्म्मका चौथा चरण न रहेगा, तिसके अनन्तर द्वापर नाम मिश्रकाल आवेगा,

उस युगमें धर्म्मके दो चरण रहेंगे। अन्तमें तिष्य नक्षत्रमें कलियुगके उपस्थित होनेपर धर्म्म सर्व्वत्र एक चरणसे निवास करेगा।

लोक गुरु भगवानके ऐसा कहने पर देवता और देवर्षि लोग बोले, जब धर्म्म जिस किसी स्थान पर जाके एक चरणसे निवास करेगा, उस समय हम लोगोंको क्या करना योग्य है? आप उसे ही वर्णन करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे सुरोत्तमगण! कलिकालमें जिस स्थानमें वेद, यज्ञ, सत्य, तपस्या, दम और अहिंसा धर्म्म संयुक्त होकर प्रचारित होगी, तुम लोग उस ही स्थानमें निवास करोगे, ऐसा करनेसे अधर्म्म तुम लोगोंको स्पर्श न कर सकेगा।

व्यासदेव बोले, ऋषियोंके सहित देवता लोग भगवानकी ऐसी आज्ञा सुनकर उन्हें नमस्कार करके निज निज अभिलषित स्थानपर गये। सुरपुरवासी देवताओंके सहित ऋषियोंके चले जानेपर, केवल एक मात्र ब्रह्मा अनिरुद्ध तनसे अधिष्ठित उस भगवानका दर्शन करनेके अभिलाषी होकर स्थित रहे। भगवानने कमण्डलु और त्रिदण्ड धारण करके साङ्ग वेदोंकी आवृत्ति करते हुए सुन्दर तथा महत् हयशिरा मूर्त्ति धारण करके उन्हें दर्शन दिया। लोककर्त्ता प्रभावशाली प्रजापतिने हयशिरा देवको देखकर सब लोकोंको हित कामनासे सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़के खड़े रहे। भगवानने उस समय विधाताका आलिङ्गन करके उन्हें यह वक्ष्यमाण वचन सुनाया है।

भगवान् बोले, हे ब्रह्मन्! तुम सब लोकोंके कार्य्य तथा गतिको विधिपूर्व्वक विचारो, तुम सब भूतोंके विधाता हो, तुम ही जगत्के गुरु और प्रभु हो; मैंने तुम्हें भार समर्पण करके यथार्थ सन्तोष अवलम्बन किया है। जिस समय तुम्हें देवकार्य्य अविषह्य होगा, तब मैं आत्मज्ञान और उपायके अनुसार उत्पन्न हूंगा। हयशिरा ऐसा ही कहके उसी स्थानमें अन्तर्द्धान होगये ब्रह्मा भी उनकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही निज लोकमें गये। हे महाभाग! इस ही प्रकार वह सनातन पद्मनाभ सब यज्ञोंके अग्रहर और नित्यकाल यज्ञधारी कहके अनेक भांतिसे वर्णित हुए हैं। उन्होंने अक्षय धर्म्मशालियोंकी गतिरूप निवृत्ति धर्म्मको अवलम्बन किया है और सब लोकोंकी विचित्रता करके प्रवृत्ति धर्म्मका विधान किया है। वही आदि है, वही ध्येय है, वही कर्त्ता और वही कार्य्य है; वह युगान्त कालमें सब लोकोंको उदरमें डालके प्रसुप्त होता है और युगके आरम्भमें सावधान होकर जगत्की सृष्टि किया करता है। तुम सब कोई उस देवको नमस्कार करो; वही निर्गुण, महात्मा, अज, विश्वरूप और स्वर्गवासियोंका धाम स्वरूप है। वही महाभूतोंका अधिपति रुद्र गणोंका स्वामी आदित्यपति तथा वसुगणोंका प्रभु है; वह दोनों अश्विनीकुमारोंका स्वामी, मरुद्गणोंका प्रभु, वेदयज्ञादि तथा वेदाङ्गपति है। वही सदा समुद्रवासी हरि और मुञ्जकेशी है, वह शान्त है, और सब भूतोंके मोक्ष धर्म्मानुभाषी है; वही तपस्या, तेज और यशका पति, वाक्य पति तथा सरित्पति है। वह कपर्द्दी, वाराह, एक शृङ्ग, धीमान, विवस्वान अश्वशिरा, चतुर्म्मूर्त्तिधारी, सदा गुह्य, ज्ञानदृश्य और क्षर स्वरूप है। यह सर्व्वत्र गमनशील अव्यय देव भ्रमण कर रहा है यही विज्ञाननेत्रके सहारे जानने योग्य परब्रह्म है, इस ही प्रकार ज्ञाननेत्रसे मैंने पहिले समयमें इसे देखा था। हे शिष्यगण! तुम लोगोंके पूछनेपर यथार्थ रूपसे यह सब कहा गया अब मेरे वचनके अनुसार ईश्वर हरिकी सेवा करो, वेदध्वनिके जरिये उनका यश गाओ और विधि पूर्व्वक पूजा करो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले; उस बुद्धिमान वेद-

व्यासने शिष्योंसे तथा परम धर्म्मज्ञ शुकदेवसे ऐसा ही कहा था। हे महाराज! गुरु हम लोगोंके सहित चतुर्व्वेदोद्गत ऋङ्मन्त्रके जरिये उसको सब प्रकारसे स्तुति करने लगे। हे महाराज! पहले समयमें गुरु वेदव्यासने मुझसे जो कहा था वह सब मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया जो पुरुष स्थिर बुद्धि होकर "नमो भगवते" ऐसा वचन करके इस विषयको सदा सुनता अथवा कहता है, वह बुद्धिमान मनुष्य बलरूपसे युक्त और रोगरहित होता है; आतुर पुरुष रोगसे और बद्ध पुरुष बन्धनसे छूट जाते हैं। कामी कामनाके अनुसार काम्य विषय प्राप्त करके दीर्घायु होते हैं। ब्राह्मण सब वेदोंके जाननेवाले, क्षत्रिय विजयी, वैश्य अत्यन्त धनवान और शूद्रसुखी हुआ करते हैं। पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् होता है, कन्या अभिलषित पतिपाती है, लग्नगर्भा विमुक्त होती तथा पुत्र प्रसव करती है, बन्ध्या समृद्धिशाली पुत्र पौत्र प्रसव किया करती है, मार्गमें जो मनुष्य इसे पाठ करता है, वह निर्व्विघ्नताके सहित मार्गमें गमन करनेमें समर्थ होता है। जो पुरुष जैसी कामना करता है, वह निश्चय ही उसे पाता है। यह महर्षिका निश्चित वचन है, और देवर्षि तथा देवताओंके समागमसे युक्त महात्मा पुरुषोत्तमकी कथा कहने अथवा सुननेसे भक्त जन परम सुख लाभ करते हैं।

३४० अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, हे भगवन्! शिष्योंके सहित वेदव्यास मुनिने जिन विविध नामोंके सहारे मधुसूदनकी स्तुति की थी, मैं प्रजापति हरिके उन सब नामोंके निरुक्त अर्थात् निर्व्वाचन सुननेके लिये अभिलाषी हुआ हूं; इसलिये जिसे सुनके मैं निर्म्मल शरदकालके चन्द्रमाकी भांति पवित्र हूंगा, आपही उस विषयको वर्णन करने योग्य हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! प्रभावशाली नारायणने अर्जुनके ऊपर प्रसन्न होकर सर्व्वज्ञत्व आदि गुणों और जगत्स्रष्टा प्रभृति कर्म्म-जनित नामोंका जो निरुक्त कहा था, उसे सुनो। शत्रुनाशन धनञ्जयने जिन नामोंसे नारायणका वर्णन किया जाता है, उन सबका निरुक्त पूछा था।

अर्ज्जुन बोले, हे भूत भव्येश भगवन! हे सर्व्वभूतोंकी सृष्टि करनेवाले अव्यय! हे लोकधाम जगन्नाथ! हे लोकाभयप्रद! हे देव! महर्षियोंके जरिये तुम्हारे जो सब नाम वर्णित हुए हैं और वेद तथा पुराणोंके बीच कर्म्मवशसे जो सब नाम गुप्त हैं, हे केशव! मैं तुम्हारे निकट उन नामोंका निर्व्वाचन सुननेकी इच्छा करता हूं। हे प्रभु! तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई भी इन नामोंका निरुक्त वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है।

श्रीभगवान बोले, हे अर्ज्जुन! ऋग्वेद, यजुर्व्वेद, सामवेद और अथर्व्ववेद, उपनिषद, पुराण, ज्योतिष, साङ्ख्य, योगशास्त्र और आयुर्व्वेदके बीच महर्षियोंने मेरे अनेक प्रकार नाम वर्णन किये है, उसके बीच कोई कोई नाम कर्म्मज होनेसे गौण हैं। हे अनघ! इसलिये तुम सावधान होकर मेरे द्वारा उन कर्म्मजनामोंका निरुक्त सुनो। हे तात! पहलेसेही तुम मेरे अर्द्धाङ्ग रूपसे स्मृत हुए हो। विश्वात्मा निर्गुण और गुणमय अत्यन्त यशस्वी देहधारियोंकी अन्तरात्मा है, इससे उस नारायणको नमस्कार है। जिसकी कृपासे ब्रह्माने जन्मलिया और जिसके क्रोधसे रुद्रदेव उत्पन्न हुए हैं, वही स्थावर जङ्गम सबकी उत्पत्तिका कारण है। हे सात्विकप्रवर! प्रीति, कार्य्य, उद्रेक, लघुता, सुख, अकृपणता, असंरम्भ, सन्तोष, श्रद्धानता, क्षमा, धृति, अहिंसा, शौच, अक्रोध, आर्ज्जव समता, सत्य और अनसूया, इन अठारहों गुणोंको सत्त्व कहते हैं। मेरी परा प्रकृति

अष्टादश गुणमयी है; यह प्रकृति ही योगबलसे द्युलोक और भूर्लोकको धारण कर रही है। यही धाता अर्थात ब्रह्मलोक पर्य्यन्त कर्म्म फल स्वरूप है, सत्त्वा अर्थात् अबाधित चिन्मात्र स्वरूप है; अमरण धर्म्मशीला, अजया प्रकृति ही सब लोकोंकी आत्मसंज्ञा संयुक्त है, उस धातादि स्वरूप परमात्मामें अध्वस्त सत्त्वसे सृष्टि और प्रलय आदि सब विक्रिया प्रवर्त्तित हुआ करती हैं। तपस्या और यज्ञस्रष्टा पुराण पुरुष अनिरुद्ध रूपसे वर्णित हुआ करता है, इसहीसे सब लोकोंकी उत्पत्ति और लय होती है। हे पद्मनिभेक्षण! ब्रह्माकी रात्रि व्यतीत होनेपर उस अमित तेजस्वी नारायणकी कृपासे एक कमल उत्पन्न हुआ था; उसी कमलसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए, ब्रह्मा उसहीकी कृपासे जन्म ग्रहण करते हैं। दिनके बीतने पर उस क्रोधाविष्ट देवके मस्तकसे संहार करनेवाला रुद्र नाम पुत्र उत्पन्न होता है। ये दोनों देवश्रेष्ठ भगवानकी कृपा और क्रोधसे उत्पन्न होते हैं और उनकी आज्ञानुसार यथायोग्य कार्य्यमें प्रवृत्त होकर सृष्टि और संहार करते हैं सब प्राणियोंके वरप्रद ब्रह्मा और रुद्र सृष्टि तथा संहार कार्य्यमें निमित्त मात्र हैं।

हे पाण्डवेय! कपर्द्दी, जटिल, मुण्ड श्मशान गृहवासी, उग्र व्रतधर परम दारुण योगी, दक्ष यज्ञहर, भगनेत्रहर रुद्रको युगयुगमें नारायण स्वरूप जानना चाहिये। हे पृथापुत्र! उस देवोंकेदेव महेश्वरके पूजित होनेसे प्रभु नारायण पूजित होते हैं। हे पाण्डुपुत्र! मैं सब प्राणियोंको अन्तरात्मा हूं, इसलिये रुद्रकी पहले पूजा किया करता हूं; यदि वरदाता ईश्वर शिवकी मैं पूजा न करूं तो जो मेरे आत्माकी कोई पूजा न करेगा। सब लोग मेरे किये हुए प्रमाणका अनुसरण किया करते हैं, इसलिये प्रमाण सबका ही पूज्य है, इसी निमित्त मैं रुद्रकी पूजा किया करता हूं। जो पुरुष शिवको जानता है, वही मुझे भी जानता है, जो उसके अनुगत हैं, वही मेरे अनुगत है! हे कौन्तेय! रुद्र और नारायण दो रूपसे एक ही है, इसलिये सब कार्य्योंमें व्यक्तिस्थ होकर लोकमें विचरते हैं। हे पाण्डुपुत्र! कोई पुरुष मुझे वर देनेमें समर्थ नहीं है, मैं मनहीमन ऐसा ही विचार करके पुराण ईश्वर रुद्रदेवको पुत्रके निमित्त आप ही अपनी आराधना की थी। सर्व्वव्यापी विष्णु अपने सिवा और किसी देवताको प्रणाम नहीं करते; इसही निमित्त मैं रुद्रदेवकी आराधना करता हूं। ब्रह्मा रुद्र और इन्द्रके सहित सब देवता तथा ऋषि लोग देव श्रेष्ठ नारायण हरिकी पूजा करते हैं। हे भारत! वर्त्तमान और भविष्यत् प्राणियोंके लिये भगवान विष्णु ही सबके सेवनीय और सदा पूजनीय है। हे कुन्तीपुत्र! हव्यदाता विष्णुको नमस्कार और शरण दाता हरिको प्रणाम करो, वरदाता विष्णुको नमस्कार तथा हव्यकव्य भोक्ता भगवानको प्रणाम करो। मैंने ऐसा सुना है कि जिज्ञासु, आर्त्त, अथार्थी और ज्ञानी, इन चार प्रकारके पुरुष ही मेरे भक्त हैं, उसमेंसे जो लोग अपनेसे पृथक् दूसरे देवताओंकी आराधना न करके केवल मुझमें ही अत्यन्त निष्ठावान हैं, वेही श्रेष्ठ हैं, उन निष्काम कर्म्म करनेवाले भक्तोंका मैंही अवलम्ब हूं। इसके अतिरिक्त जो तीन प्रकारके भक्त हैं; वे लोग फल कामना किया करते हैं; इसलिये वे लोग धर्म्मभ्रष्ट होते हैं, इस ही कारणसे उन्हें धर्म्मच्युत कहा जाता है और जो लोग प्रति बुद्ध हैं, वेही श्रेष्ठ हैं। प्रवृत्त धर्म्मी मनुष्य ब्रह्मा अथवा दूसरे नीलकण्ठ आदि देवताओंकी सेवा करते हुए मुझे ही पाते हैं। हे पार्थ! भक्तोंके विषयमें मुझे जो विशेष है, यह तुम्हारे समीप वही विषय कहा गया। हे कौन्तेय! तुम और मैं, अर्थात् हम दोनों नर-नारायण रूपसे पृथ्वीके भारको उतारनेके लिये मनुष्य रूपसे उत्पन्न

हुए हैं। हे भारत! मैं अध्यात्म योग ज्ञानसे निवृत्ति लक्षण और अभ्युदयिक धर्म्म रूपसे स्मृति हुआ हूं। केवल एकमात्र सदा मैंही मनुष्योंका न स्थान अर्थात् अवलम्ब हूं, इसही निमित्त मेरा नाम नारायण है, अथवा जलसमूहको नार कहते हैं, क्यों कि वह नरसे उत्पन्न हुआ है; सृष्टिके पहिले वही समस्त नार (जल) मेरा स्थान था, इस ही कारणसे मैं नारायण हूं। मैं सूर्य्य स्वरूपसे किरणोंके सहारे अखिल जगत्को परिपूर्ण करता हूं, और सब प्राणी मुझमें निवास करते हैं; इसही निमित्त मैं वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हुआ हूं।

हे भारत! मैं सर्व्वभूतोंकी गति और उत्पत्तिका कारण हूं। हे पार्थ! द्युलोक और भूलोक मुझसे व्याप्त हो रहा है, मेरा तेज भी सबसे अधिक है; क्यों कि मेरे तेजसे समस्त जगत् प्रकाशित होरहा है। हे भारत! दिव्य अदिव्य सब प्राणी अन्तकालमें जिसे पानेकी इच्छा करते हैं, मैं वही ब्रह्म हूं। हे पार्थ! मैंने तीनों लोकोंको आक्रमण किया है, इसी कारणसे विष्णु नामसे विख्यात हुआ हूं। मनुष्य लोग मुझे पानेके लिये अपनी अपनी इन्द्रियोंको दमन करते हुए सिद्धि प्राप्त करनेकी अभिलाष करते है, इसीसे द्युलोक, भूलोक और मध्यलोकवासी मुझे दामोदर कहते हैं, अर्थात् दाम शब्दसे "दमन" अर्थ जाना जाता है, इन्द्रिय दमन होनेसे जिसके जरिये स्वर्गादि लोग प्राप्त होते हैं, वही दामोदर है। अन्न, वेद, जल और अमृत, इन चारोंको प्रश्नि कहते हैं, ये सब सदा मेरे उदरमें विद्यमान हैं, इसलिये मैं प्रश्निगर्भ हूं। 'हे प्रश्निगर्भ! एकत और द्वितके द्वारा कूएमें गिराये हुए त्रितकी रक्षा करो, ऋषियोंने मुझे इस ही प्रकार कहा था। अनन्तर ब्रह्माके पुत्र; त्रित 'प्रश्निगर्भ' नाम कहनेसे कूएंसे बाहर हुए थे। लोकोंको तपानेवाली सूर्य्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी सारी किरण जो प्रकाशित होती है, वह मेरे केशसंज्ञक हैं, इसी निमित्त सर्व्वज्ञ द्विजसत्तमगण मुझे केशव कहते हैं। हे अर्ज्जुन! महात्मा उतथ्यके सहारे बृहस्पतिकी पत्नीमें गर्भ अर्पित होनेपर देवमायासे जब उतथ्य अन्तर्द्धान हुए, तब महानुभाव बृहस्पति अपनी भार्य्याके निकट उपस्थित हुए। हे कौन्तेय! जब ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पति मैथुनके निमित्त भार्य्याके निकट गये, तब पञ्चभूतोंसे संयुक्त गर्भ बोला। हे वर देनेवाले! मैं पहिलेसे ही इस गर्भमें आया हूं, इसलिये आप मेरी माताको पीड़ित न करिये। बृहस्पतिने ऐसा वचन सुनके क्रुद्ध होकर शाप दिया, कि मैं मैथुनके निमित्त आगमन करके जब तुमसे रोका गया हूं, तब तुम मेरे शापसे निःसन्देह अन्धे होगे। ऋषिश्रेष्ठ बृहस्पतिके शापसे वह गर्भ अधिक अन्धकारको प्राप्त हुआ। इसही कारणसे पहले समयमें उस गर्भसे उत्पन्न ऋषि दीर्घतम नामसे विख्यात् हुए। उन्होंने साङ्गोपाङ्ग चारों सनातन वेदोंको पढ़के विस्तारके सहित विधिपूर्व्वक मेरे इस केशव नामको बार बार उच्चारण किया था; इसही नामके उच्चारण करनेसे वह नेत्रवान हुए और उस ही निमित्त गौतम नामसे विख्यात् हुए। हे अर्ज्जुन! इस ही प्रकार मेरा यह वर देनेवाला केशव नाम प्रसिद्ध हुआ, समस्त देवताओं और महानुभाव ऋषियोंके तापन और अध्यायन निबन्धनसे जठराग्नि, अन्नस्वरूप चन्द्रमाके सहित संयुक्त होकर एक योनित्वको प्राप्त हुए, इसलिये स्थावर जङ्गमात्मक समस्त जगत् अग्निचन्द्रमामय हुआ है, वर्त्तमान पुराणोंमें भी अग्नि और चन्द्रमा एक योनि है तथा देववृन्द अग्निमुख करके प्रसिद्ध हैं, एक योनित्व प्रयुक्त होनेसे ये परस्पर भोक्तृभोग्य भावसे संयुक्त होके सब लोकोंको धारण करते हैं।

३४१ अध्याय समाप्त।

अर्जुन बोले, हे मधुसूदन ! अग्नि और चन्द्रमा जिस प्रकार पहले एक योनि हुए थे। मुझे यही सन्देह हुआ है, इसलिये आप उस संशयको दूर करिये।

श्रीभगवान् बोले, हे पाण्डुपुत्र ! अच्छा मैं तुम्हारे समीप अपने तेजसे उत्पन्न हुए प्राचीन विषयको वर्णन करता हूं, तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। प्रलयकालके समय हजार चतुर्युगी बीतने और स्थावर जङ्गममय सब भूतोंके अव्यक्तमें लीन होनेपर जगत् अन्धकारसे परिपूरित अग्नि वायु और पृथ्वीसे रहित तथा जलवत् चैतन्य मात्र समुद्र समान सर्व्वत्र व्याप्त होने और समुद्रकी भांति अद्वितीय ब्रह्मके निज महिमामें निवास करनेपर जब रात्रि, दिन, प्रकृति, शून्य, व्यक्त परिमाणु और माया विचित्रित अव्यक्त कुछ भी न था, केवल निर्व्विशेष सन्मात्र ब्रह्म ही स्थित था। ऐसी अवस्थामें नारायण गुण ऐश्वर्य्य आदिके अवलम्ब अजर, अमर, अनिन्द्रिय, अग्राह्य, असम्भव, सत्य, अहिंस्र, रत्नवत्, भावरूप, ललामभूत, विविध प्रवृत्ति विशेष, बैर रहित, मृत्यु, जरा और मूर्त्ति-विवर्जित, सर्व्वव्यापी, सर्व्वकर्त्ता, अनादि तम सन्निधानसे चिदात्मा हुआ था, वही अहप्रत्ययका विषय अव्यय हरि है। इस विषयमें यह वेदका प्रमाण है, कि सृष्टिके पहिले न रात्रि थी, न दिन था, न सत था, न असत् था, केवल विश्वरूप अन्धकार था, वह अन्धकार ही विश्वरूप रात्रि है, भाष्यके बीच ऐसा ही अर्थ जाना गया है। अनन्तर उस तमसे उत्पन्न ब्रह्मयोनि पुरुषसे ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई, उस पुरुष अर्थात् हरिने प्रजासमूहकी उत्पन्न करनेकी इच्छा करके दोनों नेत्रोंसे अग्नि और चन्द्रमाको उत्पन्न किया। अनन्तर भूतोंकी उत्पत्ति होने पर धीरे धीरे प्रजासमूह ब्राह्मण और क्षत्रिय रूपसे उत्पन्न हुए। जो सोम हैं, वही ब्रह्म है, जो ब्रह्म है, वही ब्राह्मण हैं, जो अग्नि है, वही क्षत्रिय है। क्षत्रियसे ब्राह्मण बलवान हैं, लोक प्रत्यक्ष गुण ही इसमें कारण हैं। ब्राह्मणोंसे उत्तम जीव पहले उत्पन्न नहीं हुआ, जो लोग ब्राह्मणके मुखमें आहुति प्रदान करते हैं; वे दीप्यमान अग्निमें होम किया करते हैं; इस ही निमित्त कहता हूं, ब्रह्मासे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है, और वह सब भूतोंको प्रतिष्ठित करके तीनों लोकोंको धारण कर रहे हैं; इसहीके सहारे ब्राह्मण-मान्त्रमन्त्रको प्रसिद्ध करनेवाला मन्त्रवाद भी सिद्ध होता है।

हे अग्नि ! तुम सब यज्ञोंके होता स्वरूप ऋत्विक् हो; इसलिये समस्त देव मनुष्य और जगत्के हितकर हो। इस विषयमें यह प्रमाण है कि, हे अग्नि ! तुम समस्त देवता मनुष्य और जगतके हितकरनेवाले हो, इस ही निमित्त तुम यज्ञमे होता अर्थात् ऋत्विक् स्वरूप हो। अग्नि ही यज्ञोंमें होता, कर्त्ता अर्थात् यजमान है और वह अग्नि ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण हैं। मन्त्रके बिना होम नहीं होता, बिना पुरुषके तपस्या नहीं होसकती और हवि तथा मन्त्रोंका सत्कार नहीं होता, तथा अग्निके बिना देवता, मनुष्य और ऋषियोंका सम्मान सम्भव नहीं है, इस ही निमित्त तुम होत्तृ स्वरूपसे नियुक्त हो क्यों कि ब्राह्मणोंमेंही याजन विहित है, क्षत्रिय और वैश्योंके द्विजाति होनेपर भी उनमें याजन विहित नहीं है; इसलिये ब्राह्मण लोग अग्नि स्वरूप होकर यज्ञोंको ढोते हैं, वही समस्त यज्ञ देवताओंको तृप्त करते हैं, देवता लोग यथा समयपर वर्षा आदिसे पृथ्वीपालन किया करते हैं। शतपथ ब्राह्मणमें यही प्रतिपन्न हुआ है, कि जो विद्वान् ब्राह्मणके मुखमें आहुति देता है, वह समृद्ध अग्निमें होम किया करता है। इस ही प्रकार अग्निरूपी विद्वान् ब्राह्मण अग्निको प्रकट करते हैं, सर्व्वव्यापी अग्निदेव विष्णु रूपसे सबके शरीरमें प्रविष्ट

होकर जीवोंके प्राणको धारण किया करता है। इसके अतिरिक्त सनत्कुमारके कहे हुए इस विषयमें ये श्लोक हैं, कि सबके पहले ब्रह्माने इस निरवस्कृत अर्थात् निष्कलङ्क जगत्को उत्पन्न किया था। ब्रह्मयोनि देवता लोग वेदध्वनिके जरिये स्वर्गमें गमन करते हैं, ब्राह्मणोंके वचन बुद्धि, कर्म्म, श्रद्धा, तपस्या और वाक्यामृत शैक्य अर्थात् शिकको भांति स्वर्ग और महीमण्डलको धारण कर रहे हैं। सत्यसे परम धर्म और कुछ भी नहीं है। माताके समान गुरु नहीं है, इस लोक और परलोकमें विभूतिके निमित्त ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। जिसके राज्यमें ब्राह्मण वृत्ति रहित होके वास करते हैं, उसके रक्षा अर्थात् वृषभ अथवा सब वाहन सवारियोंको नहीं ले चलते, गर्गर अर्थात् दही जल और तेल आदि निष्पीड़नके यन्त्रदही प्रभृतिके सम्प्रदान विषयमें मथित नहीं होते, वह राजा कृषिरहित होके विनष्ट होता तथा दस्युके समान हुआ करता है। वेद पुराण और इतिहासके प्रमाण अनुसार ब्राह्मण लोग नारायणके मुखसे उत्पन्न हुए हैं, वेही सर्व्वात्मा, सर्व्वकर्त्ता और सर्व्वसत्त्व स्वरूप हैं। उस वरप्रद महादेवके वाक् संयममें ब्राह्मण ही पहले उत्पन्न हुए और ब्राह्मणोंसे शेष तीनों वर्ण उत्पन्न हुए थे। इस ही प्रकार जब कि मैंने ब्राह्मणोंको सुरासुरोंसे भी श्रेष्ठ उत्पन्न किया है, तब ब्राह्मणोंसे ही देवता, असुर, महर्षि आदि स्थापित और निगृहीत हुए हैं। अहल्याका धर्म्म नष्ट करनेसे गौतमके शापसे देवराज इन्द्र हरिश्मश्रु हुए हैं, कौशिकके निमित्त इन्द्र मुष्कहीन होकर मेषवृषणत्वको प्राप्त हुए। दोनों अश्विनीकुमारोंके ग्रह प्रतिषेधके निमित्त वज्र लिये हुए इन्द्रकी दोनों भुजा च्यवनके द्वारा स्तम्भित हुई थीं। यज्ञविघातके हेतु क्रुद्ध होकर दक्षने बार बार तपस्याके सहारे आत्मसंयोजना करके त्रिपुरासुरके वधके लिये रुद्रदेवके ललाटसे नेत्राकृति समान एक दूसरी शक्ति उत्पन्न की थी। शुक्राचर्य्यने दीक्षाके लिये निकट आये हुए रुद्रके सिरसे सब जटा काटके फेंक दीं, उस फेंको हुई जटासे सर्पसमूह उत्पन्न हुए, उन सर्पोंसे पीड़ित होनेसे महादेवका कण्ठ नीलवर्ण हुआ है और पहले कल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें नारायणके हाथके सहारे ग्रहण किये जानेसे रुद्रदेव नील कण्ठ हुए। अमृत उत्पन्न करनेके लिये पुनश्चरण करनेके हेतु अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिने जलको स्पर्श किया परन्तु वह प्रसन्न न हुआ तब बृहस्पति जलके विषयमें क्रुद्ध होकर बोले कि, मेरे स्पर्श करनेपरभी जब तुम कलुष रहे और किसी प्रकार प्रसन्न न हुए उसही कारण आजसे मकर मच्छ, कच्छप आदि जलजन्तुओंसे कलुष रहोगे। बृहस्पतिने जब ऐसा शापदिया तभीसे समस्त सलिल जल जन्तुओंसे भर गया।

त्वष्टापुत्र विश्वरूप देवताओंके पुरोहित थे, वह असुरोंके भानजे होनेपर भी देवताओंको प्रत्यक्षमें और असुरोंको परोक्षमें यज्ञ भाग प्रदान करते थे। अनन्तर असुरोंने हिरण्यकशिपुको अगाडी करके निज भगिनी विश्वरूपकी माताके निकट जाके वर मांगा कि, हे बाहन! तुम्हारा यह पुत्र त्वष्टातनय त्रिशिरा विश्वरूप देवताओंका पुरोहित हुआ है, इसने देवताओंको प्रत्यक्ष और हमको परोक्षमें यज्ञभाग प्रदान किया है, इस ही कारणसे देवता लोग वर्द्धित और हम लोग क्षीण हुए हैं; इससे तुम इसे निवारण करो और जिस प्रकार यह हमारे वशमें हो, उसके निमित्त आज्ञा दो अनन्तर विश्वरूपकी माता नन्दनवनमें पहुंचके निज पुत्रसे बोली, हे पुत्र! तुम क्यों परपक्षवर्द्धक होके मातुलपक्ष विनष्ट करते हो। तुम्हें ऐसा करना उचित नहीं है, विश्वमाताका वचन अनतिक्रमणीय समझके उसका सत्कार करके हिरण्यकशिपुके निकट गये। हिरण्यगर्भसे उत्पन्न

हिरण्यकशिपु वशिष्ठके शापग्रस्त हुआ था, वह शाप यह था, कि जिस लिये तुमने दूसरे होताको वरण किया है, उस ही कारणसे यज्ञ समाप्त न होते ही मृत्युको प्राप्त होंगे, उस ही शाप निबन्धनसे हिरण्यकशिपुका बध हुआ। अनन्तर विश्वरूपने मातृपक्ष बर्द्धित करनेके लिये घोर तपस्याकी थी, उनके नियमको भङ्ग करनेके लिये इन्द्रने बहुतेरी अप्सराओंको नियुक्त किया। उन अप्सराओंको देखकर विश्वरूपका मन क्षुभित हुआ थोड़े ही समयमें वह उनमें आसक्त हुए। अप्सराओंने उन्हें अनुरक्त जानके कहा, हम जहांसे आई हैं वहांको जायंगी। विश्वरूप उनसे बोले, तुम लोग कहां जाओगी? मेरे सङ्ग बास करो, कल्याण होगा। अप्सराओंने कहा, हम देवपत्नी अप्सरा हैं, पहले बरदाता प्रभावशाली देवराज इन्द्रको वरण किया है। अनन्तर विश्वरूप बोले, आजसे ही इन्द्रादि देवताओंका अब कुछ प्रभाव न रहेगा,—ऐसा कहके उन्होंने मन्त्र जपा; उस मन्त्रके सहारे त्रिशिरा अत्यन्त बर्द्धित हुए। वह एक मुखसे सब लोकोंके बीच क्रियावान् ब्राह्मणोंके द्वारा यज्ञ स्थलमें यथावत् हुत सोम-पान करने लगे। एक मुखसे अन्न ग्रहण किया और अन्य मुखसे इन्द्रके सहित सब देवताओंको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुए।

अनन्तर इन्द्र उसे विशेष रूपसे बर्द्धित और सोमपानके सहारे सर्व्वशरीर अप्यायित देखकर देवताओंके सहित चिन्ता करने लगे। अन्तमें इन्द्र आदि देवताओंने ब्रह्माके निकट गमन किया; वे लोग वहां पहुंचके बोले, विश्वरूप उत्तम हुत सोमपान करता है, हम सब कोई यज्ञभागसे रहित हुए हैं, असुर लोग बर्द्धित हुए और हम क्षीण होरहे हैं; इस-लिये इसके अनन्तर जिस प्रकार हमारा कल्याण हो, आपको उसका विधान करना उचित है। ब्रह्मा उन देवताओंसे बोले, भृगुवं-शमें उत्पन्न हुए महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे हैं, उनके समीप जाके वर मांगो और वह जिस प्रकार शरीर परित्याग करें, वैसी ही उपाय करो। जब वे शरीर परित्याग करेंगे, तब उनकी हड्डीसे बज्र बनाना। अनन्तर जिस स्थानमें महर्षि दधीचि तपस्या कर रहे थे, इन्द्र आदि देवता उस ही स्थानपर गये और वहां जाके उनसे बोले, हे भगवन्! आपको तपस्यामें कुशल है न? कुछ विघ्न तो नहीं हुआ? दधीचि उन लोगोंसे बोले, आप लोग सुखसे आये हैं न? कहिये क्या करना होगा? आप लोग जो कहेंगे, मैं वही करूंगा। उन लोगोंने दधीचिसे कहा, सब लोकोंके हितके निमित्त आपको शरीर त्यागना उचित है। अनन्तर महायोगी दधीचिने पहलेकी भांति चित्त स्थिर कर सुख दुःखमें समान ज्ञान करके आत्म समाधान करते हुए शरीर परित्याग किया, जब उनका आत्मा शरीरसे पृथक् हुआ, तब धाताने उनकी हड्डियोंको संग्रह करके बज्र बनाया। देवराज इन्द्रने उस ब्राह्मणकी हड्डीके बने हुए अभेद्य अनभिभवनीय विष्णु प्रविष्ट बज्रसे विश्वरूपका बध किया। विश्व-रूपके तीनों शिरोंको काटनेके अनन्तर उसके शरीरको मंथके त्वष्टाने इन्द्रके शत्रु बृत्रको उत्पन्न किया; इन्द्रने बृत्रका भी बध किया। अनन्तर दो ब्रह्महत्या प्रकट हुई, तब डरके इन्द्रने देवराज्य परित्याग किया; देवताओंके राज्यको त्यागके इन्द्र जलसे उत्पन्न शीतला मानसरोवरवासिनी नलिनीके निकट उपस्थित हुए और ऐश्वर्य्य बलसे अणुमात्र होकर उस कमलिनीके मृणालको ग्रन्थिमें प्रविष्ट हुए; अनन्तर तब त्रिलोकीनाथ इन्द्रके ब्रह्महत्याके भयसे छिपनेपर जगत् अनीश्वर हुआ। रज और तमोगुणने देवताओंको आक्रमण किया। महर्षियोंके मन्त्र निष्प्रभ हुए, राक्षसोंकी उत्पत्ति और बृद्धि होने लगी, वेद नष्ट होगये,

इन्द्रके अभावमें सब लोग निर्बल होनेसे अना-यास ही अति भवनीय हुए। अनन्तर देवताओं और ऋषियोंने आयुके पुत्र नहुष नाम राजाको देवराज्यपर अभिषिक्त किया। नहुष सब प्राणियोंके तेजको हरनेवाले ललाटमें पांच सौ ज्योतिःयुक्त होके स्वर्ग राज्य शासन करने लगे। अनन्तर सब लोग प्रकृतिस्थ हुए, सभी स्वस्थ और हृष्ट होने लगे। उस समय नहुष बोले, शचीके अतिरिक्त इन्द्रकी उपभुक्त समस्त वस्तु मेरे निकट उपस्थित हुई है। वह ऐसा कहके शचीके निकट गये और उससे बोले, हे सुभगे! मैं देवताओंका अधिपति इन्द्र हूं, इस-लिये तुम मेरी सेवा करो। शचीने उन्हें उत्तर दिया, कि तुम स्वभावसे ही धर्म्म वत्सल विशेष करके चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए हो, इसलिये पराई स्त्रीका पातिव्रत्य नष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है। नहुषने उससे कहा, मैं इन्द्रत्व पद पर अधिष्ठित हुआ हूं, इन्द्रके राज्य, धन और रत्नोंपर मेरा अधिकार है, तुम इन्द्रकी उपभुक्ता हो, इसलिये तुम्हें उप-भोग करनेसे मुझे कुछ अधर्म्म न होगा शची उस समय नहुषसे बोली, मेरा कोई अपरिस प्राप्त व्रत है, उस व्रतके समाप्त होने पर स्नान करके कई एक दिनके बीच तुम्हारे निकट गमन करूंगी। इन्द्राणीका ऐसा वचन सुनके नहुषने वहांसे गमन किया।

अनन्तर नहुषके भयसे डरी हुई दुःखी और शोकार्त्ता शचीपतिको देखनेके निमित्त व्याकुल होकर बृहस्पतिके निकट गई। बृह-स्पति उसे अत्यन्त व्याकुल देख कर तथा ध्यान अवलम्बन करके भर्त्तृ कार्य्यमें तत्पर जानके बोले, तुम इस पतिव्रत और तपस्यासे युक्त होकर वरदायी उपश्रुति देवीको आवाहन करो। वह तुम्हें इन्द्रको दिखा देगी। अन-न्तर शची महानियमवती होकर वरदायी उपश्रुति देवीको मन्त्रके द्वारा आह्वान करने लगी। वह उपश्रुति देवी शचीके समीप आके बोली, तुम्हारे आह्वानके अनुसार मैं आई हूं, कौनसा प्रिय कार्य्य साधन करूं? शची सिर झुकाके उसे प्रणाम करके बोली, हे भग-वति! तुम मेरे पतिको मुझे दिखा दो, तुम सत्य रूपिणी और परम सत्या हो। उपश्रुति उस समय शचीको मानसरोवरमें लेगई और वहांपर मृणालकी ग्रन्थिमें सूक्ष्म भावसे स्थित इन्द्रको दिखा दिया। इन्द्र निज पत्नीको कृशित और मलिन देखकर चिन्ता करने लगे। हाय! मुझे यह कैसा दुःख उपस्थित हुआ, मेरे छिपने पर भी मेरी दुःखार्त्ता पत्नी मुझे खोजके सम्मुख उपस्थित हुई है। इन्द्र उससे बोले, कैसी हो? शचीने इन्द्रसे कहा, नहुष मुझे भार्य्या बनानेके लिये आह्वान करता है, मैंने उससे कुछ कालके निमित्त अवसर लिया है। इन्द्रने उससे कहा, तुम नहुषके निकट जाके उससे कहो, कि तुम अपूर्व्व ऋषियुक्त यानपर चढ़के मुझसे उद्वाह करो। इन्द्रके अनेक प्रकार उत्तम और महत् सब वाहन विद्यमान हैं, मैंने अपनी इच्छानुसार सब यानों पर आरोहण किया है; तुम दूसरे किसी नवीन यान पर चढ़के मेरे निकट आना। इन्द्रने जब ऐसा कहा, तब शची हर्षित होके वहांसे चली। इन्द्र भी फिर कमलकी नालमें प्रविष्ट हुए। तिसके अनन्तर इन्द्राणीको आई हुई देखके नहुषने उससे कहा, तुम्हारा वह समय पूरा हुआ है। उस समय शचीने उनसे वही वचन कहा, जो कि उससे इन्द्रने कहा था। अनन्तर नहुष महर्षियुक्त सवारी पर चढ़के शचीके निकट जाने लगे। उस समय मित्रावरुणि कुम्भयोनि ऋषिवर अगस्त्यने देखा, कि नहुषके द्वारा सब महर्षि धिकृत होरहे हैं, देखते देखते नहुषने उन्हें चरणसे स्पर्श किया।

अनन्तर अगस्त्य मुनि नहुषसे बोले, रे अकार्य्यमें प्रवृत्त पापी! तू पृथ्वी पर गिर। उस

तक भूमि और पहाड़ विद्यमान रहेंगे, तब तक तू सर्प होके निवास करेगा। महर्षि अगस्त्यके ऐसा कहते ही उस ही समय यानसे नीचे गिरे। तीनों लोक फिर इन्द्रसे सूना हुआ अनन्तर देवता और ऋषियोंने इन्द्रके निमित्त भगवान् विष्णुकी शरणमें जाके उनसे कहा। हे भगवान्! ब्रह्महत्यासे आक्रान्त इन्द्रका परित्राण करना आपको उचित है। देवताओं और ऋषियोंका वचन सुनके वरदाता विष्णु उनसे बोले, इन्द्र विष्णुके उद्देश्यसे अश्वमेध यज्ञ करे, तो फिर निज पदको पावेंगे। देवता और ऋषियोंने जब इन्द्रको न देखा; तब शचीसे कहा, हे सुभगे! जाओ इन्द्रको लिवा लाओ। शची फिर उस ही तालाबके निकट गई, तब इन्द्र उस सरोवरसे निकलकर वृहस्पतिके समीपमें उपस्थित हुए। वृहस्पति इन्द्रके निमित्त अश्वमेध महायज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, उस यज्ञमें कृष्णसारङ्ग मेध्य अश्व उत्सर्ग करके उन्हें वाहन बनाकर वृहस्पतिने सुरपति इन्द्रको निज पद प्रदान किया। अनन्तर वह स्वर्गवासी सुरराज देवताओं तथा ऋषियोंसे स्तुतियुक्त होकर निष्पाप हुए और स्त्री, अग्नि, वनस्पति और गऊ, इन चार स्थानमें ब्रह्महत्याको विभाग कर रखा। इस ही प्रकार इन्द्रने ब्रह्मतेजके प्रभावसे वर्द्धित होकर शत्रुका बध करके निज पद पाया था। पहिले समयमें महर्षि भरद्वाज आकाशगङ्गामें गमन करके उसे स्पर्श करनेसे त्रिविक्रम विष्णुसे विद्धत हुए थे, भरद्वाजने चुल्लूमें जल लेके उसहीसे नारायणके वक्षस्थलमें आघात किया, तभीसे उनका वक्षस्थल चिन्हयुक्त होरहा है, महर्षि भृगुके अभिशापसे अग्निदेव सर्व्वभक्षी हुए हैं।

अदितिने देवताओंके निमित्त अन्नपाक किया था, वे लोग उस ही अन्नको खाके असुरोंको मारेंगे, यही उद्देश्य था। उस समय बुधने व्रत समाप्त होने पर अदितिके निकट जाके भिक्षा मांगी। 'देवता लोग पहले इस अन्नको भोजन करेंगे, दूसरा कोई भी उसे भोजन न करने पावेगा'—इस ही निमित्त उसने बुधको भिक्षा नहीं दी। भिक्षा न पाने पर बुध स्वरूप भगवान्ने रुष्ट होकर अदितिको शाप दिया, कि तुम्हारे उदरमें पीड़ा होगी। अण्ड संज्ञित विवस्वानके द्वितीयबार जन्म लेनेके समय अण्डमाता अदितिको वही शाप स्मरण होता है, इसही निमित्त श्राद्धदेव विवस्वानका मार्त्तण्ड नाम हुआ था। दक्षकी जो साठ कन्या थीं, उनमेंसे उन्होंने कश्यपको तेरह, धर्म्मको दश, मनुको दश और चन्द्रमाको सत्ताईस कन्या दान की, वे सभी समान तथा नक्षत्र नामसे विख्यात् थीं। सबके समान होने पर भी चन्द्रमा रोहिणीसे अधिक प्रीति करते थे, उसहीसे अन्य स्त्रियाने ईर्षावती होकर पिताके निकट जाके इस विषयको वर्णन किया, हे भगवन्! हम सबके तुल्य प्रभा होनेपर भी रजनीनाथ रोहिणीसे अधिक प्रीति करते हैं। दक्ष बोले, 'चन्द्रमाके शरीरमें यक्ष्मा रोग प्रवेश करेगा।' दक्षके उस ही शापसे यक्ष्माने द्विजराज चन्द्रमाके शरीरमें प्रवेश किया; चन्द्रमा यक्ष्मायुक्त होकर दक्षके निकट गये। दक्ष इनसे बोले, तुम सब पत्नीके सम्बन्धमें समान व्यवहार नहीं करते, उस समय ऋषियोंने चन्द्रमासे कहा, तुम यक्ष्मासे क्षीण होते हो, इसलिये पश्चिम और समुद्रके निकट हिरण्य सरोवर नाम तीर्थ है, वहां जाके तुम स्नान करो।

अनन्तर सुधाकर उस हिरण्य सरोवर तीर्थमें गये, वहां जाके आत्मसेचन अर्थात् स्नान करके पापसे छूटे, चन्द्रमा उस तीर्थमें अवभासित हुए थे, उस ही समयसे वह प्रभास नामसे विख्यात् हुआ है। दक्षशापसे अब तक भी चन्द्रमा अमावस्यामें अप्रकाशित रहते और केवल पूर्णमासीको पूर्ण रूपसे अधिष्ठित होते हैं। जो मेघलेखा प्रतिच्छन्न शरीर दीख पड़तो

है, वह मेघ सदृश वर्ण हुआ है, इसका निर्म्मल अंश शश-कलङ्क रूपसे प्रकाशित है। स्थूल-शिरा महर्षिने सुमेरु पर्व्वतके पूर्व्वोत्तर दिशामें तपस्या की थी, जब वह तपस्या कर रहे थे, तब सर्व्वगन्धवाहक पवित्र वायुने बहते हुए उनका शरीर स्पर्श किया, वह तपस्यासे तापित और शरीरसे कृश हुए थे, इससे वायुसे उपवीज्यमान होकर हृदयसे परितुष्ट हुए। उस समय उनके उस अनिल-व्यजनकृत परितोषके चिन्हस्वरूप वनस्पतियोंने पुष्पशोभा प्रदर्शित की। महर्षिने उन वनस्पतियोंको यह कहके शाप दिया, कि सब समयमें तुम पुष्पवन्त न होगे। पहिले समयमें नारायण सब लोकोंके हितके निमित्त बाड़वामुख नामक महर्षि हुए थे, उन्होंने सुमेरु पर्व्वतपर तपस्या करते हुए समुद्रको आह्वान किया, परन्तु समुद्र आह्वान करनेपर उनके निकट उपस्थित नहीं हुआ, तब उन्होंने क्रुद्ध होकर निज शरीरकी उष्णतासे समुद्रको स्तिमित जल किया; पसीना झरनेसे समुद्रका जल खारा होगया, उन्होंने समुद्रसे कहा तुम अपेय होगे, तुम्हारा जल बाड़वामुखके सहारे पीयमान होनेसे मधुर होगा। इसीसे आजतक समुद्रका जल उसके अनुवर्त्ती बाड़वामुखके सहारे पीयमान होता है। रुद्रदेवने हिमालय शैलकी दुहिता उमाकी कामना की, उस समय महर्षि भृगु भी हिमवानके निकट जाके बोले, यह कन्या मुझे दान करो। हिमालयने उनसे कहा, रुद्र इसके अभिलषित वर हैं। भृगुने उन्हें उत्तर दिया, कि जब तुमने मुझे कन्या देना अस्वीकार किया है, तब तुम अबसे रत्नोंके भाजन न होगे। आजसे ऋषिवचनके अनुसार तुम्हारी ऐसी ही अवस्था हुई। इसलिये ब्राह्मणोंके इस ही प्रकार बहुतसे माहात्म्य हैं। क्षत्रिय जाति भी ब्राह्मणोंकी कृपासे शाश्वती और अव्यया पृथ्वीको पत्नीभावसे भजना करती है, ब्राह्मण और क्षत्री तेजसे मिलके अग्नि-सोमीय ब्रह्मरूपसे विख्यात होता है, उसके सहारे यह जगत् विधृत होरहा है, ऐसा कहा गया है, कि सूर्य्य और चन्द्रमा परमेश्वरके नेत्र हैं, अंशु उसके केश कहे गये हैं, चन्द्रमा और सूर्य्य जगत्को प्रबुद्ध और तापित करते हुए धारण कर रहे हैं; ये दोनों बोधन और तापन हेतुसे जगत्के हर्षण हुए हैं। हे पाण्डुनन्दन! अग्नि और चन्द्रमाके इन सब कर्म्मोंसे मैं हृषीकेश नामसे विख्यात हुआ हूं; उसका कारण यही है, कि चन्द्रमा और सूर्य्य जगत्को हर्षित करते हैं, इस ही निमित्त उन्हें हृषीकेश कहते हैं, वेही अंशु अर्थात् हमारे केश हैं, इस ही लिये मेरा हृषीकेश नाम प्रसिद्ध हुआ है। मैं सब लोकोंका नियन्ता होनेसे ईशान; वरदाता होनेसे वरद और स्रष्टा होनेसे लोकभावन नामसे अभिहित हुआ करता हूं। और ईलोपहूता सहादेवा इत्यादि मन्त्रोंसे आहूत होकर यज्ञभाग हरण करता हूं, इस ही निमित्त अथवा मेरा वर्ण हरिन्मणिके समान है, इस ही लिये मैं हरि नामसे स्मृत हुआ करता हूं, मैं सब लोकोंका श्रेष्ठधाम और अबाधित सत्य ऋत-स्वरूप हूं, इस हीसे ब्राह्मण लोग मुझे ऋतधामा कहते हैं। पहले समयमें मैंने जलमें डूबी हुई पृथ्वीको धारण किया था, इस ही निमित्त देवता लोग गोविन्द नामसे मेरी स्तुति किया करते हैं। अवयवरहित निष्कल अर्थात् निरंशको शिपि कहते हैं, उस शिपिरूपसे मैं सब वस्तुओंमें प्रविष्ट होरहा हूं, इसीसे लोग मुझे शिपिविष्ट नामसे स्मरण करते हैं। यास्क ऋषिने अव्यग्र होकर अनेक यज्ञोंमें शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति की थी; इस ही लिये मैंने शिपिविष्ट इस गुप्त नामको धारण किया है। उदार बुद्धिशक्तिसे युक्त यास्क ऋषिने शिपिविष्ट नामसे मेरी स्तुति करके मेरी ही कृपासे वेद-हरणके समय पातालतलमें अन्तर्हित निरुक्त

लाभ किया था। मैं सब भूतोंका ईश्वर हूं, मैंने कभी जन्म ग्रहण नहीं किया, न करता हूं, न करूंगा, इस ही निमित्त अज नामसे अभिहित हुआ करता हूं। पहिले मैंने कभी क्षुद्र अथवा अश्लील वचन नहीं कहा, सत्या और परम सत्या ब्रह्मकन्या सरस्वती देवी सदा मेरे मुखसे बाहर हुआ करती हैं। हे कौन्तेय! सत् और असत् दोनों ही मेरे आत्मामें आवेशित हैं। मेरे नाभिसे प्रकट हुआ कमल ही ब्रह्माका उत्पत्ति स्थान है, ऋषि लोग मुझे ही सत्य स्वरूप जानते हैं। हे धनञ्जय! पहले मैं कभी सत्यसे च्युत नहीं हुआ; जानना चाहिये कि सत्ब्रह्म तथा उसकी सत्ता मेरे सहारेसे ही विहित हुई है, मेरी पहले समयकी सत्ता इस जन्ममें भी विद्यमान है। मैं निष्काम कर्म्म संयुक्त सत्त्वत अर्थात् सत्त्वके सहारे पालन किया करता हूं, मैं अकल्मष हूं, अर्थात् मुझमें कुछ पाप नहीं है, पञ्चरात्र आदि ज्ञानसे मैं दीख पड़ता हूं; इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे शाश्वत कहा करते हैं। मैं महान् हल फाल-रूपी होकर पृथ्वीका कर्षण किया करता हूं, और मेरा रूप कृष्ण वर्ण है, हे अर्ज्जुन! इसीसे मेरा कृष्ण नाम है। मैंने जलके सहित भूमि वायुके सहित आकाश और अग्निके सहित वायुको संश्लेषित किया है, अर्थात् पञ्चभूतोंके कुण्ठा अर्थात् मिलन-विषयमें असामर्थ्य विनष्ट किया है, इस ही निमित्त मेरा नाम वैकुण्ठ है। परम निर्व्वाण ही ब्रह्म है, वही परम धर्म्म रूपसे वर्णित हुआ करता है, उस धर्म्मसे मैं पहले कभी च्युत नहीं हुआ, इस ही निमित्त मेरा नाम अच्युत है। पृथ्वी और आकाश ये दोनों ही विश्वतोमुख कहके प्रसिद्ध हैं, उन दोनोंको परिपूर्णरीतिसे धारण करनेसे वेद-शब्दार्थ चिन्तक वेदावत् पुरुष मुझे यथार्थ रूपसे अधोक्षज अर्थात् जनलय, स्थिति और जन्म स्थान कहा करते हैं। ऋषि लोग यज्ञ-शालाके एक अंशमें अधोक्षज नामसे मेरी स्तुति करते हैं, महर्षियोंके सहारे पृथक् पदके द्वारा अधोक्षज शब्द उच्चारण किया जाता है; सर्व्व-शक्तिमान नारायणके अतिरिक्त अधोक्षज शब्दका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है। जन्तुओंका प्राणाधार घृत ही मेरे अग्नि रूपकी अर्चि है, इस ही निमित्त अव्यग्र वेदज्ञ पुरु-षोंके द्वारा मैं घृतार्चि नामसे वर्णित हुआ करता हूं, पित्त कफ और वायु, ये तीनों कर्म्मज धातु विख्यात हैं, इन तीनोंको ही संघात कहते हैं; तीनों धातुओंसे सब जीव विधृत होरहे हैं, धातु क्षय होनेसे जीवन नष्ट हुआ करता है, इस ही निमित्त आयुर्व्वेदके जाननेवाले पुरुष मुझे त्रिधातु कहा करते हैं।

हे भारत! लोकमें भगवान धर्म्म वृष रूपसे विख्यात हैं, निघण्टु अर्थात् नाम-संग्रह पद-व्याख्यान विषयमें मुझे उत्तम वृष जानो। कपि शब्दसे वराह और श्रेष्ठ तथा धर्म्म शब्दसे वृष कहा जाता है, इस ही लिये प्रजापति कश्यप मुझे वृषाकपि कहते हैं। देवता और असुर किसी समयमें भी मेरा आदि मध्य और अन्त कुछ भी नहीं जानते, इस ही निमित्त मैं अनादि अमध्य और अनन्त रूपसे वर्णित हुआ करता हूं; मैं लोक साक्षी सर्व्व शक्तिमान ईश्वर हूं। हे धनञ्जय! मैं शुचि और सुनने योग्य विषयोंको सुना करता हूं, पापोंको ग्रहण नहीं करता इस ही निमित्त मेरा नाम शुचि-श्रवा है। पहले समयमें मैंने आनन्दको बढ़ाने-वाले एक शृङ्ग वाराहमूर्त्ति धारण करके इस वसुन्धराका उद्धार किया था, इसीसे मैं एकशृङ्ग नामसे अभिहित होता हूं। जब मैंने उस भांतिसे वाराह रूप धरा, उस समय स्कन्ध, पीठ, सूकरके मुखाग्र तथा दांत ऊंचे हुए थे, इस ही निमित्त मैं त्रिककुद नामसे विख्यात हुआ हूं, सांख्यज्ञानी महर्षि लोग जो विरञ्चि कहा करते हैं, मैं चेतन निमग्न कर्त्तृत्व रूपसे

वही प्रजापति हूं, इसीसे विरञ्चि नामसे प्रसिद्ध हुआ करता हूं। निश्चित-निश्चय सांख्य मतको अवलम्बन करनेवाले आचार्य्य लोग मुझे विद्या सहाय विशिष्ट आदित्यस्थ कपिल कहा करते हैं, जो द्युतिमान हिरण्यगर्भ रूपसे वेदके बीच स्तुत होता है, और योगी लोग जिसकी सदा पूजा किया करते हैं, इस भूलोकमें मैं उस ही रूपसे स्मृत हुआ हूं। वेद जाननेवाले पुरुष मुझे ही इक्कीस सहस्र ऋग्वेद और सहस्र शाखायुक्त सामवेद कहा करते हैं। मेरे भक्त दुर्लभ विप्रवृन्द आरण्यक वेदमन्त्रोंसे मेरा यश गाते हैं। जिस यजुर्व्वेदमें एक सौ एक शाखा विद्यमान है, यजुर्व्वेद जाननेवाले पुरुषोंके निकट मैं उस ही यजुः स्वरूपसे स्मृत हुआ हूं। पञ्चकल्पयुक्त अथर्व्व वेद जो अभिचार आदि कार्य्योंसे परिवृंहित होरहा है, अथर्व्व वेदके जाननेवाले ब्राह्मण लोग मुझे ही अथर्व्वरूपसे कल्पना किया करते हैं। जो समस्त शाखाभेद और शाखाओंमें जितने गीत तथा स्वर और वर्णोंके उच्चारण हैं, वह सब मुझसे ही उत्पन्न हुए जानो। हे पार्थ! हयशिरा रूपसे जो वरप्रद होके प्रकट होता है, मैं ही उस रूपसे क्रम क्रमसे अक्षर विभागका बोध किया करता हूं। मेरी ही कृपासे वामदेवके कहे हुए ध्यान मार्गके सहारे महानुभाव पाञ्चाल मुनि उस सनातन भूतसे क्रम अर्थात् दोनों पदके विभाग और अक्षर विभागको जानते हैं। बाभ्रव्यगोत्री पाञ्चाल मुनि नारायणके निकट वर पानेसे अनुत्तम याग प्राप्त करके पहले क्रमपारग रूपसे विख्यात हुए। कण्डरीककुलमें उत्पन्न गालव और प्रतापवान राजा ब्रह्मदत्त अक्षर विभाग तथा पदविभाग प्रणयन करके शिक्षाशास्त्र बनाते हुए जन्म-मरण जनित दुःखको बारबार स्मरण करके सात जन्ममें सुखात्म निबन्धनसे योगसम्पत्ति प्राप्त की थी।

हे कुन्तीनन्दन! पहले समयमें मैं किसी कारणसे धर्म्मके पुत्ररूपसे प्रसिद्ध हुआ था, इस ही निमित्त ऋषि लोग मुझे धर्म्मज कहके स्मरण करते हैं, पूर्व्वकालमें गन्धमादन पर्व्वत-पर धर्म्म यानमें चढ़के अविनाशी नर-नारायणने तपस्या की थी, उस ही समयमें दक्षका यज्ञ हुआ था। हे भारत! उस यज्ञमें दक्षने रुद्रदेवके भागकी कल्पना नहीं की थी, उसही निमित्त महादेवने क्रुद्ध होकर दधीचिके वचन अनुसार दक्षका यज्ञ विनष्ट किया। उन्होंने क्रुद्ध होकर बार बार प्रज्वलित शूल उत्पन्न किया, वह शूल दक्षके यज्ञको भस्म करके बदरिकाश्रममें मेरे निकट उपस्थित हुआ। हे पार्थ! वह शूल महावेगके सहित नारायणके वक्षस्थलपर गिरा, नारायणके समस्त केश उस शूलके तेजसे परिपूर्ण होकर मुञ्जवर्ण हुए थे, इस ही निमित्त मैंने मुञ्जकेश नाम धारण किया है। अनन्तर वह शूल महात्मा नारायणके हुङ्कारसे पराजित और आहत होके फिर शङ्करके हाथमें चला गया। जब शूल हाथमें लौट आया, तब रुद्रदेव उन तपस्यायुक्त नर-नारायण दोनों ऋषियोंकी ओर दौड़े। रुद्रदेवके वेगपूर्व्वक उनके निकट आनेपर विश्वात्मा नारायणने हाथसे उनका कण्ठ धारण किया। कृष्णवर्ण नारायणके करसम्बन्ध रुद्रका शितिमय कण्ठ नीलवर्ण होगया, उसही समयसे वह शितिकण्ठ नामसे विख्यात हुए, अनन्तर नरने रुद्रके निमित्त इषीका उठाया और शीघ्र ही मन्त्रयुक्त करनेसे वह अत्यन्त महान् परशु हुआ, वह परशु सहसा चलाये जानेपर खण्ड खण्ड होगया; परशु खण्डन करनेके कारण उस ही समयसे मैं खण्ड परशु नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अर्जुन बोले, हे वृष्णिवंशनन्दन जनार्द्दन! उस समयमें इस त्रैलोक्य शमनसंग्राममें किसकी जय हुई, वह मेरे निकट वर्णन करो।

भगवान् बोले, रुद्र और नारायणके युद्धमें

प्रवृत्त होनेपर संसारके सब प्राणी व्याकुल हुए। यज्ञके समयमें अग्निने शुभ्र और उत्तम रीतिसे होम करी हुई हविको ग्रहण नहीं किया; भावात्म ऋषियोंके निकट वेदोंकी प्रतिभा न रही। उस समय रज और तमोगुण वेदोंमें प्रविष्ट हुआ। पृथ्वी कांपने लगी और आकाश मण्डल विभिन्न होगया तेजस्वी पदार्थोंकी प्रभा हीन हुई और ब्रह्मा आसनसे च्युत हुए, समुद्र सूख गया और हिमालय पर्व्वत टूटने लगा। हे पाण्डुपुत्र! इस ही प्रकार उन अशकुनोंके उत्पन्न होनेपर जिस स्थानमें संग्राम होरहा था, वहां महानुभाव ऋषियों और देवताओंसे घिरकर प्रजापति ब्रह्मा शीघ्र ही उपस्थित हुए। निरुक्त प्रदेशमें जाके उस समय ब्रह्मा हाथ जोड़के रुद्रसे यह वचन बोले, "सब लोगोंका मङ्गल होवे"—हे विश्वेश्वर! जगत्‌की हितकामनाके लिये अस्त्रोंको परित्याग करो। जिसे सब लोग अक्षय, अव्यक्त ईश्वर लोक भावन कूटस्थ कर्त्ता निर्द्वन्द्व और अकर्त्ता जानते हैं, उसहीकी व्यक्तभाव निबन्धनसे यह शुभामूर्त्ति है, इन्होंने धर्म्मके वंशवृद्धिके लिये नर-नारायण रूपसे अवतार लिया है, येही महत् तपस्यायुक्त महाव्रती और सब देवताओंसे श्रेष्ठ हैं। मैं किसी कारणसे उस ही नारायणकी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं। हे तात! तुम नित्य होने पर भी पहली समयमें उनके क्रोधसे प्रकट हुए थे। इससे देवताओं, महर्षियों और मेरे सहित इस वरदाता देवको शीघ्र प्रसन्न करो; विलम्ब मत करो, सब लोकोंमें शान्ति होनी चाहिये। ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके रुद्रदेव क्रोधाग्निको परित्याग करके सर्व्वशक्तिमान नारायणदेवको प्रसन्न करने लगे और वरदाता आदि कर्त्ता वरणीय प्रभु नारायणके शरणापन्न हुए।

अनन्तर क्रोधविजयी जितेन्द्रिय वरदाता नारायण देव प्रसन्न होकर उस ही स्थानमें रुद्रके सहित मिले। जगदीश्वर हरि ऋषियों देवताओं और ब्रह्माके द्वारा विशेष रूपसे पूजित होकर देवेश्वर ईशानसे बोले, जो तुम्हें जानते हैं, वेही मुझे जान सकते हैं, जो तुम्हारे निकट हैं, वे मेरे भी निकटवर्त्ती हैं, मुझमें और तुममें कुछ भी प्रभेद नहीं है; इससे तुम अन्यथा बुद्धि मतकरो। आजसे यह शूलचिन्ह मेरा श्रीवत्स चिन्ह होगा और तुम भी मेरे पाणिसे अङ्कित होकर आजसे श्रीकण्ठ होगे।

श्रीभगवान् बोले, नर नारायण ऋषिने उस समय रुद्रके सङ्ग अतुल मित्रता और इस ही प्रकार परस्पर कृतलक्षण उत्पन्न करके देवताओंको त्यागके अव्यग्रचित्तसे तपस्या की थी। हे पार्थ! यह तुम्हारे निकट नारायणकी जय कही गई और गोपनीय समस्त नाम तथा निरुक्त जो ऋषियोंके द्वारा वर्णित हुए थे, वह भी कहे गये। हे कुन्तीपुत्र! मैं इस ही प्रकार अनेक भांतिके रूपसे भूलोक ब्रह्मलोक और शाश्वत लोकोंमें भ्रमण किया करता हूं। युद्धस्थलमें मैंने तुम्हारी रक्षा की थी, इसीसे तुमने महत् जय प्राप्त की है। हे कौन्तेय! सम्प्रति उपस्थित युद्धमें जो तुम्हारे आगे आगे गमन करते थे, उन्हें देवोंके देव कपर्द्दी रुद्र जानो; वही क्रोधज काल हैं, यह मैंने तुमसे पहिले ही कहा है, तुमने जो सब शत्रुओंका वध किया है, वे सब उस कालके जरिये पहलेसे ही मरे हुए थे। तुम सावधान होकर उस अप्रमेय प्रभावयुक्त देवोंकेदेव उमापति विश्वेश्वर अक्षर हरको नमस्कार करो। हे धनञ्जय! पहली तुम्हारे निकट बार बार जिन्हें क्रोधज कहा है, तुमने जो कुछ सुना, यह सब प्रभाव पहलेसे ही उनमें विद्यमान है।

३४२ अध्याय समाप्त।

शौनक बोले, हे सूत नन्दन! तुमने जो उत्तम और महत् उपाख्यान कहा उसे सुनके सब

मुनि अत्यन्त विस्मययुक्त हुए हैं। हे सूतपुत्र! नारायणकी कथा जैसा फल देती है, सब आश्रमोंमें गमन सब तीर्थोंमें स्नान वैसा फलप्रद नहीं है। यह सब पापोंको नष्ट करनेवाली नारायणाश्रया पुण्यदायक आदि कथा सुननेसे हम लोगोंका शरीर पवित्र हुआ। सब लोगोंके नमस्कृत भगवान् नारायण ब्रह्माके सहित सब देवताओं और महर्षियोंसे भी अदर्शनीय हैं। हे सूतपुत्र! नारदने जो नारायण हरिका दर्शन किया था, वह बोध होता है, उसही देवका अनुमोदित था, उन्होंने अनिरुद्ध शरीरसे स्थित जगन्नाथका दर्शन किया था, तौभी देवसत्तम नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये जो फिर वहांसे दौड़े, उसका कारण तुम मेरे निकट वर्णन करो।

सूत बोले, हे शौनक! परीक्षित पुत्र राजा जनमेजयने उस यज्ञकालमें विधि विहित कार्य्योंको करके पितामहके पितामह वेदनिधि निग्रहानुग्रहमें समर्थ महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यासदेवसे पूछा।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! देवऋषि नारदने श्वेत द्वीपसे लौटने पर भगवानके वचनको स्मरण करते हुए उसके अनन्तर क्या किया था? उन्होंने बदरिकाश्रममें आके नर-नारायण ऋषिके निकट कबतक बास किया और कौनसा प्रश्न किया था? हे तपोनिधि! सौ हजार श्लोकोंसे युक्त बृहत् भारताख्यानसे बुद्धिरूपी मंथानी दण्डके सहारे अत्यन्त उत्तम ज्ञान समुद्रको मंथके यह नारायण कथाके अवलम्बसे वाक्य रूपी अमृत आपके द्वारा इस प्रकार बाहर हुआ है, जैसे दहीसे घृत, मलयागिरिसे चन्दन, वेदोंसे आरण्यक विभाग और औषधियोंमें अमृत सार रूपसे निकाला गया है। हे द्विजसत्तम! वह भगवान् सब प्राणियोंके आत्मभूत और ईश्वर हैं। कैसा आश्चर्य है! नारायणका तेज क्या ही दुर्द्धर्ष है। प्रलयकालमें ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि, गन्धर्व्व और स्थावर जङ्गममय जो कुछ हैं, वह जब जिसमें प्रविष्ट होते हैं, बोध होता है, कि इस लोक और परलोकमें उससे परम पवित्र और कोई भी नहीं। नारायणकी कथा जिस प्रकार फल देनेवाली है, सब आश्रमोंमें जाना तथा सब तीर्थोंमें स्नान करना वैसा फलप्रद नहीं है। विश्वेश्वर नारायणकी यह सब पापोंको नाश करनेवाली आदि कथा सुनके इस समय हम लोग सब भांतिसे पवित्र हुए। मेरे पूज्य पितामह धनञ्जयने उस संग्राममें जो श्री कृष्णकी सहायतासे अत्यन्त जय प्राप्त किया था, वह कुछ विचित्र कार्य्य नहीं किया। मुझे बोध होता है, तीनों लोकके बीच उन्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं था। त्रिलोकीनाथ नारायण जब उनके सहाय थे तब वह सब कुछ कर सकते, क्यों कि जनार्द्दन उनके हित तथा मङ्गलकी चिन्ता करते थे। लोक पूजित भगवान्का तपस्याके सहारे दर्शन किया जा सकता है; किन्तु उन्होंने उस वत्स चिन्ह विभूषित हरिका प्रत्यक्ष दर्शन किया था; ब्रह्माके पुत्र नारद मुनि उन लोगोंसे अधिक धन्य हैं, जिन्होंने श्वेतद्वीपमें जाकर स्वयं हरिका दर्शन किया है, उस अविनाशी नारद ऋषिको मैं अल्प तेजस्वी नहीं समझता। कारण उन्होंने उस समयमें जो अनिरुद्ध शरीरसे स्थित हरिका दर्शन किया था, उनके व्यक्त रूपका दर्शन होना देवताओंको कृपाके अनुगत है।

हे मुनि! नारदने किस कारणसे बदरिकाश्रममें फिर नर-नारायणका दर्शन करनेके लिये आगमन किया था। विधातापुत्र नारदने श्वेतद्वीपसे लौटकर बदरिकाश्रममें जाके नर-नारायण ऋषिके निकट कबतक बास किया और कौन कौनसी प्रश्न पूछे थे। और महानुभाव नारद मुनिके श्वेत द्वीपसे लौटनेपर नर-नारायण ऋषिने हो उनसे क्या कहा था? यह सब

तुम्हारे यथार्थ रूपसे मेरे समीप आपही दर्शन करने योग्य हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, जिसकी कृपासे मैं इस नारायण कथाको कहूंगा, उस अत्यन्त तेजस्वी भगवान वेदव्यास मुनिको नमस्कार करता हूं। हे महाराज! नारद मुनि श्वेत द्वीपमें आकर नारायणका दर्शन करके वहांसे लौटकर वेगपूर्व्वक सुमेरु पर्व्वतपर आये थे। परमात्मा हरिने उनसे जो कहा था, उस हो भारको हृदयमें धारण करते हुए अन्तमें उन्हें महाभय हुआ था। मैं दूर स्थानमें जाके कुशल पूर्व्वक फिर इस ही स्थानमें आया हूं, अर्थात् यही मेरे लिये मङ्गल है। अनन्तर वह सुमेरुसे गन्धमादन पर्व्वतपर गये, वहांसे विशाल बदरीवनको देखकर आकाश मार्गसे उड़े। अनन्तर उन्होंने प्राचीन ऋषिसत्तम नर-नारायणका दर्शन किया। देखा कि वे दोनों आत्मनिष्ठ और दृढ़व्रती होकर तपस्या कर रहे हैं। वे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाले सूर्य्यसे भी अधिक तेजस्वी थे, श्रीवत्स लक्षणसे युक्त पूजनीय जटाजूट मण्डित थे। उनकी दोनों भुजा हंसांकित, दोनों चरण चक्र लक्षणसे युक्त वक्षःस्थल विशाल तथा दोनों भुजा जानुतक लम्बी थी। वे मुष्क चतुष्क साठ दांतों आठ भुजाओं और बादल सदृश शब्दसे युक्त थे। उनका मुख अत्यन्त सुन्दर, ऊंचा ललाट, भौं, नेड़ी और नासिका अत्यन्त सुन्दर था। उन दोनों देवोंका शिर आतपत्रके समान तथा श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त था, वे दोनों ऋषि महापुरुष नामसे विख्यात थे। नारद मुनि उन दोनों उत्तम पुरुषोंको देखकर मनही मन चिन्ता करने लगे। श्वेत द्वीपमें सर्व्व प्राणियोंसे नमस्कृत जिन सब ऋषियोंका मैंने दर्शन किया है, ये दोनों ऋषि भी वैसे ही हैं। नारद मनही मन ऐसाही विचारके उनकी प्रदक्षिणा करके कुशासन पर बैठ गये।

अनन्तर तपस्या, यश और तेजके आश्रय, शम दमसे युक्त नर-नारायण ऋषिने पूर्व्वाह्णिक क्रिया समाप्त करनेके पश्चात् अव्यग्र चित्तसे पाद्य और अर्घसे नारद मुनिकी पूजा करी। हे राजन्! वे आसन पर बैठकर आतिथ्य और नित्य कर्म्मको निबाहने लगे। उनके वहां बैठने पर वह स्थान मानो घृत होमके द्वारा महाज्वालायुक्त तीनों अग्नियोंसे शोभित यज्ञ वाटकी भांति दिखाई देने लगा। अनन्तर नारद मुनिके वहां पर अतिथि सत्कारसे विश्रामयुक्त होकर सुखसे बैठने पर नारायणने उनसे यह वचन कहा।

नर-नारायण बोले, इस समय तुमने श्वेत द्वीपमें हमारी परम प्रकृतिका दर्शन किया है?

नारद मुनि बोले, विश्वरूपधारी अविनश्वर श्रीमान् सनातन पुरुषोंका मैंने दर्शन किया है, देवताओं और ऋषियोंके सहित सब लोक उसमेंही निवास करते हैं। इस समय तुम्हारा दर्शन करके उस सनातन पुरुषको ही अवलोकन करता हूं, वह अव्यक्त स्वरूप हरि सब लक्षणोंसे आक्रान्त है, तुम भी व्यक्त रूप धारण करके उन्हीं सब लक्षणोंसे विराज रहे हो। मैंने वहांपर परम देवके बगलमें तुम्हारा दर्शन किया है, परमात्माके समीपसे बिदा होकर अब इस स्थानमें आया हूं। तीनों लोकमें धर्म्मपुत्र तुम दोनोंके अतिरिक्त यश, तेज और श्रीके द्वारा कौन उसके समान होसकता है। क्षेत्रज्ञ संज्ञिक सब धर्म्म उन्होंने मुझसे कहे हैं, इस लोकमें जिस प्रकार उनके जो सब अवतार होंगे, उसे भी कहा है। वहां पर पञ्चेन्द्रियोंसे रहित जो सब श्वेत वर्ण पुरुष हैं, वे सभी भक्त और प्रतिबुद्ध हैं, तथा सदा उस पुरुषोत्तमकी पूजा किया करते हैं, वह भी उनके सहित निरन्तर क्रीड़ा करते हैं। भगवान भक्तोंपर अनुरक्त हैं और द्विजातियोंको प्रिय समझते हैं, वह सदा भागवत प्रिय है; वह परमात्मा

पूजित होनेसे ही प्रसन्न हुआ करता है। विश्वभुक् सर्व्वग भक्तवत्सल देव माधव अत्यन्त बल और द्युतिशाली हैं, वही कर्त्ता, कारण और कार्य्य स्वरूप है। वही महा यशस्वी सबका कारण है, सबका ही अन्नापायिता और तत्त्व स्वरूप है। वह श्वेतद्वीपमें आत्माको तपयुक्त करके निज प्रभाके सहारे अवभासित होकर परम ज्योतिःस्वरूपसे सर्व्वत्र विख्यात होरहा है। उस विश्वविधाताने तीनों लोकके बीच शान्तिका विधान किया है। इस शुभ बुद्धिसे उसने नैष्ठिक व्रत अवलम्बन किया है। जब वह देवेश महादुस्तर तपस्या करता है, उस समय न उसे सूर्य्य तापित करता है, न चन्द्रमा उसके निकट विराजमान होता और न वायु बहता है। विश्वकर्त्ता नारायण पृथ्वीपर आठ अंगुल ऊंची वेदी स्थापित करके उत्तर और मुह करके तथा ऊर्द्धबाहु होके एक पदसे स्थित थे। ब्रह्मा, ऋषिवृन्द, स्वयं महादेव और दूसरे समस्त श्रेष्ठ देवता दैत्य, दानव, राक्षस, सर्प, गरुड़, गन्धर्व्व, सिद्ध और राजर्षि लोग सदा विधिपूर्व्वक जो सब हव्य, कव्य प्रदान करते हैं, वह सब उस देवके दोनों चरणोंमें उपस्थित होता है; अव्यभिचरित बुद्धिशाली अत्यन्त भक्तिनिष्ठ मनुष्य जो सब कार्य्य करते हैं, नारायण उन कार्य्योंको निज शिर पर ग्रहण किया करते हैं। ज्ञानसे प्रदीप्त महात्माओंसे भिन्न तीनों लोकके बीच दूसरा कोई भी उसे प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त उसमें अत्यन्त भक्तियुक्त हुआ हूं। उस परमात्माके निकटसे विदा होकर मैं इस स्थानमें आया हूं, मैंने जो कुछ कहा, भगवान् नारायणने मुझसे स्वयं वह सब कहा है। मैं परमात्म-परायण होकर सदा तुम्हारे सहित निवास करूंगा।

३४३ अध्याय समाप्त।

श्री नर-नारायण ऋषि बोले, हे देवर्षि! तुम धन्य और अनुगृहीत हो, क्यों कि स्वयं नारायणका दर्शन किया है; दूसरेकी बात तो दूर रहे, स्वयं पद्मयोनि ब्रह्माने भी उसका दर्शन नहीं किया है। हे नारद! अव्यक्तयोनि भगवान् पुरुषोत्तम दुर्द्दर्श है, यह तुमने हमसे यथार्थ वचन कहा है। हे द्विजोत्तम! लोकके बीच भक्तके अतिरिक्त उसे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, इस ही निमित्त स्वयं अपना दर्शन दिया है। हे विप्रवर! परमात्मा जिस स्थानमें तपस्या करता है, हमारे अतिरिक्त दूसरे किसीको भी वह स्थान नहीं प्राप्त होता। जैसा सहस्र सूर्य्यका प्रकाश होता है, वह जिस स्थानमें विराजता है, उसकी स्वयं ही वैसी शोभा हुआ करती है। हे क्षमायुक्त विप्रवर! उस विश्वविधाता विश्वेश्वर देवसे क्षमा उत्पन्न होती है, जिस क्षमासे वसुन्धरा संयुक्त होरही है। उस सब भूतोंके हितैषी नारायणसे रस उत्पन्न हुआ है। जल उस ही रसके सहित मिलित तथा द्रवत्वको प्राप्त होता है। रूप गुणात्मक तेज उसहीसे प्रकट हुआ है, जिससे सूर्य्य संयुक्त होकर लोकके बीच विराज रहा है। उस पुरुषोत्तमसे स्पर्श उत्पन्न होता है, जिसके संयोगसे वह वायु लोकमें बह रहा है, उस सर्व्व लोकेश्वर प्रभुसे शब्द उत्पन्न हुआ है, जिसके सहित आकाश संयुक्त होरहा है, और उस ही निमित्त असंवृत्त हुआ करता है। उस देवसे ही सर्व्वभूत स्थित मन उत्पन्न होता है, जिस मनके सहित संयुक्त होकर चन्द्रमाने प्रकाश गुण धारण किया है। जिसमें हव्य कव्य भोक्ता भगवान विद्या सहाय होकर निवास करते हैं, उस प्राणियोंके उत्पादक नित्य स्थानका नाम वेद है। हे द्विजसत्तम! लोकमें जो लोग पुण्यपापसे रहित, निष्कलुष, कल्याण पथमें गमनशील हैं, उन सब पुरुषोंके सम्बन्धमें सब लोकोंके बीच तमनाशक आदित्य ही द्वार

स्वरूपसे वर्णित हुआ करता है। इस लोकमें प्रवेश करनेके समय लोगोंके सब अङ्ग जलते हैं, इसीसे कोई उन्हें कभी नहीं देख सकते। वे लोग परमाणु स्वरूप होकर उस ही देवमें प्रवेश करते हैं, उससे निर्मुक्त होकर अनिरुद्ध शरीरमें स्थित रहते हैं।

अनन्तर मन स्वरूप होकर प्रद्युम्न शरीरमें प्रविष्ट होते हैं, तिसके अनन्तर प्रद्युम्न शरीरसे निकलके भागवत और सांख्ययोग अवलम्बी पुरुष जीव स्वरूप सङ्कर्षणमें प्रवेश किया करते हैं। शेषमें वे तीनों गुणोंके सहित द्विजश्रेष्ठ पुरुष निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ परमात्मामें शीघ्र प्रवेश करते हैं; उसे ही यथार्थ रूपके सर्व्ववास वासुदेव और क्षेत्रज्ञ जानो। जो लोग सदा स्थिरचित्तवाले संयतेन्द्रिय और एकान्त भावसे युक्त हैं, वेही वासुदेवमें प्रवेश करते हैं। हे द्विजसत्तम! हमने भी धर्म्मके गृहमें जन्म लेकर रमणीय बदरिकाश्रममें उग्र तपस्या अवलम्बन किया है। हे द्विज! देवताओंके प्रिय कार्य्य साधनके निमित्त तीनों लोकके बीच नारायणकी जो सब उत्पत्ति होगी, उनकी स्वस्ति होवे। हे द्विजोत्तम तपोधन! हमने पहिलेकी भांति निज विधिसे युक्त और सर्व्वकृच्छ्र सर्व्वोत्तम व्रत अवलम्बन करते हुए श्वेत द्वीपमें तुम्हें अवलोकन किया है। तुमने भगवानके निकटमें समागत होकर जो सङ्कल्प किया है, उसे भी जाना है। सचराचर तीनों लोकके बीच जो कुछ शुभाशुभ होगा, हुआ और होता है, वह सब हमसे छिपा नहीं है। हे महामुनि! देवोंकेदेव नारायणने तुमसे सब विषय ही कहे हैं।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, नारद मुनि हाथ जोड़के नर-नारायणके मुखसे यह कथा सुनके नारायण परायण होकर उग्र तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें दिव्य परिमाणसे सहस्र वर्ष तक वास करके अनेक प्रकारसे नारायण मन्त्रको विधि-पूर्व्वक जप किया। महातेजस्वी भगवान नारद ऋषि उस परम देव और नारायणको सब प्रकारसे पूजा करते हुए उनके आश्रममें निवास करने लगे।

३४४ अध्याय समाप्त।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, कुछ कालके अनन्तर परमेष्ठि पुत्र नारदने विधिपूर्व्वक देव-कृत्य करके उसके अनन्तर पितर कार्य्य किया। अनन्तर जेठे धर्म्मपुत्र सर्व्व ऐश्वर्य्यवान नरने उनसे यह वचन कहा कि, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम इस कल्पित दैव और पित्र्य कार्य्यसे किसकी पूजा करते हो? हे मतिमत्प्रवर! तुम यह कौनसा कर्म्म कर रहे हो और इससे कैसा फल पानेकी कामना करते हो? उसे मेरे निकट शास्त्र विधिके अनुसार वर्णन करो।

नारदमुनि बोले, दैव कर्म्म करना चाहिये, ऐसा तुमने पहिले कहा था, परम दैव सनातन परमात्मा परम पूजनीय है, उस ही निमित्त मैं उसमें रत होके अविनाशी वासुदेवकी सदा पूजा किया करता हूं। उस नारायणसे ही प्रथम लोक पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं, परमेष्ठि हरिने प्रसन्न होके मेरे पिताको उत्पन्न किया था; मैं उनका प्रथम सङ्कल्पज पुत्र हूं। हे साधो! इसीसे नारायणकी पूजा करता हूं, वह जगत्पति भगवान पिता, माता और पितामह है; इसलिये वह पितृ यज्ञमें सदा पूजित होते हैं। पितरोंने वेद सुनना प्रनष्ट होनेपर उन्होंने पुत्रोंसे उसे पढ़ा था अर्थात् देवताओंने अग्निष्वात्तादि पुत्रोंको वेद पढ़ाके असुरोंसे युद्ध करनेके लिये गमन किया था। उस संग्राममें बहुत दिनतक प्रवृत्त रहनेमें श्रुति स्मरण न हुई, इसलिये उन लोगोंने पुत्रोंके निकट फिर वेद पढ़ा। इस ही निमित्त मन्त्रदाता अग्नि-

स्वत्व प्रभृति पितृत्वको प्राप्त हुए हैं, देवताओंको यह मालूम है, और आप लोग भी आत्मवित् हैं, इसलिये आपसे भी यह छिपा नहीं है, कि पुत्रों और पितरोंने परस्पर पूजा की थी। उन्होंने पृथ्वीपर पहले कुश बिछाकर तीन पिण्ड स्थापित करके पूजा की थी। यहां पर यह प्रश्न उपस्थित होता है, कि पहले समयमें पितरोंको किस प्रकार पिण्ड संज्ञा हुई।

नर-नारायण बोले, हे नारद! पहले समयमें नारायणने वाराह देह धारण करके इस नष्टप्राय सागर मेखला वसुन्धराका शीघ्र उद्धार किया था। पुरुषोत्तम गोविन्द पृथ्वीको स्वस्थानमें स्थापित करनेके निमित्त लोककार्य्य सिद्धिके हेतु उद्योगी होनेपर उनका समस्त अङ्ग जलयुक्त कीचड़से लिप्त हुआ था। सूर्य्यके मध्यस्थानमें गमन करने पर जब उनके सन्ध्या करनेका समय उपस्थित हुआ, तब उन्होंने दांतमें लगे हुए तीनों पिण्डोंको निकालके पृथ्वीतलमें कुश बिछाकर उसे उसहीके ऊपर रख दिया। उन्होंने उन तीनों पिण्डोंमें आत्माके उद्देश्य करके विधिपूर्व्वक पितृकार्य्य पूरा किया। उस सर्व्व शक्तिमान देवेशने विधिपूर्व्वक तीनों पिण्डोंको कल्पना किया और स्वयं पूर्व्व और मुख करके निज शरीरकी उष्मतासे उत्पन्न हुए स्नेहगर्भ तिलके सहारे पिण्ड प्रोक्षण करके प्रदान किया; और मर्य्यादा स्थापित करनेके लिये यह वचन बोले, ।

वृषाकपि बोले, मैं स्वयं लोककर्त्ता होनेपर भी पितरोंको उत्पन्न करनेके लिये उद्यत हुआ हूं; पितृकार्य्य विधिका विचार करते करते मेरे दोनों दांतोंसे ये तीनों पिण्ड बाहर होकर दक्षिण दिशामें पृथ्वीको अवलम्बन कर रहे हैं; विष्णुके शालग्राम मूर्त्तिकी भांति ये पितृमूर्त्ति सम्पन्न हुए। पितर लोग मूर्त्तिविहीन होनेपर भी मेरे सहारे उत्पन्न हुई इस ही पिण्डमूर्त्तिको धारण करके लोकमें सनातन रूपसे विख्यात होंगे। मुझसे ही इन तीनों पिण्डोंके बीच पिता पितामह और प्रपितामह रूपसे स्थित हुआ जानो। मुझसे श्रेष्ठ कोई भी नहीं है, दूसरा कौन पुरुष मेरा पूज्य है, लोकमें मेरा पिता कौन है? मैं ही पितामह और प्रपितामह हूं, मैं ही इस विषयमें कारण हूं। हे विप्र! देवताओंके प्रभु वृषाकपि ऐसा वचन कहके वराह पर्व्वतपर बहुतसे पिण्डप्रदान पूर्व्वक अपनी ही पूजा करके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान हुए। हे ब्रह्मन्! पिण्डसंज्ञिक पितृगण जो सदा पूजित हुआ करते हैं, वृषाकपिका वचन ही उनकी मर्य्यादाका हेतु है। जो लोग मन, वचन और कर्म्मसे पितर; देवता, गुरु, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पृथ्वी और माताकी पूजा करते हैं, वे लोग विष्णुकी ही पूजा किया करते हैं। सर्व्व प्राणियोंके शरीरगामी वह भगवान सबमें ही व्याप्त है, वह सब भूतोंमें समान और सुख दुःखका ईश्वर, महान् नारायण, महात्मा और सर्व्वात्मा कहा जाता है।

३४५ अध्याय समाप्त।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, नारद मुनि नर-नारायणके मुखसे ऐसी कथा सुनके उनमें अत्यन्त भक्तिमान होकर एकान्तित्वको प्राप्त हुए। उन्होंने नर-नारायणके आश्रममें सहस्र वर्ष पर्य्यन्त वास करके भगवानका आख्यान सुनके तथा अविनाशी नारायणका दर्शन करके जिस स्थानमें उनका अपना आश्रम था, उस ही हिमालय पर्व्वतपर गमन किया। विख्यात तपस्वी नर-नारायण दोनों ऋषि भी उस रमणीय आश्रममें उत्तम तपस्या करने लगे। हे नृपसत्तम! तुम पाण्डवकुल धुरन्धर और अत्यन्त पराक्रमी हो, आज इस आदिकथाको सुनके तुम्हारा आत्मा पवित्र हुआ। जो पुरुष

अविनाशी विष्णुसे वचन, मन और कर्म्मसे द्वारा विद्वेष करता है, उसके लिये यह लोक और परलोक कुछ भी नहीं है। जो पुरुष देवताओंमें श्रेष्ठ नारायण हरिसे विद्वेष करता है; उसके पितर सदा नरकमें डूबते रहते हैं। हे पुरुषप्रवर ! क्या किसीका आत्मा द्वेषी हो सकता है; विष्णुको ही सबकी आत्मा जानो, यही शास्त्रकी मर्य्यादा है। हे तात ! गन्धवती पुत्र महर्षि वेदव्यास जो कि हमारे गुरु हैं, उनने ही यह अव्यय परम माहात्म्य कहा था, हे निष्पाप ! मैंने उनसे सुनके यह विषय तुम्हारे समीप वर्णन किया। हे नरनाथ ! नारद मुनिने साक्षात् जगन्नाथ नारायणसे यह सरहस्य संग्रहयुक्त धर्म्म प्राप्त किया था, हे नृपवर ! पहिले हरिगीताके बीच संक्षिप्त विधिके अनुसार यह महान् धर्म्म तुम्हारे निकट कहा गया था। हे पुरुषश्रेष्ठ भूमण्डलमें कृष्णद्वैपायन व्यासदेवको ही नारायण जानो. उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष महाभारतका रचनाकर्त्ता हो सकता है ? और उस अनन्त शक्तिमानके अतिरिक्त कौन अनेक भांतिके धर्म्म वर्णन करनेमें समर्थ होता ? तुमने जैसा सङ्कल्प किया है, उस हीके अनुसार तुम्हारा महायज्ञ पूरा होवे, तुमने अश्वमेध यज्ञका संकल्प करके यथार्थ धर्म्म सुना है।

सौति बोले, नृपसत्तम जनमेजयने यह महत् आख्यान सुननेके अनन्तर यज्ञसमाप्तिके लिये सब कार्य्य आरम्भ किया। नैमिषारण्य-वासी शौनक आदि ऋषियोंके पूछने पर मैंने यह नारायणका आख्यान कहा। पहिले समयमें नारदने जो कथा देवगुरुके निकट कही थी, ऋषि गण और पाण्डवोंके बीच कृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर वही वर्णित हुई थी। सब प्राणी और भुवनके पति पृथु, धरणीधर श्रुति तथा नियमके आधार, शम परायण, यम-नियममें निष्ठावान वह परमर्षि द्विजवरोंके सहित तुम्हारे अवलम्ब होवे। देवताओंके हितकारी, असुरोंके वध करनेवाले, उत्तम महत् तपस्याके आधार, यशके पात्र, मधुकैटभ-हन्ता, सत्य धर्म्मज्ञ पुरुषोंके गतिदाता, अभय-दाता, यज्ञभागहर वह हरि तुम्हारी रक्षा करें। जो तीनों गुणोंसे युक्त और गुणहीन है, जिसने वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारों मूर्त्तियोंको धारण किया है, जो धाता आदि पूर्त्तकर्म्म और अग्निहोत्र आदि दृष्ट कर्म्मका फलभार ग्रहण करता है; वह नित्य अपराजित अत्यन्त बलशाली भगवान सुकृतशाली ऋषियोंको आत्मगामिनी मतिका विधान करे। उस लोकसाक्षी जन्मरहित पुराण पुरुष आदि वर्ण अखिलगति ईश्वरको एकाग्र-चित्तसे प्रणाम करो, क्यों कि सलिलोद्भव अर्थात् जलकी उत्पत्तिके कारण शेषशायी नारायण भी उस वासुदेवके निकट प्रणयन हो रहे हैं। वह सब लोकोंकी उत्पत्तिका कारण, अमृतधाम, सूक्ष्म अचल परम पद है, निरुद्ध चित्तवाले सांख्ययोगी लोग उस सनातन नारायणको बुद्धिके बीच उदाररूपसे धारण किये हैं।

३४६ अध्याय समाप्त ।

राजा जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन् ! सर्व्वैश्वर्य्य युक्त परमात्माका महात्म और उसका धर्म्मके गृहमें नर-नारायण स्वरूपसे जन्मवृत्तान्त सुना। महावाराह सृष्टिके हेतु प्राचीन पिण्डोत्पत्ति और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति विषयमें जिस प्रकार जैसा धर्म्म कल्पित हुआ था, आपके कहे हुए वह सब वृत्तान्त मैंने सुना। पहले जो आपने पूर्व्वोत्तर महासागरके समीप हव्य-कव्य भोक्ता हरिका उत्तम और महत् हयशिरा अवतार कहा है, भगवान परमेष्ठि ब्रह्माने उसका दर्शन किया। हे धीमान् ! लोकोंको धारण करनेवाले हरिने किस निमित्त वह

महाप्रभावयुक्त अद्भुत रूप उत्पन्न किया। हे मुनि! उस अत्यन्त तेजस्वी देवप्रवर पवित्र और अद्भुत अश्वशिराको देखकर ब्रह्माने क्या किया था। हे ब्रह्मन्! हमें इस पुराणज्ञानमें सन्देह होता है, हे उत्तमबुद्धिवाले! भगवानने किस निमित्त महापुरुष रूपसे अवतार लिया, पवित्र कथा कहनेवाले पुरुषोंमेंसे आप हम लोगोंको पवित्र कर रहे हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान वेदव्यासने राजा जनमेजयके निकट जो कुछ कहा था, वह वेद तुल्य पुराण मैं तुम्हारे समीप वर्णन करूंगा। राजा जनमेजयने भगवान अश्वशिरा मूर्त्तिकी कथा सुनके सन्देहयुक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन कहा था।

राजा जनमेजय बोले, हे सत्तम! ब्रह्माने जो हयशिरा देवका दर्शन किया था, वह मूर्त्ति किस निमित्त उत्पन्न हुई थी। उसे ही आप मेरे समीप वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे नरनाथ! इस जगत्में जिस किसी शरीरमें सत्त्व विद्यमान है, वह सब ईश्वरके सङ्कल्प मात्रसे पञ्चभूतोंके द्वारा परिपूर्ण है। सर्व्व शक्तिमान नारायणके समीप ईश्वर ही जगत् स्रष्टा हैं, वह सब भूतोंको अन्तरात्मा, वरदाता, सगुण और निर्गुण है। हे नृपसत्तम! सब प्राणियोंको आत्यन्तिक प्रलयका विषय सुनो, पहिले समयमें जगत्के समुद्रमय होजाने पर पृथ्वी जलमें लीन हुई, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें और आकाशके मनमें लीन होने पर मन महत्तत्त्वमें लीन हुआ और महत्तत्त्व अव्यक्तता अर्थात् महत् गुणोंकी साम्य अवस्थामें प्राप्त होनेसे अव्यक्त पुरुषमें और पुरुषके परब्रह्ममें लीन होनेपर सब तमोमय होकर विशेष विज्ञान लुप्त होगया था, इसलिये कुछ भी मालूम नहीं होता था। तमःसन्निधानके अनन्तर परव्योमाख्य ब्रह्म प्रकट हुआ। तमसे ही अधिष्ठान मात्रसे प्रपञ्चात्मक ब्रह्मने तैजस शरीर अवलम्बन करके विश्व नाम धारण किया है, उसे ही अनिरुद्ध कहा जाता है, और उसको ही पण्डित लोग प्रधान कहा करते हैं। हे नृपसत्तम! उस प्रधानको ही अव्यक्त और त्रिगुणात्मक जानो। विद्या अर्थात् निर्विशेष चिन्मात्ररूपी वृत्तिके सहायक भगवान विष्वक्सेन हरिने जगत्की विविध विचित्र रचना सृष्टिके विषयको विचारते हुए योगनिद्राके सहारे जलमें शयन किया था। उन्होंने सोचा; कि मैं सृष्टिकार्य्य अर्थात् प्रजा रूपसे अनेक होऊंगा,— ऐसा विचारते हुए आत्मगुण महान्का स्मरण किया, उस महान्से अहंकार उत्पन्न हुआ। वही चार मुंहवाले हिरण्यगर्भ लोक पितामह ब्रह्मा हैं, वह उस समय अनिरुद्धसे उत्पन्न होकर सहस्र पत्रवाले कमल अर्थात् ब्रह्माण्डमें बैठ गये, वह द्युतिमान पद्मनिभेक्षण और सनातन हैं। उस आश्चर्य्य रूपवाले ब्रह्माने पहले जलमय समस्त लोकोंको देखा। अनन्तर उस सत्त्ववर्त्ती अनादि निधन ब्रह्मा भूतगणोंको उत्पन्न करते हुए सूर्य्यकी किरण समान प्रभायुक्त पद्मके पत्र अर्थात् एक अखण्ड स्थानमें पहले नारायण-विरचित गुण प्रधान जलकी दो बूंद देखीं। उसके बीच जलकी पहली बूंद मधुकी भांति आभा और मनोहर प्रभासे युक्त थी, वह उस समय नारायणकी आज्ञानुसार तामस मधु नामसे उत्पन्न हुई, दूसरी बूंद कठोर थी इसलिये रज प्रधान कैटभ रूपसे प्रकट हुई। उस तम और रजोगुणसे युक्त बलवान हाथमें गदा लिये हुए पद्मनालके अनुसार मधु और कैटभ जाते ही सब ओर दौड़े। उन्होंने सुन्दर विग्रह और चारों वेदोंके उत्पन्न करनेवाले अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको कमलके बीच स्थित देखा। अनन्तर उन विग्रह-विशिष्ट दोनों असुर श्रेष्ठ पुरुषोंने वेदोंको देखते ही ब्रह्मासे छीन लिया। अनन्तर

है; दोनों दानव सनातन वेदोंको लेके जलयुक्त अश्व-समुद्रके मार्गसे शीघ्र ही पातालमें चले गये। वेदोंके हरे जानेपर ब्रह्मा मोहयुक्त हुए, वह वेद रहित होके ईश्वरसे यह वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, वेद ही मेरे परमनेत्र हैं, वेद ही मेरा परम बल है, वेद ही मेरा परमधाम है, सब वेद ही मेरी परम तपस्या है। दोनों प्रबल दानवोंने इस स्थानसे बलपूर्व्वक मेरे वेदोंको हर लिया है, वेदके बिना सब लोक मुझे अन्धकारमय बोध होता है। बिना वेदके मैं किस प्रकार सब लोकोंकी सृष्टि करूं। हाय! वेद नष्ट होनेसे मुझे महत् दुःख उपस्थित हुआ; मैं शोकरूपी समुद्रमें डूब रहा हूं, इस समय कौन इससे मेरा उद्धार करेगा। कौन नष्ट हुए वेदोंको फिर ले आवेगा! मैं किसका प्रिय हूंगा। हे नृपसत्तम! हे बुद्धिमद्वर! ब्रह्माके इस ही प्रकार विलाप करते रहने पर नारायणके स्तोत्रके लिये उनमें बुद्धि उत्पन्न हुई। अनन्तर ब्रह्मा हाथ जोड़के परम जप्यमन्त्रको जपने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे ब्रह्महृदय! तुम्हें नमस्कार है, तुम मुझसे पहले उत्पन्न हुए हो; तुम सब लोकोंकी आदि भुवनश्रेष्ठ और सांख्ययोगके आश्रय हो, तुम सर्व्वशक्तिमान हो, इससे तुम्हें प्रणाम है। हे अचिन्त्य! तुम व्यक्त जगत् और अव्यक्त परमाणु आदि उत्पन्न करते हो, तुम क्षेमकर पथमें निवास कर रहे हो। हे अयोनिज! तुम विश्वभुक और तुम ही सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा हो। हे लोकधाम! तुम स्वायम्भू हो, मैं तुम्हारी कृपासे उत्पन्न हुआ हूं। पहले तुमसे ही मेरा द्विजोंसे सत्कृत मानस जन्म हुआ, और दूसरी बार पुरातन चाक्षुक जन्म हुआ था, तुम्हारी कृपासे तीसरी बार मेरा महत् वाचिक जन्म हुआ। हे विभु! तुमहीसे मेरा चौथा श्रवणज जन्म हुआ, तुमसे ही मेरा परम नासत्य जन्म पांचवां कहा जाता है, तुमसेही मेरा छठवां जन्म अण्डज कहा गया है। हे प्रभु! मेरा सर्व्व प्राणियोंकी बुद्धिवासनाका उद्दीपक यह वर्त्तमान पद्मजन्म सातवां कहके विख्यात हुआ है। प्रति सर्गमें ही मैं तुम्हारे त्रिगुणरहित पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ था। हे पुण्डरीकाक्ष! तुमने ही पहले प्रधान गुणकल्पित अर्थात् शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण किया है; तुमने ही ईश्वर स्वभाव और स्वायम्भूके कर्म्मबन्धनका विधान किया है। मैं वेदरूपी नेत्रसे युक्त हूं, इसलिये कालविजयी होनेपर भी तुम्हारे सहारे उत्पन्न हुआ हूं। इस समय मेरा वही नेत्रस्वरूप वेद अपहृत हुआ है, इसहीसे मैं अन्ध हुआ हूं इससे तुम जाग्रत होके मुझे नेत्र दान करो, मैं तुम्हारा प्रिय हूं और तुम भी मेरे प्रिय हो।

सर्व्वतोमुख पुरुष भगवानने उस समय इस प्रकार स्तुत होकर निद्रा परित्याग की। उस समय उन्होंने वेदकार्य्यके लिये ऐश्वर्य्य प्रयोगके द्वारा दूसरा शरीर धारण किया। तब प्रभु सुन्दर नासिकायुक्त शरीरके द्वारा चन्द्रप्रभा समान होके श्वेतवर्ण हयशिरा रूपसे वेदोंके अवलम्ब हुए। नक्षत्र और तारोंसे युक्त आकाशमण्डल उनका सिर हुआ, सूर्य्यकिरण समान प्रकाशसे युक्त उनके केश अत्यन्त लम्बे हुए। आकाश और पाताल उनके दोनों कान, प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी ललाट, गङ्गा और सरस्वती कटि, समुद्र उनके दोनों भौं, सूर्य्यचन्द्रमा उनके दोनों नेत्र तथा सन्ध्या उनकी नासिका स्वरूप हुई। ओंकारसे उनका संस्कार हुआ और बिजली उनकी जिह्वारूप हुई। हे राजन्! सोमपान करनेवाले पितर लोग उनके दांत रूपसे कहे गये, गोलोक और ब्रह्मलोक उस महात्माका ओठ तथा अधररूपसे प्रकाशित हुआ। हे महाराज! गुणप्रधान कालरात्रि उनकी ग्रीवा हुई; वह सर्व्व शक्तिमान विश्वेश्वर अनेक मूर्त्तियोंसे आवृत्त यह हयशिरा

मूर्त्ति धारण करके अन्तर्हित होकर उस ही समय पातालमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने परम योग अवलम्बन करके शिक्षा सम्बन्धीय स्वरके सहारे उद्गीथस्वर उत्पन्न किया। वह सब भांतिसे कोमल प्रतिध्वनि युक्त स्वर रसातलमें प्रकट होके सब प्राणियोंको हितकर हुआ।

अनन्तर वे दोनों असुर वेदोंको समय नियन्त्रित करके रसातलमें फेंक दिया और जिधर वह शब्द होता था उधर ही दौड़े। हे राजन्! इतने ही समयमें हयग्रीव हरिने पातालमें जाके निखिल वेदोंको ग्रहण किया और वह समस्त वेद ब्रह्माको फिर प्रदान करके निज प्रकृतिको प्राप्त हुए पूर्व्वोत्तर समुद्रतटके समीप वेदोंके आश्रय, तथा वेदोंके उद्धार निमित्त ही भगवान अश्वशिरा हुए थे। अनन्तर दानवश्रेष्ठ मधु और कैटभ कुछ भी न देखकर वेगपूर्व्वक उस स्थानपर आये, जिस स्थानमें वेदोंको फेंका था, उस स्थलको भी सूना देखा, फिर वे दोनों बलवान असुर अत्यन्त वेगके सहित शीघ्र ही पातालसे उठे और चन्द्रमा समान विशुद्धात्मा अनिरुद्ध शरीरमें स्थित श्वेतवर्ण सर्व्वशक्तिसम्पन्न आदि पुरुषको देखा। वह अत्यन्त विक्रमशाली निष्कल्मष सत्त्वसम्पन्न मनोहर प्रभायुक्त भगवान आत्म प्रमाण रचित, जलके ऊपर कल्पित ज्वालमालासे परिपूरित नागभोगाढ्य शय्यापर फिर निद्रित हुए थे, वे दोनों दानवेन्द्र उन्हें देखकर ऊंचे स्वरसे हंसने लगे और रज तथा तमोगुणसे युक्त होकर बोले, यह वही श्वेत पुरुष निद्रित होकर सोरहा है, निःसन्देह इसी पुरुषने पातालसे वेद हरण किया है। यह पुरुष कौन है? किसका पुत्र है, किसलिये भोगशय्यापर सोरहा है। दोनों दैत्योंने ऐसा ही वचन कहके नारायणको जगाया। पुरुषोत्तमने सावधान होके उन दोनों असुरेन्द्रोंको युद्धार्थी समझा और उन्हें देखकर युद्ध करनेमें चित्त लगाया। अनन्तर उन दोनोंके सङ्ग नारायणका युद्ध हुआ। मधु और कैटभका शरीर रज और तमोगुणसे परिपूरित था। मधुसूदनने ब्रह्माका सम्मान करके उन दोनोंका वध किया। पुरुषोत्तमने शीघ्र ही उनका नाश किया और वेद लाके ब्रह्माका शोक दूर किया। अनन्तर वेदसे सत्कृत होनेपर ब्रह्माने हरिसे परिवृत्त होकर उस समय स्थावर जङ्गम समस्त भूतोंकी सृष्टि की। देवोंके देव हरि पितामहको लोक रचनाकी उत्तम बुद्धि प्रदान करके जिस स्थानसे आये थे, उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये नारायणने यहग्रीव शरीर धारण कर उन दोनों दानवोंका वध करनेके अनन्तर फिर प्रवृत्ति धर्म्मके लिये पूर्व्व विग्रह ग्रहण किया। महाभाग हरि इस ही प्रकार अश्वशिरा हुए थे, वरदाता ईश्वरका यह प्राचीन रूप प्रसिद्ध है। जो पुरुष परब्रह्मका यह माहात्म्य सुनता अथवा धारण करता है, उसका अध्ययन कदापि विनष्ट नहीं होता। पाञ्चाल मुनिने उग्र तपस्याके सहारे हयग्रीव देवकी आराधना करके देवादेशित पथसे गति प्राप्तकी थी। हे महाराज! तुमने मुझसे जो पूछा था, उस वेदतुल्य प्राचीन हयशिरा आख्यानको मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया। भगवान नारायण किसी कार्य्यके अनुष्ठान विषयमें जैसी मूर्त्ति धारण करनेकी इच्छा करें, वह स्वयं ही वैसी मूर्त्ति धारण कर सकते हैं। वेही वेदोंके अवलम्ब हैं, वेही श्रीमान् तपस्याके निधि हैं, वेही सांख्ययोग परब्रह्म और सर्व्वशक्तिमान हरि हैं। सब वेद नारायण पर, समस्त यज्ञ नारायणात्मक, सब तपस्या नारायणाश्रय, सब गति नारायण-पर; सत्य नारायणनिष्ठ, ऋत अर्थात् परम सत्यनारायणात्मक, पुनरावृत्ति दुर्लभ धर्म्म नारायणपर, प्रवृत्ति लक्षण धर्म्म भी नारायणात्मक है, उत्तम गन्ध जो कि भूमिमें अनुप्रविष्ट होरही है, वेही

नारायणात्मक हैं। हे राजन्! जलके गुण समस्त रस नारायणमय हैं, ज्योतिका परमरूप नारायण स्वरूप है, वायुका गुण स्पर्श भी नारायण स्वरूप कहा गया है, आकाशसे उत्पन्न हुआ शब्द भी नारायणात्मक है। पुरुष प्रकृत, स्वभाव, धर्म्म और दैव, ये सब जगत्के कारण हैं, अधिष्ठान कर्त्ता पृथक् रूपसे कारण है, विविध चेष्टा और दैव ये पञ्चकारण रूपसे गिने गये हैं, ईश्वर इन पांचों कारणोंमें ही अधिष्ठित होरहा है। अव्यक्तगुण लक्षणयुक्त मन उसहीसे उत्पन्न हुआ है, काल और ज्योतियुक्त पदार्थोंका अयन नारायण परायण है। कीर्त्ति, श्री, लक्ष्मी और देवता नारायणपरायण हैं, सांख्य और योगशास्त्र भी नारायणात्मक हैं। एकमात्र सर्व्वशक्तिमान महायोगी हरि ही ब्रह्म है। वह केशव सब लोकोंके सहित ब्रह्मा आदि देवताओं महानुभाव ऋषियों, साख्य मतवाले योगियों और आत्मज्ञ यतियोंके मनोवाञ्छित विषयोंको विशेष रीतिसे जानता है, परन्तु ये सब उसके अभिप्रायको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। सब लोकोंके बीच जो पुरुष दैव और पितर कर्म्म करता है, दान करता तथा महत् तपस्या करता है, विष्णु ही उन सबके अवलम्ब हैं। वेही ऐश्वर्य्ययुक्त और सब प्राणियोंके निवास स्थान हैं, इस ही निमित्त वासुदेव नामसे विख्यात हैं।

वह नारायण परम नित्य महर्षि महाविभूति और गुणवर्ज्जित है, तथा जैसे काल ऋतुओंके सहित संप्रयुक्त होता है, वैसे ही ईश्वर भी कार्य्यवशसे शीघ्र ही गुणोंसे संयुक्त हुआ करता है, इस लोकमें उस महात्माकी गतिको कोई भी प्राप्त नहीं होता और उसकी अगतिको भी कोई देखनेमें समर्थ नहीं होता है। जो सब ज्ञानमय महर्षि विद्यमान हैं, वे ही उस गुणाधिक नित्य पुरुषको अवलोकन करते हैं।

३४७ अध्याय समाप्त।

राजा जनमेजय बोले, जैसा आपने कहा है, कि भगवान् नारायण सब सुमुक्षु पुरुषोंके ऊपर प्रसन्न होते और वह स्वयं विधिपूर्व्वक पूजा ग्रहण करते हैं। इस लोकमें जिन लोगोंकी वासना विनष्ट हुई है और जो लोग पुण्यपापसे रहित हैं, उनकी परम्परा प्राप्त गति अर्थात् ज्ञानके विषयको आपने वर्णन किया है। वे लोग चौथी गति अर्थात् अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और सङ्कर्षणको उपेक्षा करके वासुदेव पुरुषोत्तमको पाते हैं। ऐकान्तिक पुरुष अर्थात् निष्काम भक्त लोग परम पद लाभ करते हैं। मुझे यह निश्चय बोध होता है, कि यह एकान्त धर्म्म ही श्रेष्ठ तथा नारायणको प्रिय है। क्यों कि ऐकान्तिक पुरुष तीनों गति अनिरुद्ध प्रभृतिको उपासना करके ही अव्यक्त हरिको पाते हैं। जो सब विप्र यत्नवान् होकर विधिपूर्व्वक उपनिषदोंके सहित वेद पाठ करते हैं और जो लोग यतिधर्म्मसे युक्त हैं, उनसे ऐकान्तिक पुरुषोंको गति उत्तम मालूम होती है। कौन देवता तथा किस ऋषिके द्वारा यह धर्म्म वर्णित हुआ है। ऐकान्तिक पुरुषोंके कैसे आचरण हैं और किस समयमें वे उत्पन्न हुए थे। हे विभु! मेरा यह सन्देह दूर करो; इस विषयमें मुझे बहुत ही कौतूहल उत्पन्न हुआ है।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजन्! संग्रामभूमिमें कुरु पाण्डवोंकी सेना उपस्थित होने पर जब अर्ज्जुन अन्यमनस्क हुए थे, उस समय स्वयं भगवानने जो कहा था वह अगति और गतिका विषय पहले मैं तुम्हारे समीप कह चुका हूं; यह धर्म्म अत्यन्त सूक्ष्म है और अविशुद्ध मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्व्विज्ञेय है। पहिले समय आदि युगमें यह धर्म्म सामवेदके सहित समभावसे निर्म्मित हुआ और स्वयं ईश्वर नारायणने इसे धारण किया है। हे महाराज! इस धर्म्मके निमित्त पार्थने ऋषियोंके बीच कृष्ण और भीष्मके सुनते रहनेपर महा-

आग नारद मुनिसे पूछा था। हे नृपसत्तम! मेरे गुरुने भी इस विषयको वर्णन किया था; उस समय नारद मुनिने उन लोगोंसे जिस प्रकार कहा था, उसे सुनो।

हे पृथ्वीपाल भारत! जिस समय नारायणके मुखसे ब्रह्माका मानस जन्म हुआ था, उस समय स्वयं नारायणने उक्त धर्मके सहारे दैव और पितरकर्म्म किया था; फेनप ऋषियोंने वही धर्म्म ग्रहण किया। फेनप ऋषियोंसे वैखानस मुनियोंने उस धर्मको पाया। वैखानस मुनियोंके निकटसे उस धर्मको चन्द्रमाने पाया, अन्तमें वह धर्म्म अन्तर्हित होगया। हे राजन्! जब ब्रह्माका दूसरा चाक्षुष जन्म हुआ, तब उन्होंने चन्द्रमाके निकट वह धर्म्म सुना था। हे महाराज! नारायणस्वरूप ब्रह्माने वह धर्म्म रुद्रको दिया था; अनन्तर जब सतयुगमें रुद्रने योग अवलम्बन किया था, उस समय उन्होंने बालखिल्य ऋषियोंको वह धर्म्म प्रदान किया, अनन्तर रुद्रदेवकी मायासे वह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। हे राजन्! जब ब्रह्माका महत् वाचिक नामक तीसरा जन्म हुआ था, उस समय यह धर्म्म स्वयं नारायणसे फिर प्रकट हुआ सुपर्णनाम ऋषिने पुरुषोत्तमके निकटसे उक्त धर्म्म प्राप्त किया था। उन्होंने उत्तम रीतिसे अनुष्ठित तपस्या, दम और नियमके द्वारा प्रतिदिन तीनवार इस उत्तम धर्मकी आवृत्ति की थी, इस ही निमित्त यह त्रिसौपर्णव्रत रूपसे कहा जाता है। यह दुश्चरव्रत ऋग्वेदके बीच पठित हुआ है। हे राजन्! जगत्प्राणवायुने इस सनातन धर्म्मको सुपर्णसे पाया था। ऐसा कहा जाता है। कि वायुसे विघसाशी ऋषियोंने उसे पाया, ऋषियोंसे यह उत्तम धर्म्म समुद्रको मिला; अनन्तर नारायणमें समाहित होकर यह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। हे पुरुषश्रेष्ठ! जब महात्मा ब्रह्माकी श्रवणज अर्थात् अनाहत ध्वनिरूपी उत्पत्ति हुई थी, उस समयमें जैसी घटना हुई उसे कहता हूं, सुनो।

देवोंकेदेव नारायण हरिने स्वयं जगत् उत्पन्न करनेकी इच्छा करके किसी पुरुषकी चिन्ता की। अनन्तर चिन्ता करते रहने पर उनके दोनों कानोंसे प्रजाकी सृष्टि करनेवाला पुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उस समय जगत्पति नारायणने उससे कहा, हे पुत्र! तुम मुख और पदसे समस्त प्रजा उत्पन्न करो। हे सुव्रत! मैं तुम्हारे बल, तेज और कल्याणका विधान करूंगा। तुम मुझसे सात्वत नामक धर्म्म ग्रहण करो और उस ही सात्वत धर्मसे उत्पन्न हुए सत्ययुगको विधिपूर्व्वक स्थापित करो। अनन्तर ब्रह्माने उस देवेश्वर हरिको नमस्कार करके उनसे रहस्य और संग्रहके सहित श्रेष्ठ धर्म्म ग्रहण किया। फिर उन्होंने अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माको आरण्यक उपनिषत्के सहित नारायण मुखसे उत्पन्न हुए धर्मका उपदेश करके तुम युग धर्म्मोंके कर्त्ता होगे, ऐसा कहकर निष्काम कर्म्म नामक तमोगुणसे अतीत अव्यक्त रूपसे जिस स्थानमें पहले स्थित थे, उस ही स्थान पर चले गये अनन्तर लोक पितामह वरदाता ब्रह्माने समस्त लोकोंको उत्पन्न किया, उस समय पहले शुभ सत्ययुग प्रवृत्त हुआ, उस युगमें सात्वत धर्म्म सब लोकोंमें व्याप्त होके स्थित रहा, जगत्स्रष्टा ब्रह्माने उस आद्य धर्मसे सर्व्वशक्तिमान देवेश्वर हरिकी पूजा की। अनन्तर सब लोकोंकी हितकामनासे धर्मकी प्रतिष्ठाके लिये उस समय ब्रह्माने वह धर्म्म स्वारोचिष मनुको पढ़ाया। हे राजन्! सर्व्वलोकपति स्वारोचिष मनुने अव्यग्र भावसे निज पुत्र शङ्खपदको उक्त धर्म्मका उपदेश दिया। हे भारत! शङ्खपदने भी अपने औरस पुत्र दिक्पाल सुवर्णाभको पढ़ाया। अनन्तर त्रेतायुग उपस्थित होनेपर फिर वह धर्म्म अन्तर्हित हुआ। हे महाराज! अनन्तर प्रजापतिके नासत्य जन्मके समय स्वयं

हरि अरविन्दलोचन देव नारायणने ब्रह्माके सम्मुख उक्त सात्वत धर्म्मको वर्णन किया था। हे राजन्! उनसे सनत्कुमारने प्रथम इसे अध्ययन किया। हे कुरुपुङ्गव! सत्ययुगके प्रारम्भमें प्रजापति वीरणने सनत्कुमारके निकट इस सात्वत धर्म्मको पढ़ा था। वीरणने इसे पढ़के रैभ्य मुनिको अध्ययन कराया; रैभ्यने पवित्र उत्तम व्रत करनेवाले मेधावी दिक्पाल धार्म्मिक कुक्षि नामक निज पुत्रको उक्त धर्म्म प्रदान किया था। अनन्तर नारायणके मुखसे उत्पन्न हुआ यह धर्म्म फिर अन्तर्हित हुआ। ब्रह्माके अण्डज जन्ममें नारायणके मुखसे प्रकट होके फिर यह धर्म्म हरियानि प्रजापतिके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुआ। ब्रह्माने विधिपूर्व्वक प्रयुक्त उस धर्म्मको ग्रहण किया। हे राजन्! अनन्तर उन्होंने उसे वर्हिषद नामक मुनियोंको पढ़ाया। वार्हिषद मुनियोंसे सामवेदके पारदर्शी जेष्ठ नामक प्रसिद्ध विप्रने इसे पाया था, इस ही लिये इसका नाम जेष्ठ सामव्रत हुआ है। जेष्ठसे अविकम्पन राजाके निकट यह धर्म्म संक्रान्त हुआ था। हे राजन्! अनन्तर फिर यह भगवान हरिका धर्म्म अन्तर्द्धान हुआ। हे महाराज! ब्रह्माका यह कमलसे सातवां जन्म हुआ है। इस बार युगके प्रारम्भमें हरिने लोक विधाता शुद्धसत्त्व प्रजापतिके निकट इस धर्म्मका वर्णन किया था। अनन्तर पितामहने पहले समयमें दक्षको यह धर्म्म उपदेश किया था। हे भारत! दक्षने अपने जेठ दौहित्र सावित्रीके अग्रज आदित्यको इसे प्रदान किया। उनसे विवस्वान इस धर्म्मको ग्रहण किया। अनन्तर त्रेतायुगके आरम्भमें विवस्वानने निज पुत्र वैवस्वत मनुको यह धर्म्म प्रदान किया, मनुने सब लोकोंको पालन करनेके निमित्त अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकुको यह धर्म्म अध्ययन कराया। हे महाराज! इक्ष्वाकुके द्वारा प्रचारित होकर यह धर्म्म सब लोकोंमें व्याप्त होकर स्थित है। कल्पान्तके समय फिर यह नारायणमें लीन होगा।

हे नृपोत्तम! यतियोंका जैसा धर्म्म है, वह पहले गीताके बीच संक्षिप्तविधिके अनुसार मैंने तुम्हारे समीप कहा है। हे राजन्! नारद मुनिने रहस्य और संग्रहके सहित इस धर्म्मको साक्षात् नारायणके समीप प्राप्त किया था। हे राजन्! इस ही प्रकार यह महान् धर्म्म आद्य नित्य है, यह भक्ति रहित मनुष्योंसे दुर्व्विज्ञेय और दुष्कर है; सात्त्वत मतावलम्बी मनुष्य इसे सदा धारण किया करते हैं। यह धर्म्म ज्ञानपूर्व्वक उत्तम रीतिसे प्रयुक्त कर्म्म तथा अहिंसा धर्म्मयुक्त इसका ज्ञान होनेसे जगदीश्वर हरि प्रसन्न होते हैं। वह कभी एकव्यूह, कभी दो व्यूह, कदापि तीन व्यूह और कभी चतुर्व्यूहसे विभक्त होकर दीख पड़ते हैं। हरि ही क्षेत्रज्ञ, निर्म्मम, निष्कल और पञ्चभूतोंके गुणोंको अतिक्रम करके सब प्राणियोंमें निवास करता है। हे महाराज! नारायण ही कान आदि पांचो इन्द्रियोंके परिचालक, मन अथवा अहङ्कार रूपसे प्रसिद्ध है। वह बुद्धिमान हरि ही सब लोकोंका सृष्टि कर्त्ता है, वही सब लोकोंका प्रवर्त्तक और अन्तर्य्यामी है। वही कर्त्ता है, वही कार्य्य तथा वही कारण है। हे महाराज! वह अविनाशी पुरुष जिस प्रकार इच्छा करे, उस ही भांति क्रीड़ा किया करता है। हे नृपसत्तम! यह मैंने गुरुकी कृपासे तुम्हारे समीपमें अपवित्र बुद्धिवाले पुरुषोंसे दुर्व्विज्ञेय निष्काम भक्तोंके धर्म्मको वर्णन किया। हे महाराज! निष्काम भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं। हे कुरुनन्दन! यदि वैसे अहिंसक आत्मज्ञ सब प्राणियोंके हितमें रत, निष्काम भक्तोंके द्वारा जगत् परिपूरित होता, तो सदा ही सत्ययुग वर्त्तमान रहता और समस्त काम्यकर्म्म नष्ट होजाते। हे नरनाथ! मेरे गुरु द्विजश्रेष्ठ धर्म्मज्ञ भगवान व्यासदेवने

ऋषियोंके निकट कृष्ण और भीष्मके सुनते रह-नेपर धर्मराजसे इस ही प्रकार धर्म विषय वर्णन किया था, इसके पहले महा तपस्वी नारदने यह धर्म विषय कहा था। नारायण-परायण भक्त लोग जिस स्थानमें गमन किया करते हैं, वह शुक्लवर्ण चन्द्रमा तुल्य प्रकाश-मान अच्युत देव ही परब्रह्म है।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! ज्ञानि-योंके द्वारा इस ही प्रकार अनेक भांतिसे धर्म निश्चित हुए थे, परन्तु अन्य ब्राह्मणोंने अनेक प्रकारके नियमोंमें स्थित होके किस कारणसे इस धर्मका आचरण नहीं किया।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे भरतवंश अव-तंस महाराज! जीवोंके बीच सात्विकी, राजसी और तामसी भेदसे तीन भांतिकी प्रकृति निर्म्मित हुई है। हे कुरुवंशधर पुरुष-प्रवर! देहयुक्त जीवोंके बीच सात्विक पुरुष श्रेष्ठ है, और वे ही मोक्षके हेतु निश्चय किये गये हैं। सात्विक, राजसिक और तामसिक पुरुषोंके बीच सात्विक मनुष्य ही ब्रह्म-वित्तम पुरुषको जान सकते हैं। मोक्ष नारायणनिष्ठ है, इसही लिये मुमुक्षु पुरुष सात्विक कहके प्रसिद्ध है। अत्यन्त भक्तियुक्त नारायण परायण पुरुष सदा पुरुषोत्तमका ध्यान करते हुए मनोवाञ्छित विषय प्राप्त करते है; जो सब मोक्ष धर्म अव-लम्बी मनीषि पुरुष यतिव्रत अवलम्बन करते हैं, हरि ही उन तृष्णा रहित पुरुषोंके योग-क्षेम विधान किया करते हैं। मधुसूदन कृपा पूर्व्वक जिसे जन्म मरण आदिक दुःखोंका पात्र अवलोकन करते है, वही मोक्ष विषयमें निश्चित तत्पर रहता है, और उसे ही सात्विक पुरुष जानना चाहिये। ऐकान्तिक भक्तोंसे सेवित धर्म सांख्ययोगके सहित समान है, इस ही लिये नारायणात्मक मोक्ष विषयमें सात्विक मनुष्य परम गति पाते है। जिस पुरुषके ऊपर नारायणकी कृपा दृष्टि होती है, वही प्रतिबुद्ध अर्थात् तत्त्व-ज्ञानसे युक्त हुआ करता है। हे महाराज! अपनी इच्छासे कोई तत्त्वज्ञानी नहीं होसकता, हे राजन्! राजसी और तामसी ये दोनों मिलीजुली अर्थात् दोषयुक्त प्रकृति कहके वर्णित हुई हैं। उस स्वरूपसे उत्पन्न हुए प्रवृत्ति लक्षणयुक्त पुरुषको और स्वयं नारायण अवलो-कन नहीं करते। रज और तमोगुणसे जिसका मानस परिप्लुत होता है, उन उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंको लोकपितामह ब्रह्मा प्रवृत्तिमार्गमें नियुक्त करते हैं। हे नृपोत्तम! देवता और ऋषि लोग सब भांतिसे सत्त्वस्थ हैं। जो लोग सूक्ष्म तत्त्वोंसे हीन हैं, उन्हें वैकारिक कहा जाता है।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! वैका-रिक पुरुष किस प्रकारसे पुरुषोत्तमको पाते है, आपने जैसा देखा हो और उन लोगोंको जिस प्रकारकी प्रवृत्ति होवे, उस ही विधिपू-र्व्वक वर्णन करिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! वैकारिक अहङ्कार अर्थात् पञ्चविंशति जीव अत्यन्त सूक्ष्म है, अर्थात् इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जाता, वह अनारोपित रूपयुक्त अधिष्ठान मात्र, अकार उकार और मकार, इन तीनों अक्षरोंसे संयुक्त तथा निष्क्रिय पुरुषको प्राप्त होता है। समस्त सांख्य, आत्मानात्म विवेक, चित्तवृत्ति निरोधरूप योग, जीव ब्रह्मके अभेद-पर तत्त्वमसि आदि वाक्यजनित आरण्यक वेद और भक्तिमार्गरूप पञ्चरात्र, ये सब एक होने-पर भी परस्परमें एक दूसरेके अङ्गस्वरूप हैं; इसलिये यही नारायणनिष्ठ ऐकान्तिक अर्थात् निष्काम भक्तोंका धर्म कहा जाता है। हे महा-राज! जैसे समुद्रसे उठके जल बरसता है और फिर समुद्रमें ही प्रवेश करता है, उसही प्रकार यह सब ज्ञानस्वरूप महासागर नारायणमें फिर प्रविष्ट हुआ करता है। हे कुरुनन्दन! यह मैंने तुम्हारे समीप शास्वत धर्मका वर्णन

किया है। हे भारत! यदि तुम समर्थ हो, तो विधिपूर्व्वक इस ही प्रकार धर्म्माचरण करो। महाभाग नारदने मेरे गुरुके निकट इस ही भांति गृहवासी काषाय वस्त्रधारी यतियोंकी ऐकान्तिकी गतिका विषय वर्णन किया था। व्यासदेवने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् धर्म्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके समीप इसे कहा था, उस ही गुरुदेवके द्वारा प्रचारित इस धर्म्मको मैंने तुम्हारे निकट वर्णन किया है। हे पार्थिव सत्तम! यह धर्म्म अत्यन्त दुष्कर है, तुम इसे सुनके जिस प्रकार मोहित हुए हो, दूसरे पुरुष भी इसे सुननेसे उस ही भांति मोहित हुआ करते हैं। हे महाराज! कृष्ण ही सब लोकोंका पालन करते और वही सबको मोहित किया करते हैं, वही सबके संहार करनेवाले और कारण स्वरूप हैं।

३४८ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मर्षि! सांख्ययोग, पञ्चरात्र और वेदके आरण्यक भाग ये सब ज्ञानकाण्ड लोकोंमें प्रचारित हैं। हे मुनि! ये सब ज्ञानकाण्ड एकनिष्ठ हैं, अथवा पृथक्निष्ठ हैं? मैं इसे ही पूछता हूं, आप विधिपूर्व्वक इस ही वृत्तान्तका वर्णन कीजिये।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, सत्यवतीने द्वीपके बीच आत्मयोग निबन्धनसे पराशरके द्वारा अत्यन्त उदार जिस परम उत्कृष्ट ब्रह्मपुत्रको प्रसव किया था, उस अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश करनेवाले परम ऋषिको नमस्कार करता हूं। पण्डित लोग जिस पितामहके आदिभूत नारायणके अंश और हिरण्य गर्भके ऐश्वर्य्ययुक्त वेदोंके महानिनाद महर्षि द्वैपायन कहा करते हैं, उसे नारायणसे जनित करके छठवां अवतार जानना चाहिये। पहिले समयमें महा ऐश्वर्य्यशाली उदारस्वभाव तेजस्वी नारायणने वेदोंके महानिनाद पुराण जन्म रहित उस महानुभाव व्यासदेवको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया।

महाराज जनमेजय बोले, हे द्विज-सत्तम! पहिले आपने ही व्यासदेवकी उत्पत्तिका विषय कहा था, कि वसिष्ठके पुत्र शक्ति, शक्तिके पुत्र पराशर और पराशरके पुत्र कृष्ण द्वैपायन मुनि हैं। अब आप फिर उन्हें नारायणका पुत्र कहते हैं, इसलिये अत्यन्त तेजस्वी व्यासदेवका क्या वह पहला जन्म है? हे महा बुद्धिमान्! व्यासदेवकी जिस प्रकार नारायणसे उत्पत्ति हुई थी, उसे आप मेरे समीप वर्णन कीजिये।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, हे महाराज! समस्त वेदार्थ जाननेकी इच्छासे जब धर्म्मिष्ठ तपस्या करनेमें निष्ठावान तपोनिधि मेरे गुरुने हिम गिरिपर्व्वतकी शिखरपर निवास किया था, उस समय उस धीमान ऋषिके भारत ख्यान बनाके तपसे श्रान्त होनेपर हम लोगोंने उनकी सेवा की थी। सुमन्त, जैमिनी, दृढ़व्रती पैल और मैं, हम चारों उनके शिष्य हैं, और व्यासदेवके पुत्र शुकदेव पांचवें थे, इन्हीं पांचों प्रधान शिष्योंसे व्यासदेव सदा घिरे हुए हिमालय पहाड़पर भूतोंसे घिरे हुए भूतपति महादेवकी भांति विराजते थे। हम लोग अङ्गोंके सहित सब वेदोंकी आवृत्ति करते और भारतके अर्थको सब प्रकारसे विचारते हुए उस एक चित्त दान्त गुरुकी स्थिर होकर सेवा करते थे। अनन्तर किसी कथा प्रसङ्गसे हम लोगोंने उस द्विजवरको वेदार्थ भारतके अर्थ और नारायणसे उनके उत्पन्न होनेका वृत्तान्त पूछा, तत्त्ववित् व्यासदेवने पहले वेदार्थ और भारतका अर्थ कहके नारायणसे अपनी उत्पत्तिका पूर्व वृत्तान्त कहने लगे।

व्यासदेव बोले, हे विप्रगण! पहिले समयसे प्रकट हुआ यह ऋषि प्रणीत उत्तम आख्यान जो कि मुझे तपस्याके सहारे मालूम हुआ है, उसे कहता हूं सुनो। प्रजापति ब्रह्माके कम-

कही यह बातश्रां जैसा हुआ है, उस समय प्रजा उत्पन्न करनेके लिये शुभाशुभ कर्म्मोंसे रहित अत्यन्त तेजस्वी महायोगी नारायणके नाभि कमलसे पहले ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माके उत्पन्न होनेपर नारायण उनसे बोले, हे ब्रह्मन्! तुम प्रजा उत्पन्न करनेको शक्तिसे संयुक्त होकर मेरे नाभि कमलसे उत्पन्न हुए हो; इसलिये जड़ और चैतन्य विविध प्रजाकी सृष्टि करो। ब्रह्माने नारायणका ऐसा वचन सुनके विमुख हुआ तथा चिन्तासे व्याकुल होकर वरदाता ईश्वर तेजस्वी हरिको प्रणाम करके बोले, हे देवेश! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूं, प्रजाको उत्पन्न करनेमें मेरी क्या सामर्थ है। हे देव! मैं बुद्धिमान नहीं हूं, इसलिये इसके अनन्तर जैसा करना हो, तुम उसका विधान करो। अनन्तर बुद्धिमत्प्रवर देवेश्वर भगवान प्रजापति ब्रह्माका ऐसा वचन सुनके उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होकर विचार करने लगे। भगवानके चिन्ता करते रहनेपर मूर्त्तिमयी बुद्धि सर्व्व ऐश्वर्य्यशाली नारायणके निकट प्रकट हुई। उस समय अविनाशी नारायणने उस ऐश्वर्य्य योग अवलम्बन करनेवाली गतिशालिनी सती बुद्धिसे यह वचन बोले, कि तुम लोक सृष्टि सिद्ध करनेके लिये प्रजापति ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रवेश करो। अनन्तर ईश्वरकी आज्ञासे बुद्धि शीघ्र ही ब्रह्माके अन्तःकरणमें प्रविष्ट हुई, जब नारायणने ब्रह्माको बुद्धियुक्त देखा, तब फिर प्रकट होके उनसे कहा, हे ब्रह्मन्! इन सब विविध प्रजासमूहको उत्पन्न करो। उस समय ब्रह्माने उनकी आज्ञाको माथेपर चढ़ाया; भगवान ऐसी ही आज्ञा देकर उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये और मुहूर्त्तकालके बीच देव नामक निज स्थानमें गमन किया। वहां पूर्व्वप्रकृतिको प्राप्त होकर एक भावसे निवास करने लगे; उस समय उनमें अन्य प्रकारकी बुद्धि उत्पन्न हुई। इधर परमेष्ठी प्रजापतिके द्वारा ये सब प्रजा उत्पन्न हुई। यह तपस्विनी वसुमती दैत्य, दानव, गन्धर्व्व और राक्षसोंसे परिपूरित होनेसे उनके बोझसे आक्रान्त हुई। पृथ्वीमण्डलपर बहुतेरे दैत्य, दानव और राक्षस लोग बलवान होंगे और वे लोग तपस्या करके उत्तम वर पावेंगे, वे सब वरके अभिमानसे मत्त होकर अवश्य ही देवताओं और तपोधन ऋषियोंके कार्य्यमें बाधा करेंगे, उस समय पृथ्वीका भार उतारना मेरा न्यायकार्य्य होगा। अनन्तर पृथ्वीपर विधिपूर्व्वक अनेक प्रकारके अवतारोंके सहारे पापाचारियोंके निग्रह और साधुओंको पालन करनेसे दुःखिनी पृथ्वी आनन्दित होगी। मैं पातालमें भोगीरूपसे इस पृथ्वीको धारण कर रहा हूं, मैंने इसे धारण किया है, इसहीसे यह स्थावर जङ्गमात्मक निखिल जगतको धारण करती है। इसलिये मैं अवतार लेके इसका परित्राण करूंगा। भगवान मधुसूदनने इस ही प्रकार चिन्ता करके उत्पत्तिविषयमें अनेक प्रकारके रूप धारण किये। वराह, नरसिंह, वामन और मनुष्य, इन सब मूर्त्तियोंके सहारे मैं दुर्व्विनीत दानवोंको मारूंगा।

अनन्तर जगत्स्रष्टा हरिने 'भो' शब्दके सहारे अनुनाद करते हुए वाक्य उच्चारण किया, उस वाक्यसे उत्पन्न होनेके कारण सारस्वत और अपान्तरतमा नामसे भूतभव्य भविष्यज्ञ सत्यवादी, दृढ़व्रती, वाक्यसम्भव सुत उत्पन्न हुआ। देवोंके देव अविनाशी हरि उस नतवदनवाले पुत्रको सम्बोधन करके बोले, हे मतिमत्प्रवर! तुम वेदाख्यान सुनोगे। हे मुनि! मैंने जैसी आज्ञा दी है, उसहीके अनुसार तुम मेरे वचनको प्रतिपालन करो। उसने भगवानकी आज्ञानुसार स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वेदोंका विभाग किया भगवान हरि उसके वैसे कर्म्म और उत्तम रीतिसे अनुष्ठान की हुई तपस्या तथा यम नियमसे अत्यन्त सन्तुष्ट हुए

और उससे बोले, हे पुत्र ! हे ब्रह्मन् ! तुम सब मन्वन्तरमें इस ही प्रकार अचल और अप्रधृष्य होकर सदा ऐसे ही वेदोंके प्रवर्त्तक होगे। फिर कलियुगके प्रारम्भमें भरतवंशमें कौरवनामक महानुभाव राजा भूमण्डलमें प्रसिद्ध होंगे।

हे द्विजसत्तम ! तुमसे उत्पन्न हुए उन कौरवोंका परस्पर नाश होनेके समय तुम्हारे अतिरिक्त सबका ही वंश नष्ट होगा। उस समय तुम तपस्या युक्त होकर वेदोंको अनेक प्रकारसे विभिन्न करोगे। कलियुगमें तुम कृष्णवर्ण होगे, तुम विविध धर्म्मोंके कर्त्ता और ज्ञान प्रवर्त्तक होगे और तपसे युक्त होनेपर भी रागरहित न होगे। महादेवकी कृपासे रागरहित परमात्मा तुम्हारे पुत्र होंगे मेरा यह वचन मिथ्या न होगा। ब्राह्मण लोग जिसे पितामहका मानसपुत्र वसिष्ठ कहते हैं, जो उत्तम बुद्धिसे युक्त ऋषि श्रेष्ठ और तपोनिधि हैं, जिसका तेज सूर्य्यको भी अतिक्रम करता है, उनके वंश पराशर नाम महाप्रभावयुक्त महर्षिका जन्म होगा वही वेदनिधि वरिष्ठ महातपस्वी तपोनिधि तुम्हारे पिता होंगे। तुम उस ही महर्षिके द्वारा कन्याके गर्भसे उत्पन्न होके उनके पुत्र कहे जाओगे। तुम भूत, भविष्यत् वर्त्तमान समस्त विषयोंके संशयको नष्ट करोगे। हे मुनि ! पहले जो सहस्रयुग व्यतीत हुए हैं तुम तपस्यायुक्त होकर मेरे द्वारा उन सब युगधर्म्मोंका अवलोकन करोगे और अनादिनिधन मेरा सदा ध्यान करनेसे फिर अनेक सहस्र चतुर्युगियोंको देखनेमें समर्थ होगे। मेरा यह वचन मिथ्या न होगा।

हे तात ! तुम अतुल-सत्त्वसे युक्त और अत्यन्त विख्यात् होगे। सूर्य्यपुत्र शनैश्चर्य्य समान मनु होंगे, उस मन्वन्तरमें तुम मेरी कृपासे निःसन्देह मन्वादिकोंमें अग्रगण्य होगे। लोकमें जो कुछ विद्यमान है, वह सब हमारा ही विचेष्टित कार्य्य है, दूसरे लोग अन्य भांति को चिन्ता करते हैं परन्तु मैं स्वच्छन्दतासे सबका विधान किया करता हूं। ईश्वरने अपान्तरतमा सारस्वत ऋषिसे ऐसा ही वचन कहके उन्हें प्रस्थान करनेके निमित्त आज्ञा दिया उस हरिमेधा देवकी कृपा तथा उनकी आज्ञाके अनुसार मैंने उस ही अपान्तरतमा नामसे जन्म ग्रहण किया था। पुनर्व्वार मैं वसिष्ठ कुलका आनन्द वर्द्धक होकर उत्पन्न होके विख्यात हुआ हूं। मेरा जो नारायणकी कृपासे उनहीके अंशसे जन्म हुआ था, उसे मैंने वर्णन किया। हे मतिमत्प्रवर ! पहिले समयमें मैंने परम समाधिके सहित अत्यन्त ही दारुण तपस्या की थी। हे शिष्यवृन्द ! तुम लोगोंने जो पूछा था, भक्तोंपर स्नेह वशसे मैंने यही अपना पूर्व्व जन्म और भविष्यत जन्मका समस्त वृत्तान्त तुम लोगोंके समीप कहा है। इसके अनन्तर और वृत्तान्त सुनो।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे राजर्षि ! सांख्ययोग, पञ्चरात्र, समस्त वेद और पाशुपत-मत, इन सब ज्ञान प्रतिपादक शास्त्रोंको अनेक मतोंसे संयुक्त जानना चाहिये। सांख्य शास्त्रके वक्ता कपिल मुनि हैं, वह परमर्षि रूपसे वर्णित हुए हैं, प्राचीन हिरण्यगर्भ योगशास्त्रको जाननेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अपान्तरतमा ऋषि वेदाचार्य्य कहके वर्णित हुए हैं, इस लोकमें कोई कोई उन्हें प्राचीनगर्भ ऋषि कहा करते हैं। ब्रह्माके पुत्र उमापति, भूतनाथ, श्रीकण्ठ शिवने सावधान होकर यह पाशुपत ज्ञान-शास्त्र कहा है। हे नृपवर ! भगवान स्वयं समस्त पञ्चरात्रके जाननेवाले हैं, इन सब शास्त्रोंके बीच यही दीख पड़ता है, कि आगम और अनुभवके अनुसार सब ऐश्वर्य्योंसे युक्त परमात्मा ही सब शास्त्रोंका परम तात्पर्य्य और विषयीभूत है। हे नरनाथ ! मोहसे छिपे हुए मनुष्य लोग नारायणको इस प्रकार नहीं जान सकते। शास्त्र बनानेवाले

मनीषियोंने उस नारायण ऋषिको ही शास्त्रोंका तात्पर्य्य कहा है, शास्त्रोंका प्रतिपाद्य दूसरा कोई भी नहीं है, इसे मैं भी स्वीकार करता हूं। पुरुषोंमें निःसन्देह नारायण सदा निवास कर रहा है, और संशय करनेवाले कुतर्की मनुष्योंमें वह स्थिति नहीं करता। हे महाराज! जो लोग पञ्चरात्रके जाननेवाले, क्रम-परायण और निष्काम धर्म्ममें निष्ठावान् हैं, वेही नारायणमें प्रवेश किया करते हैं। हे राजन्! सांख्य योगशास्त्र और निखिल वेद-श्रुति प्रतिपादनका हेतु आदि अन्तसे रहित हैं, इस होसे सनातन कहाता है, समस्त ऋषि-योंके द्वारा ऐसा ही निरूपित हुआ है, कि पुराण पुरुष नारायण ही यह दृश्यमान समस्त जगत्‌रूप है। वेद विहित जो कुछ शुभ अथवा अशुभ कर्म्म सब लोकोंमें अर्थात् द्युलोक, भूलोक, अन्तरीक्ष और जलके बीच प्रवर्त्तित होते हैं, उन्हें यह जानना चाहिये, कि ये सब उसही परम ऋषि नारायणसे प्रवर्त्तित हुए हैं।

३४८ अध्याय समाप्त।

महाराज जनमेजय बोले, हे ब्रह्मन्! पुरुष अनेक अथवा एक ही है; श्रेष्ठ पुरुष कौन है और उसकी योनि कौनसी है?

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, हे कुरुकुलधुर-न्धर! सांख्य और योगशास्त्रको विचार करके देखनेसे व्यवहारके समय अनेक पुरुष दीखते हैं, उक्त मतावलम्बी पुरुष एक पुरुषवादको अङ्गीकार नहीं करते। अनेक पुरुषोंकी जिस प्रकार एक योनि कही जाती है और विश्वमय एक पुरुष जिस भांतिसे गुणाधिक होता है, उस विषयके कहनेके पहिले मैं आत्मातत्त्वके जाननेवाले, तपस्वी, दांत, वन्दनीय निज गुरु महर्षि व्यासदेवको नमस्कार करके उसको व्याख्या करता हूं। हे महाराज! यह पुरुष-सूक्त समस्त वेदोंके बीच सत्य, परम सत्य ऋषि-श्रेष्ठ व्यासदेव मुनिके द्वारा चिन्तितरूपसे विख्यात् है। हे भारत! कपिल आदि ऋषि-योंने अध्यात्म योगके सहारे सामान्य और विशेष विधिके अनुसार बहुतेरे शास्त्रोंका वर्णन किया है। व्यासदेवने जो संक्षेपसे एक पुरुष वाद कहा है, मैं उसी अमित तेजस्वी ऋषिकी कृपासे उसे ही तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। हे नरनाथ! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्माके सहित महादेवके सम्वादयुक्त यह पुराना इति-हास कहा करते हैं।

हे महाराज! क्षीरसागरके बीच सुवर्ण समान प्रभासे युक्त वैजयन्त नाम विख्यात एक उत्तम पर्व्वत है, प्रजापति ब्रह्मा वैराजस्थानसे नित्य वहांपर आके एकान्तमें अध्यात्मगतिका विचार करते हुए उस पहाड़ पर निवास करते हैं। एक बार जब बुद्धिमान ब्रह्मा वहांपर बैठे थे, उस ही समय उनके ललाटसे प्रकट हुए महायोगी तीन नेत्रवाले शिव आकाशमार्गसे इच्छापूर्वक उस स्थानपर आके उपस्थित हुए। उन्होंने शीघ्र ही आकाशसे उस पहाड़की शिखरपर प्रजापति ब्रह्माके अगाड़ी आके उप-स्थित और प्रसन्न होके उनके दोनों चरणोंकी वन्दना की। चरणपर गिरते हुए देखकर उस समय अकेले भगवान प्रजापतिने उन्हें बायें हाथसे उठाया और बहुत समयके अनन्तर आये हुए पुत्रसे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, हे महाबली पुत्र! तुमने सुखसे आगमन किया है न; भाग्यसे ही तुम मेरे समीप आये हो, तुम्हारा वेदाध्ययन और तपस्या कुशलपूर्व्वक होती है न? तुम सदा उग्रतपस्या किया करते हो, इस ही निमित्त बार बार पूंछता हूं।

महादेव बोले, हे भगवन्! आपकी कृपासे मेरे स्वाध्याय, तपस्या तथा समस्त जगत्‌का मङ्गल है, बहुत समय व्यतीत हुआ कि मैंने

कैलासभवनमें आपका दर्शन किया था, इस ही निमित्त आपसे चरणसेवित इस पर्व्वतपर आया हूं; आपके इस अत्यन्त निर्जन स्थानमें आगमन करनेसे मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न हुआ है। हे भगवन्! इस निर्जन स्थानमें आनेका कारण सामान्य होगा, वैसा भी मुझे नहीं मालूम होता है। परन्तु आपका स्थान अत्यन्त श्रेष्ठ, भूख प्याससे रहित अत्यन्त तेजस्वी ऋषियों और सुरासुरोंसे अध्युषित है, गन्धर्व्व और अप्सराओंसे सदा निषेवित है, इसलिये वैसे स्थानको परित्याग करके किस लिये आप अकेले इस पर्व्वतपर आये हैं। ब्रह्मा बोले, मैं इस वैजन्तपर्व्वतपर सदा निवास करता हूं, इस स्थानपर एकान्तचित्तसे विराटपुरुषका ध्यान किया करता हूं।

महादेव बोले, हे ब्रह्मन्! आपने स्वयम्भु होकर अनेक पुरुषोंको उत्पन्न किया है और दूसरी अनेक प्रकारकी सृष्टि होती हैं; परन्तु विराट पुरुष एकही है; इसलिये आप एकमात्र जिस पुरुषोत्तमका ध्यान करते हैं; वह कौन है? आप मेरे इस सन्देहके विषयको वर्णन करिये; इसमें मुझे अत्यन्त कौतूहल उत्पन्न होरहा है।

ब्रह्मा बोले, हे पुत्र! तुमने जिन समस्त पुरुषोंका विषय कहा है, वे अनेक हैं; और जिसका मैं ध्यान करता हूं, वह इन सबको अतिक्रम करके स्थित है, इस ही निमित्त दृष्टिगोचर नहीं है वह एकमात्र पुरुषही समस्त पुरुषोंका निवास स्थान है, और वही अनेक पुरुषोंकी योनि कहके वर्णित हुआ करता है। उस विश्वव्यापी कारण स्वरूप सूत्रात्मा सनातन पुरुषमें निर्गुण पुरुष प्रवेश किया करते हैं।

३५० अध्याय समाप्त।

ब्रह्मा बोले, हे पुत्र! वह पुरुष पूर्णत्वके कारण जिस प्रकारसे पुरुष शब्द वाच्य है, आदि अन्तसे रहित होनेसे शाश्वत है, अपरिणामित होनेसे अव्यय कहाता है; अवयव रहित है, इस ही निमित्त अक्षर कहा जाता है, वचन और मनके अगोचर होनेसे अप्रमेय है, तथा सबके उपादान कारण होनेसे जिस प्रकार सर्व्वगरूपसे वर्णित होता है, उसे सुनो। हे सत्तम! तुम, मैं अथवा दूसरे पुरुष उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं हैं, ज्ञान इन्द्रियके सहित निर्गुण अथवा शम दम आदिसे रहित निर्गुण मूढ़ पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकते। वह विश्वात्मा केवल ज्ञानसे देखा जाता है अर्थात् चिन्मात्रके सहारे ही उस स्वयं प्रकाशका दर्शन किया जाता है। वह स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरसे रहित होनेपर भी सर्व्व शरीरमें निवास कर रहा है, और शरीरमें वास करने पर भी कर्म्मोंसे लिप्त नहीं होता। वही मेरी अन्तरात्मा, तुम्हारी अन्तरात्मा और दूसरे जो सब शरीर हैं, उन सबकी अन्तरात्मा है। वही सबका साक्षी है, कोई भी उसका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होता। वह विश्वमुख, विश्वभुज, विश्वपाद, विश्व-नयन और विश्व-नासिक है; वही अकेला स्वेच्छाचारी होकर सर्व्व शरीरोंमें सुख पूर्व्वक भ्रमण कर रहा है। वह योगात्मा क्षेत्र अर्थात् समस्त शरीर और शुभाशुभ बीजको जानता है, इसीसे क्षेत्रज्ञ नामसे वर्णित होता है। प्राणियोंके बीच उसकी अगति और गतिका विषय सांख्यविधि और योगके द्वारा कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है; उसकी गतिको मैं विचार रहा हूं, परन्तु उत्तम गतिको जान नहीं सका; उसकी अगति और गतिसे विद्यमान रहते भी यथार्थमें वह नहीं है; इस ही निमित्त वह जाना नहीं आता, आत्मामें गति है, इतना ही जानना होगा। वह एक और महान् है, अकेला वही पुरुषरूपसे वर्णित होता है, वह सनातन पुरुष ही महापुरुष शब्दसे प्रतिपादित है। एक ही अग्नि अनेक प्रकारसे प्रज्वलित होती है; सूर्य्य एक है, और तपस्याकी योनि एक ही है। एक ही वायु लोकमें अनेक प्रका-

रहे बहती है और समस्त जलको योनि महासागर एक ही है। विश्वरूप निर्गुण पुरुष एक है, उसहीमें सब प्राणी लीन होते हैं। गुणमय अर्थात् देहेन्द्रिय आदि अहंकारको छोड़के उसही निबन्धनसे शुभ अशुभ कार्य्योंको परित्याग करनेसे सत्य और मिथ्या अर्थात् जीवाख्य अक्षर तथा प्रधान अर्थात् भोक्ता और भोग्यको त्यागनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है। उस निर्गुणको मनके अगोचर सत्तामात्रके सूक्ष्मरूप अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण, वासुदेव-पर पर्य्याय अर्थात् बिराट, सूत्रात्मा, अन्तर्य्यामी और शुद्ध ब्रह्मरूप जानके जो लोग स्थूल सूक्ष्म प्रतिपालन क्रमसे नित्य समाधिका अनुष्ठान करते हैं, वेही अत्यन्त शान्तसाधक मनुष्य परम पुरुषको प्राप्त होते हैं। कोई कोई योग मतावलम्बी पण्डित लोग इस ही प्रकार योग मार्गके द्वारा परमात्माको जाननेकी इच्छा करते हैं। दूसरे ज्ञानचिन्तक अर्थात् सांख्यमत वाले मनीषी पुरुष प्रत्यगात्माको एकात्मा अर्थात् ब्रह्मके सहित अभिन्न समझते हैं। परमात्मा सदा ही निर्गुण है, उसे ही नारायण और सर्व्वात्मा जानना चाहिये; जैसे कमलका पत्ता जलसे लिप्त नहीं होता, वैसे ही वह भी कर्म्मफलसे लिप्त नहीं है। दूसरे जो सब कर्म्मात्मा जीव हैं, वेही बन्ध और मोक्षके द्वारा युक्त हुआ करते हैं, वेही पञ्चप्राण, मन, बुद्धि और दशों इन्द्रिय, इन सत्तरहोंके सहित संयुक्त होते हैं। इस ही प्रकार अनेक प्रकारके पुरुषोंका विषय तुम्हारे समीप विधिपूर्व्वक कहा गया, सोपाधिक आत्मा जीव कर्म्मभेदसे देवता, तिर्य्यक् मनुष्य आदि रूपसे अनेक प्रकार होता है। जो चैतन्य ज्योति सब लोकोंको प्रकाशक है, वही परम वेद्य, बोद्ध, बोधनीय, ईश्वर और जीव कहाता है; वही मन्ता और मन्तव्य है, वही भोक्ता और भोगनीय है, वही घ्राता और घ्रेय है, वही स्पर्शित और स्पर्शनीय है, वही द्रष्टा तथा द्रष्टव्य है; वही आविता और आवणीय है, वही ज्ञाता तथा ज्ञेय कहाता है, वही सगुण और निर्गुण है।

हे तात! पहले जो प्रधान नामसे वर्णित हुआ है, जो महत्तत्त्वोंकी योनि है, वह भी इस चैतन्य ज्योतिसे पृथक् नहीं है; क्यों कि वह नित्य अर्थात् नाशरहित, शाश्वत अर्थात् अनादि अव्यय अर्थात् अपरिणामी है। जो पहले ब्रह्माको प्रकट करके महत्तत्त्वोंको उत्पन्न करता है, ब्राह्मण लोग उसे ही अनिरुद्ध कहते हैं। लोकमें जो आशिर्युक्त उत्तम वैदिक कर्म्म हुआ करता है, उसे उसहीका कार्य्य जानना चाहिये। सब देवता साधु तथा शान्त मुनिलोग उसहीको यज्ञभाग प्रदान करके पूजा किया करते हैं। मैं प्रजासमूहका आदि प्रभु ब्रह्मा हूं, मैं उस ही देवसे उत्पन्न हुआ हूं, और तुम मुझसे उत्पन्न हुए हो। हे पुत्र! मुझसे ही स्थावर जङ्गममय जगत् और रहस्यके सहित सब वेद उत्पन्न हुए हैं; इसलिये जो मेरा पूजनीय है, वह स्थावर जङ्गमात्मक जीवगणोंका भी आराधनीय है सब प्राणियोंको उचित है, कि उसको पूजा करें। वह पुरुष वासुदेव आदिरूपसे चार प्रकारसे विभक्त होकर इच्छानुसार क्रीड़ा कर रहा है; परमात्मा इस ही भांति स्वरूपाभिन्न ज्ञानके सहारे जाना जाता है। हे पुत्र! तुमने जो पूछा था, मैंने उस ही सांख्यज्ञान और योगशास्त्रके मतके अनुसार निगूढ़ तत्त्वको तुम्हारे समीप वर्णन किया।

३५१ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! आपने मोक्षधर्म्मके सहारे पवित्र धर्म्म वर्णन किया, अब आश्रमवासियोंका श्रेष्ठ धर्म्म कहिये।

भीष्म बोले, हे भरतसत्तम! सब आश्रमोंके विहित धर्म्म ही स्वर्गसाधन, सत्यफल देनेवाले और बहुतेरे उत्तम भक्त यज्ञ तथा दान जिसका द्वारस्वरूप है, उस धर्म्मके कार्य्य

इस लोकमें विपाक नहीं होते । सब आश्रमोंमें जो स्वर्ग और मोक्ष है, उसके बीच जिसकी जिसमें रुचि होती है । वह उसहीके सहारे कृतकृत्य होकर दूसरे धर्म्मको अवलम्बन नहीं करता । हे राजन् ! पहले समयमें महर्षि नारद मुनिके सङ्ग सुरराज इन्द्रकी जो वार्त्ता हुई थी, उसे मैं कहता हूं, तुम सुनो । हे महाराज ! तीनों लोकोंमें विख्यात सिद्ध महर्षि नारद मुनिने अव्याहत गतिवाली वायुकी भांति क्रमसे सब लोकोंमें भ्रमण किया । अनन्तर वह किसी समय महा धनुर्धर देवराज इन्द्रके भवनमें गये । वहां जाके इन्द्रसे सत्कारयुक्त होके उनके निकट बैठ गये, उनके बैठने और विश्राम करनेपर शचिपति इन्द्रने उनसे पूछा, हे पापरहित महर्षि ! आपने कौनसा आश्चर्य्ययुक्त विषय देखा है, जब आप सिद्ध होके कौतूहलके लिये साक्षीकी भांति सदा सचराचर तीनों लोकोंके बीच भ्रमण किया करते हैं, तब लोकके बीच कुछ भी आपसे छिपा नहीं है, इससे आपके द्वारा जो कुछ श्रुत, अनुभूत अथवा दृष्ट विषय हो, उसे मेरे समीप वर्णन करिये । हे महाराज ! वक्तृवर नारद मुनिने उस समय सुखसे निकटमें बैठे हुए इन्द्रसे जो विपुल कथा कही थी ; तथा द्विजसत्तम नारद मुनिने इन्द्रके पूछनेपर जिस प्रकार जिस कल्पमें उनसे जो कथा कही थी, उसे तुम मेरे समीप सुनो ।

३५२ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे नरश्रेष्ठ ! गङ्गाके दक्षिण किनारेपर महापद्मनामक उत्तम नगरके बीच अत्रिगोत्रमें प्रियदर्शन वा समाहित नाम कोई ब्राह्मण था, उसने वेदपथको जानके संशयको छेदन किया था । वह धर्म्ममें रत, क्रोधको जीतनेवाला, सदा तृप्त रहनेवाला और जितेन्द्रिय था । वह तपस्या तथा स्वाध्यायमें रत, सत्यवादी और सज्जनसम्मत था । वह न्यायसे प्राप्त हुए वित्तके द्वारा जीविका निर्वाह तथा वह स्वजनों सम्बन्धियोंसे युक्त, पुत्र स्त्री आदिसे सम्पन्न होकर उत्तम विख्यात महत् वंशमें श्रेष्ठ वृत्ति अवलम्बन करके निवास करता था । हे महाराज ! उसने अनेक पुत्रोंको देखकर बहुत सा कार्य्य अवलम्बन किया और कुलधर्म्मके सहारे धर्म्माचरण करनेमें यत्नवान हुए । अनन्तर उन्होंने वेदमें कहे हुए निजधर्म्म, शास्त्रोक्त धर्म्म और शिष्टोंके आचरित धर्म्म, इन तीन प्रकारके धर्म्मोंको मनही मन विचार करके क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा, मैंने क्या किया है और कौन धर्म्म मेरा परम अवलम्बन है, इसे ही विचारते विचारते दुःखित होने लगा और कुछभी निश्चय न करसका, वह परम धर्म्म अवलम्बन करके जब इस प्रकार क्लेशित हुआ, उस ही समय एक समाहित अतिथि ब्राह्मण उसके समीप उपस्थित हुआ ; उसने यथायोग्य अतिथिसत्कार करके उसे सम्मानित किया और अतिथिके विश्राम करके सुखपूर्वक बैठनेपर उससे यह वक्ष्यमाण वचन कहने लगा ।

३५३ अध्याय समाप्त ।

ब्राह्मण बोला, हे अनघ ! मैं तुम्हारे वचनकी कोमलतासे वश हुआ हूं, मैं कुछ कहता हूं मेरा वचन सुनो । हे विप्रवर ! मैंने पुत्रोत्पादन पर्य्यन्त गृहस्थ धर्म्म प्रतिपालन किया है, इस समय कौनसा परम धर्म्म अवलम्बन करूं ; मैं कौनसे मार्गका सहारा लूं ? मैंने आत्माका आसरा करके आत्मज्ञानके निमित्त अकेले ही निवास करनेकी इच्छा की है, विषयपाशमें बद्ध होकर किसी कर्म्मका करनेकी इच्छा वा अभिलाषा नहीं करता । मेरी गुणफलान्वित अवस्था जबसे व्यतीत हुई है, तभीसे मैं पारलौकिक पथको ग्रहण करनेकी इच्छा करता हूं । इस संसारके पार जानेकी आकांक्षा होनेसे मुझे ऐसी ही बुद्धि उत्पन्न हुई है, कि संसारसागरको तरनेमें समर्थ धर्म्ममयी नौका कहां पाऊंगा । देवता आदि जीव-

मानवोंको ही संयुज्यमान और पीड़ित सुनके तथा प्राणसमूहके ऊपर यमराजके ध्वजदण्डकी भांति रोग सन्ततिको प्रकाशमान देखकर मेरा मन विषयभोगमें अनुरक्त नहीं है, और परिव्राजकोंको दूसरेके गृहपर अन्न मांगते हुए देखकर यतिधर्म्ममें भी मेरा मन अनुरक्त नहीं होता। हे अतिथि! इसलिये तुम बुद्धिबलके सहारे धर्म्मके द्वारा मुझ डांवाडोल पुरुषको धर्म्ममें नियुक्त करो। भीष्म बोले, बुद्धिमान अतिथि उस धर्म्मभागी ब्राह्मणका वचन सुनके मधुर वचन कहने लगा।

अतिथि बोला, मैं भी इस विषयमें मुग्ध होरहा हूं, मेरी भी यही मनोकामना है; अनेक द्वार त्रिविष्टप प्राप्ति विषयमें मैं भलीभांति निश्चय नहीं कर सका। कोई कोई ब्राह्मण मोक्षकी प्रशंसा करते हैं, कोई यज्ञ फलको श्रेष्ठ कहा करते हैं, कोई वाणप्रस्थ आश्रमका अवलम्बन कर रहे हैं, कोई गृहस्थाश्रमको अवलम्बन करके निवास करते हैं, किसीने राजधर्म्मको अवलम्बन किया है, कोई पुरुष आत्मबलका सहारा करके निवास करते हैं, कोई कोई गुरुधर्म्म अवलम्बन करनेकी प्रशंसा किया करते हैं, कोई कोई पुरुष वाक्संयमको ही श्रेष्ठ कहा करते हैं। कोई कोई मनुष्य पितामाताकी सेवा करनेसे स्वर्गमें गये हैं, किसीने अहिंसा और किसीने सत्य वचन कहनेसे स्वर्ग प्राप्त किया है। कोई पुरुष सम्मुख संग्राममें मरकर सुर लोकवासी हुए हैं, किसीने उञ्छवृत्तिका अनुष्ठान करनेसे सिद्ध होकर स्वर्गमार्ग अवलम्बन किया है। कोई कोई बुद्धिमान मनुष्य वेदव्रत परायण पढ़नेमें अनुरक्त, प्रसन्नचित्त और जितेन्द्रिय होकर स्वर्गमें जाकर सुख भोग करते हैं। कितने ही पुरुषोंने सरलतायुक्त होनेसे भी स्वर्गमें गमन किया है। कोई कोई सरल स्वभाववाले मनुष्य अविनीत पुरुषोंके द्वारा मरके भी शुद्धचित्तसे नाकपृष्ट पर निवास करते हैं। जैसे वायुके सहारे बादल इधर उधर होजाते हैं, वैसे ही जगत्के बीच इसही प्रकार अनेक अनावृत धर्म्मोंके द्वारा हमारी भी बुद्धि पूर्णरूपसे भ्रान्तियुक्त होरही है।

२५४ अध्याय समाप्त।

अतिथि बोला, हे विप्र! मेरे गुरुने मुझे जैसा उपदेश दिया है, उसहीके अनुसार मैं तुमसे ज्योंका त्यों कहता हूं, तुम इस विषयको भलीभांति सुनो। पहले समयमें जिस स्थानमें धर्म्मचक्र प्रवर्त्तित हुआ था, उस नैमिष तीर्थमें गोमतीके तीर हस्तिना नामक एक नगर है। हे द्विजवर! उस स्थानमें सब देवताओंने यज्ञ किया था; जहांपर यज्ञ करके राजसत्तम मान्धाताने इन्द्रको अतिक्रम किया था। इस ही स्थानमें महात्मा पद्मनाभ नामक पद्म इस ही रूपसे विख्यात् महान् चक्षुःश्रवा महानाग वास करता है। हे द्विजश्रेष्ठ! वह कर्म्म, ज्ञान और उपासना इन तीनों भागोंमें स्थित रहके वचन, मन और कर्म्मसे प्राणियोंको प्रसन्न करता है; साम, भेद, दान और दण्डके सहारे चार प्रकारके विषमस्थ और सम प्रकारके नव ध्यान बलसे धारण कर रहा है। तुम उसके समीप जाके विधिपूर्वक मनोवाञ्छित विषय पूछ सकते हो, वह परम धर्म्मके मिथ्या प्रदर्शित न करेगा। वह नाग सबका आतिथ्य करता है, वह बुद्धिमान और शास्त्रोंका जाननेवाला है, वह उत्तम गुणोंसे युक्त और समस्त अभिप्सित-सम्पन्न है; वह स्वाभाविक ही जलके समान निर्म्मल है, सदा अध्ययनमें रत रहता है; तपस्या, इन्द्रिय निग्रह और अत्युत्तम चरित्रोंसे संयुक्त है। वह यज्ञ करनेवाला, दाता, क्षमाशील, सच्चरित्र, सत्यवादी, असूयारहित, शीलवान और संयतेन्द्रिय है, वह यज्ञसे शेष बचेहुए अन्नको भोजन करनेवाला, अनुकूल वचन कहनेवाला, हितैषी, विनयी

और श्रेष्ठ विषयोंमें कृतार्थ, कृतज्ञ, शत्रुतारहित, प्राणियोंके हितमें नियुक्त और गङ्गाके हृद जल स्वरूप पवित्र सद्वंशमें उत्पन्न हुआ है।

३५५ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, अत्यन्त भारसे युक्त मनुष्योंके बोझ उतरनेकी भांति मैंने आपका यह अत्यन्त धीरजमय उत्तम महत् वचन सुना, मार्गसे थके हुए पुरुषका सोना, स्थान रहित पुरुषको बैठनेका सहारा, प्यासेका जल, भूखोंका भोजन, अतिथिको यथा समयसे अन्न प्राप्त होना, बूढ़े पुरुषको कालक्रमसे पुत्र लाभ और मनश्चीमन विचार हुए प्रीतियुक्त पुरुषका दर्शन होनेकी भांति आपके मुखसे निकले हुए वचन मुझे अत्यन्त ही आनन्दित कर रहे हैं। प्रज्ञानवचनके हेतु आपने मुझे जो उपदेश दिया, उसे मैं आकाशगत दृष्टिकी भांति देखता तथा विचारता हूं; आपने मुझसे जैसा कहा है, उसे मैं अवश्य ही करूंगा। हे साधु! आप यह रात्रि मेरे साथ व्यतीत करिये, सबेरे सुखसे उठनेके नित्य कर्म करनेके अनन्तर जिस स्थानमें जानेकी इच्छा होगी, वहां जाइयेगा। इस समय यह भगवान सूर्य्य तेजरहित तथा अस्त हो रहे हैं।

भीष्म बोले, हे शत्रुनाशन! अनन्तर उस अतिथिने ब्राह्मणके द्वारा आतिथिसत्कारसे युक्त होकर उसके सङ्ग वह रात्रि वहां ही बिताई। उस समय उन दोनोंके मोक्षधर्मविषयक वार्त्तालाप होते रहनेसे वह रात्रि दिनकी भांति परम सुखसे व्यतीत हुई। अनन्तर भोरके समय वह अतिथि निज कार्य्यसिद्धिकी अभिलाष करने वाले उस ब्राह्मणके द्वारा शक्तिके अनुसार पूजित होकर वहांसे प्रस्थान किया, इधर वह धर्मिष्ठ ब्राह्मण कर्त्तव्य कार्य्यका निश्चय करके स्वजनोंकी अनुमति लेकर सब समयमें एकान्तस्थ अवलम्बन करके अतिथिके उपदेशके अनुसार भुजगेन्द्रके स्थानमें जानेके निमित्त शीघ्र प्रस्थान किया।

३५६ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, वह ब्राह्मण क्रमसे विचित्र वन तीर्थों और समस्त तालाबोंको अतिक्रम करके जाते जाते किसी मुनिके समीप उपस्थित हुआ। ब्राह्मणने उस अतिथिके कहे हुए वचनके अनुसार उक्त मुनिसे विधिपूर्व्वक नागेन्द्रका वृत्तान्त पूछा और उनके निकट उस नागका समाचार सुनके जाने लगा। वह अर्थवित् ब्राह्मण यथारीतिसे नागके स्थानपर जाकर 'भो' शब्दकेद्वारा पुकारके यह वचन कहा, कि "मैं आया हूं।" पतिव्रता धर्म्मभीरु परम रूपवती नागपत्नीने उसका ऐसा वचन सुनकर उसे दर्शन दिया। धर्म्मवत्सला नागभार्य्याने उस आयेहुए ब्राह्मणकी विधिपूर्व्वक पूजा की और स्वागत प्रश्न करके बोली, कि "कहिये विप्र कौनसा कार्य्य करूं"?

ब्राह्मण बोला, हे भद्रे! मैं तुम्हारा उत्तम मधुर और पवित्र वचन सुननेसे विश्रामयुक्त तथा सत्कृत हुआ हूं, इस समय सर्व्वोत्तम नागेन्द्रदेवका दर्शन करनेकी अभिलाष करता हूं, उनका दर्शन मिलना ही मेरा परम कार्य्य और एक मात्र अभिलषित विषय है; इस ही निमित्त आज मैं पन्नगके स्थानपर आया हूं।

नागपत्नी बोली, हे विप्र! मेरा स्वामी महीना भरके लिये सूर्य्यका रथ खींचनेके निमित्त गया है, आप सात अथवा आठदिनके बीच उसका निःसन्देह दर्शन करेंगे। मेरे पतिके अन्य स्थानमें जानेका कारण आपको मालूम हुआ, परन्तु आपका और जो कुछ कार्य्य हो, उसके लिये आज्ञा करिये।

ब्राह्मण बोला, हे पतिव्रता देवि! मैं उस ही नागके दर्शनके निमित्त इस स्थानमें आया हूं, इसलिये उसके आनेकी प्रतीक्षा करते हुए इस महावनमें निवास करूंगा। तुम आनेपर इस स्थानमें मेरे आनेका समाचार अव्यग्रभावसे सुनाना और समयके अनुसार उन्हें मेरे समीप गमन करनेके लिये अनुरोध करना। मैं उक्त समयकी प्रतीक्षा करते हुए परिमित आहार

स्वीकार करके इस गोमती नदीके पवित्र स्थानमें वास करूंगा। अनन्तर वह ब्राह्मण नागभार्य्यासे बारबार ऐसा ही निवेदन करके गोमती नदीके पवित्र स्थानमें चला गया।

३५७ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे महाराज! अनन्तर उस तपस्वी ब्राह्मणके निराहार निवास करते रहने पर नागराजके बान्धव भुजङ्गवृन्द दुःखित हुए। उसके भाई, पुत्र, भार्य्या और सब बान्धव इकट्ठे होकर उस ब्राह्मणके निकट गये। उन्होंने उस निर्जन नदीके तटपर नियतव्रत, निराहारी, जपपरायण ब्राह्मणको बैठे हुए देखा। वे सब कोई उस अतिथि ब्राह्मणके निकट उपस्थित होकर बार बार उसकी पूजा करते हुए यह सन्देह रहित वचन बोले। हे धर्म्मवत्सल तपोधन! छःदिन आपको इस स्थान पर आये होगये, परन्तु भोजनके लिये आपने कुछ भी न कहा। आप हमारे समीप आये हैं, हम लोग भी आपके निकट उपस्थित हैं; अतिथिका सत्कार करना हमारा कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि हम सब कोई उस नागेन्द्रके कुटुम्ब हैं। हे द्विजसत्तम! फल, मूल, पत्र अथवा दूध वा आहारके निमित्त तुम्हें अन्न भोजन करना उचित बोध होता है। तुम्हारे आहार परित्याग करके इस वनमें निवास करनेसे धर्म्म-सङ्कट होनेके कारण ये सब बालक और बूढ़े पीड़ित होरहे हैं। हमारे वंशमें कोई ब्रह्म-हत्या करनेवाला पुत्र उत्पन्न अथवा मृत नहीं हुआ और देवता अतिथि तथा बान्धवोंके भूखे रहनेपर किसीने पहले कभी भोजन नहीं किया।

ब्राह्मण बोला, तुम लोगोंके उपदेशके सहारे ही मेरा आहार हुआ, मैं नागके आगमनके निमित्त आठ रात्रिकी उपेक्षा करता हूं, आठ रात्रिके अनन्तर यदि पन्नगराज आगमन न करेंगे, तब मैं भोजन करूंगा, उस ही निमित्त यह व्रत धारण किया है, तुम लोग कुछ भी दुःख मत करो, जिस स्थानसे आये हो, वहां ही चले जाओ; मैंने नागके आगमनके लिये जो व्रत किया है, उसे भङ्ग करना तुम लोगोंको उचित नहीं है। हे नरनाथ! भुजङ्गवृन्द पुरोहितसे उस ब्राह्मणके द्वारा अनुज्ञात तथा अकृतकार्य्य होकर निज स्थानपर चले आये।

३५८ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, अनन्तर समय पूरा होनेपर नागने सूर्य्यकी आज्ञा पाके कृतकार्य्य होके निज स्थान पर आगमन किया। उसकी भार्य्या पांव धोनेको निकट आई तब नागने उससे पूछा, हे कल्याणि! हे सुश्रोणि! स्त्रीबुद्धिके कारण तुमने मेरे वियोगमें अकृतार्थ धर्म्मसे विमुक्त होकर पहलेकी भांति युक्तियुक्त विधिके अनुसार देवता और अतिथि पूजन कार्य्यमें शिथिलता तो नहीं की?

नागपत्नी बोली, शिष्योंकी गुरुसेवा, ब्राह्मणोंका वेदाध्ययन, सेवकोंका स्वामीकी आज्ञा प्रतिपालन करना, राजाका प्रजापालन, और इस लोकमें सब प्राणियोंके परित्राण करनेको ही क्षत्रधर्म्म कहा जाता है। वैश्योंका आतिथ्ययुक्त यज्ञ कार्य्यका निर्व्वाह करना और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वर्णोंकी सेवा करना शूद्रका कर्म्म है। हे नागेन्द्र! सब प्राणियोंका हितैषिता, नियताहारता और नित्य व्रताचरण विधिपूर्व्वक गृहस्थ धर्म्म कहके वर्णित हुआ है। इन्द्रियोंके धर्म्म सम्बन्धसे विशेष प्रकारका धर्म्म हुआ करता है, मैं कौन हूं, कहांसे आया हूं, मैं किसका हूं, और हमारा ही कौन है? मोक्षाश्रममें इस ही प्रकार ज्ञानका प्रयोजन होता है। हे नागराज! भार्य्याका पतिव्रत ही परम धर्म्म है, तुम्हारे उपदेशके अनुसार मैं उसे यथार्थ रूपसे जानती हूं, इसलिये धर्म्ममें रत तुम्हारे सहारे मैं धर्म्म जानकर किस प्रकार सत् पथको छोड़ूंगी

कुपथमें पांव रक्खूंगी। हे महाभाग ! देवताओंके सम्बन्धमें धर्म परित्यक्त नहीं हुआ और अति-थियोंके सत्कार विषयमें मैं आलस रहित होके सदा नियुक्त रहती हूं। आज सात आठ दिन हुआ, यहां पर एक ब्राह्मण आया है; उसने अपना प्रयोजन मुझसे नहीं कहा वह केवल तुम्हारे दर्शनकी अभिलाष करता है, वह संशि-तव्रती ब्राह्मण गोमतीके तटपर वेदकी आवृत्ति करतेहुए तुम्हारा दर्शनपानेके निमित्त बैठा है।

हे नागेन्द्र ! उस महाभाग ब्राह्मणने मुझे यह सत्य वचन कहा है, कि नागराजके आनेपर उन्हें तुम मेरे निकट भेजना। हे महाप्राज्ञ ! इसलिये यह वृत्तान्त सुनके उस स्थानपर तुम्हें जाना उचित है। हे दर्शनश्रव ! उस ब्राह्मणको दर्शनदेना तुम्हारा उचितकार्य्य मालूमहोता है।

३५६ अध्याय समाप्त।

नाग बोला, हे शुचिस्मिते ! तुमने ब्राह्मण रूपसे जिसे देखा है, वह कौन है? केवल मनुष्य जातिका ब्राह्मण है अथवा कोई देवता है? हे यशस्विनी ! मनुष्य होके कौन मुझे देखनेमें समर्थ होसकता है। और दर्शन कर-नेके निमित्त अभिलाषी होकर कौन इस प्रकार आज्ञासूचक वचन कह सकता है। हे भाविनि ! देवता असुर और महर्षियोंके बीच सुरभिगन्ध-वाहक बलवान् नागगण ही महावीर्य्यशाली, वन्दनीय और वरद हैं, मैं भी उन्हींका अनु-यायी हूं, मुझे यह निश्चय है, कि मैं मनुष्योंका निरीक्ष्य नहीं हूं।

नागपत्नी बोली, हे पवनाशन ! उसका जैसा रूप और सरलता है, उससे जाना जाता है, कि वह देवता नहीं है, वह भक्तिमान और अत्यन्त क्रुद्ध स्वभाववाला ब्राह्मण है। वह जलकी इच्छा करनेवाले चातककी भांति कार्य्यान्तरका अभिलाषी है, जैसे वर्षाप्रिय चातक-पक्षी बादलके बरसनेकी कामना करता है, वैसे ही वह तुम्हारे दर्शनकी आकांक्षा कर रहा है; तुम्हारे दर्शनके अतिरिक्त वह अन्य किसी विघ्नको नहीं मानता; समान वंशमें उत्पन्न होके कोई किसीकी उपासना नहीं करता। इसलिये सहज रोष परित्याग करके उसे दर्शन देना तुम्हारा उचित कार्य्य है। उसकी आशाको भङ्ग करके इस समय तुम्हें आत्माको पवित्र बनाना उचित नहीं है, जो लोग आशा करके निकट आया करते हैं, उन लोगोंके आंसूको न पोंछनेसे राजा हो अथवा राजपुत्र ही हो, उसे अवश्य ही भ्रूणहत्याके पापमें लिप्त होना पड़ता है।

मौनावलम्बनसे ज्ञान फलकी प्राप्ति होती है, दानके सहारे महत् यश और सत्य वचनके द्वारा इस लोकमें वाग्मित्वारलाभ करके मनुष्य परलोकमें पूजनीय हुआ करता है। भूमि दान करनेसे आश्रमवासी ऋषियोंके पासे योग्य स्थान मिलता है, न्याय विषयके प्रतिपादनसे अवश्य ही फल भोग हुआ करता है। अभि प्रेत अर्थसंश्लिष्ट आत्म हित कर कर्म करके कोई नरकमें नहीं पड़ता, धर्म जाननेवाले महात्मा पुरुष ऐसा ही वचन कहा करते हैं।

नाग बोला, हे पतिव्रते ! अभिमानके हेतुसे मुझमें अहंकार नहीं है, जाति-दोषसे पहले मैं महान् अहंकारपदसे मत्त था, परन्तु मेरा वह संकल्प जनित रोष इससमय तुम्हारे वचनरूप-रूप अग्निसे जलगया, हे साध्वि ! मैंने रोषवशसे अधिक तमोगुण दर्शन नहीं किया, भुजङ्गगण उस विषयका विशेष वक्तव्य कह सकते हैं।

देवराज इन्द्रके साथ द्वेष करनेवाला अत्यन्त प्रतापशाली रावण क्रोधके वशमें होकर युद्धमें रामचन्द्रके द्वारा मारा गया। अन्तःपुरमें स्थित बछड़े परशुरामके द्वारा हरण किये गये, उसे सुनके क्रूरस्वभाव तथा क्रोधी कार्त्त-वीर्य्यके सब पुत्र मारे गये। इन्द्रके समान पराक्रमी महाबलवान कार्त्तवीर्य्य भी क्रोधके वशमें होकर जमदग्निपुत्र परशुरामके हाथसे

आया गया। इसलिये तुम्हारा यह वचन सुनके मैंने तपस्यामें विघ्नकारी और कल्याणयुक्त कार्य्योंके बाधक क्रोधको निग्रह किया।

हे विशालनयनी! जब तुम मेरी अनपायिनी और गुणशालिनी भार्य्या हो, तब मैं अपनी भी विशेष रूपसे प्रशंसा करता हूं। अब मैं उस स्थानमें जाता हूं, जहांपर वह ब्राह्मण निवास करता है, तुमने सब प्रकारसे सारी कथा कही है, अब वह अतिथि ब्राह्मण निःसन्देह कृतकार्य्य होकर प्रस्थान करेगा।

३६० अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, नागराजने मनही मन उस ब्राह्मणके कार्य्यकी चिन्ता तथा विचार करते हुए उसके समीप गमन किया। हे महाराज! स्वभावसे ही धर्म्मवत्सल वह बुद्धिमान नागराज ब्राह्मणके निकट जाके यह मधुर वचन बोला।

हे क्षमाशील! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, तुम क्रोध प्रकाशित न करना। तुम किस निमित्त इस स्थानमें आये हो, तुम्हारा कौनसा प्रयोजन है। हे द्विज! मैं सम्मुख आके स्नेहपूर्व्वक तुमसे पूछता हूं, कि तुम मनुष्यरहित इस निर्ज्जन स्थानमें गोमतीके पवित्र तटपर किसकी उपासना वा आराधना करते हो।

ब्राह्मण बोला, मैं धर्म्माग्रगण्य द्विजश्रेष्ठ पद्मनाभ नागका दर्शन करनेके लिये इस स्थानमें आया हूं, उन्हींके समीप मेरा प्रयोजन है, उनके स्वजनोंके निकट मैंने यह वचन सुना है, कि वह यहांपर नहीं हैं, इतना वृत्तान्त सुनके मैं इस प्रकार उनके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूं, जैसे कृषक जल-वर्षाकी प्रतीक्षा करते हैं। मैं योगयुक्त और निराहारी रहके उस नागराजके अक्लेश और स्वस्ति होनेके लिये वेद-पाठ करता हूं।

नाग बोला, अहो! तुम क्या ही शुभ चरित्रयुक्त साधु और क्या ही सज्जन हो। हे महाभाग! तुम्हारे चरित्रकी कथा क्या कहूं, तुम मेरे ऊपर अत्यन्त ही स्नेहदृष्टि कर रहे हो। हे विप्रर्षि! मैं वही नाग हूं, तुम मुझे जैसा जानते हो, मैं वैसा ही हूं, तुम इच्छानुसार आज्ञा करो, मै तुम्हारा कौनसा प्रियकार्य्य साधन करूं। स्वजनोंके मुखसे तुम्हारा इस स्थानमें आना सुनकर मैं यहांपर स्वयं तुम्हें देखनेके लिये आया हूं। हे महाभाग विप्रवर! जब तुम इस स्थानमें आये हो, तो आज कृतकार्य्य होकेजाओगे, हे द्विजश्रेष्ठ! तुम विश्वासी होकर मुझे निज अभिलषित विषयके निमित्त आज्ञा करो। तुमने अपने विशेष गुणके सहारे मुझे क्रय किया है, क्योंकि तुमअपना हित परित्याग करके मेरे निमित्त शुभानुध्यायी हुए हो।

ब्राह्मण बोला, हे महाभाग भुजङ्गम! मैं तुम्हारे दर्शनका अभिलाषी होकर यहांपर आया हूं, मैं अर्थानभिज्ञ हूं, इसलिये तुमसे कोई विषय पूछनेकी इच्छा करता हूं। मैं आत्मा अर्थात् जीवका विश्रामस्थान अन्वेषण करते हुए आत्मस्थ अर्थात् समस्त विषयोंसे विरत होके चलचित्तके बीच वासार्थी महाप्राज्ञ आत्माकी उपासना करता हूं, मैं अनुरक्त वा विरक्त नहीं हूं। तुम यशपूरित गभस्तियुक्त चन्द्रकिरण सदृश स्पर्श सुखकर हृदयग्राही आत्म प्रकाशित निज गुणोंके सहारे विख्यात हुए हो। हे अनिलाशन! इसलिये मेरे अन्तःकरणमें जो प्रश्न उपस्थित हुआ है, उसका उत्तर देके तुम उस सन्देहको छेदन करो, इसके अनन्तर फिर मैं अपने प्रयोजनका विषय कहूंगा, वह तुम्हें सुनना उचित है।

३६१ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, तुम पर्य्यायक्रमसे सूर्य्यदेवका एक चक्र रथको खींचनेके निमित्त जाया करते हो, वहांपर यदि कोई आश्चर्य्यविषय दीख पड़ता हो तो उसे मेरे निकट वर्णन करो।

नाग बोला, भगवान् सूर्य्य अनेक आश्चर्य्योंके स्थान हैं, तीनों लोकोंमें स्थित सब प्राणी उन-

होते उत्पन्न होते हैं। जैसे पक्षीवृन्द इसकी शाखाके अवलम्बसे निवास करते हैं उस ही प्रकार उनकी सहस्र किरणोंके अवलम्बसे देवताओंके सहित सिद्ध और मुनिवृन्द निवास करते हैं; सूर्य्यकिरणके अवलम्बसे ही महान् वायु जिससे प्रकट होके आकाशमें चलती है, यहांपर इसकी अपेक्षा और आश्चर्य क्या होगा। हे विप्रर्षि! प्रजासमूहको हितकामनासे उसही वायुको पुरोहितादि रूपसे विभक्त करके जो वर्षाकालमें जल बरसाता है इससे बढ़के और आश्चर्य दूसरा क्या होगा? जिसके मण्डलके मध्यवर्त्ती आत्मा परम तेजसे प्रदीप्त होकर सब लोकोंको अवलोकन करता है, उससे बढ़के और आश्चर्य क्या होगा? जो आठ महीनेतक पवित्र किरणोंके सहारे आकर्षित जलको फिर कालक्रमसे बरसाता है, इससे बढ़के और आश्चर्य क्या होगा? उसके तेज विशेषमें स्वयं आत्मा प्रतिष्ठित है। जिसके कारण चराचरोंसे युक्त पृथ्वीने बीज धारण किया है, जिसमें महाबाहु शाश्वत अनादि निधनदेव पुरुषोत्तम विराजमान है,—हे विप्र! इससे बढ़के और कौनसा आश्चर्य होगा? निर्म्मल आकाशमें अम्बर मणिके सहारे मैंने जिन सब आश्चर्य्योंका भी आश्चर्य देखा है, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो।

पहले समयमें मध्यान्हकालके बीच जब भगवान् सूर्य्य सब लोकोंको तपा रहे थे, उस समय आदित्यान्तर तुल्य तेजस्वी दूसरा कोई पुरुष दीख पड़ा। उसने निज तेज और कान्तिके सहारे समस्त लोकोंको प्रकाशित करके मानो आकाश मण्डलको विपाटन करते हुए आदित्य मण्डलकी ओर आने लगा। जिस अग्निमें आहुति की गई है, वैसी अग्नि ज्योतिकी निज तेजपुञ्ज तथा किरणोंके द्वारा आवरण करते हुए, वह अनिर्द्देश रूपसे द्वितीय सूर्य्यकी भांति आके उपस्थित हुआ, उसके आगमन करते ही भगवान् विवस्वानने उससे मिलनेके लिये दोनों हाथ उठाया। उसने भी उनकी पूजा करनेके लिये दाहिना हाथ प्रदान किया।

अनन्तर वह आकाशको भेद करके किरण मण्डलमें प्रविष्ट हुआ, वह तेज आदित्यके सङ्ग मिलकर क्षणभरमें एकत्रित हुआ। उस समय उन दोनोंके तेज एकत्रित होने पर हम लोगोंको सन्देह उत्पन्न हुआ, कि रथस्थ और आगन्तुक, इन दोनोंमेंसे सूर्य्य कौन है? जब हम लोगोंको ऐसा सन्देह उत्पन्न हुआ, तब हमने दिवाकरसे पूछा, कि आकाशको आक्रमण करते हुए दूसरे सूर्य्यकी भांति जिसने आगमन किया है, वह कौन है?

३६२ अध्याय समाप्त।

सूर्य्य बोले, ये वायुके मित्र अग्निदेव अथवा असुर तथा पन्नग नहीं हैं, इस मुनिने उञ्छवृत्ति व्रतसे सिद्ध होकर स्वर्गमें गमन किया है, यह फल मूलाहारी होके तथा सूखे पत्ते खाकर अन्तमें जल वायु पानके द्वारा जीवन धारण करनेवाले समाधिमें निष्ठावान ब्राह्मण थे। इस ब्राह्मणने वेदपाठसे भगवान भवको सब भांतिसे स्तुति की थी, इसहीके सहारे स्वर्ग-द्वारका कपाट खोलके इन्होंने स्वर्गधाममें गमन किया है। इसे किसी विषयमें आसक्ति वा अभिलाषा नहीं थी, यह सदा उञ्छवृत्ति और शिलाचार परिप्राप्त वृत्तिके सहारे जीविका निर्व्वाह करता था, यह ब्राह्मण सदा सब प्राणियोंके हितकर कार्य्योंमें रत रहता था। उत्तम गति पानेवाले प्राणियोंके ऊपर देवता, गन्धर्व्व, असुर और पन्नगगण प्रभुत्व करनेमें समर्थ नहीं हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! उस सूर्य्यमण्डलमें इसही प्रकार मैंने आश्चर्य अवलोकन किया था। हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य इच्छानुसार पूरी रीतिसे सिद्ध होकर उस सिद्धस्थानमें गमन करता है, वह सूर्य्यके सहित पृथ्वीपर परिभ्रमण करनेमें समर्थ होता है।

३६३ अध्याय समाप्त।

ब्राह्मण बोला, हे भुजङ्गम ! यह अवश्य आश्चर्य है, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, तुमने यथार्थ कथा कहके मुझे मार्ग दिखाया है, इससे मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ हूं । हे साधु भुजङ्ग-सत्तम ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं गमन करता हूं, सम्भाषण और नियोजनके सहारे मैं तुम्हारा स्मरणीय हुआ । नाग बोला, हे द्विज ! तुम अपने मनके कार्य्यको बिना कहे, इस समय कहां जाते हो ? तुम जिस निमित्त इस स्थानमें आये हो, उसे वर्णन करो । हे सुव्रत विप्रवर ! यह सब पृष्ठ अथवा अपृष्ठ विषय छोड़ कहांसे मेरे द्वारा वर्णित हुआ है, तुम मुझे आमन्त्रण करोगे, अनन्तर मेरी अनुमतिके अनुसार निज अभिलषित स्थानपर जानेमें समर्थ होगे । हे विप्रर्षि ! तुम प्रणयवान होकर इस स्थानमें मुझे अकेला देखकर वृक्षमूलमें समागत पुरुषकी भांति त्यागके चले जाओगे,—ऐसा करना तुम्हें उचित नहीं है, हे निष्पाप विप्रवर ! मैं तुम्हारे ऊपर भक्तिमान हूं, तुम भी निःसन्देह मुझमें अनुरक्त हो, ये सब लोग तुम्हारे ही अनुगत हैं, इसलिये मेरे समान मुझ मित्रके वर्तमान रहते तुम्हें क्या चिन्ता है ?

ब्राह्मण बोला, हे आत्मतत्त्वके जाननेवाले महाबुद्धिमान् भुजङ्गम ! देवता लोग सब प्रकार तुमसे यथार्थ रूपसे पृथक् नहीं हैं, जो तुम हो, वही मैं हूं और जो मैं हूं, वही तुम हो, तुमने जो आदित्यान्तर्वर्त्ती पुरुषकी कथा कही है ; तुम मैं और आकाश आदि समस्त भूत सदा उसमें ही निवास कर रहे हैं । हे नागराज ! मुझे पुण्य सञ्चय विषयमें सन्देह था । हे साधु ! अब मैं तुम्हारे उपदेशके अनुसार परमार्थसाधनके लिये उञ्छव्रतका आचरण करूंगा, यही मुझे श्रेष्ठ साधन निश्चय हुआ है, हे साधु ! अब मैं तुम्हें आमन्त्रण करता हूं, तुम्हारा कल्याण हो, हे भुजङ्गम ! अब मैं कृतार्थ हुआ ।

३६४ अध्याय समाप्त ।

भीष्म बोले, हे महाराज ! वह ब्राह्मण कृत निश्चय होकर नागराजको आमन्त्रण करके दीक्षाभिलाषी अर्थात् दीक्षा और प्रायश्चित्त आदि करके उञ्छव्रत करनेके निमित्त अभिलाषी होकर भृगुवंशमें उत्पन्न हुए च्यवनका आसरा ग्रहण किया । वह च्यवन मुनिके द्वारा संस्कार किये जाने पर धर्म्मनिष्ठावान हुआ । हे राजेन्द्र ! महाराज जनकके स्थानपर भार्गव च्यवन मुनिने महात्मा नारद मुनिके निकट यह पवित्र कथा कही थी ।

हे भरतश्रेष्ठ ! हे राजेन्द्र ! अक्लिष्टकर्म्मा नारद मुनिने देवराजके स्थानमें पूछे जानेपर इस कथाको कहा था । हे पृथ्वीनाथ ! पहले समयमें देवराज इन्द्रने सब श्रेष्ठ विप्रोंसे यह कल्याणदायिनी कथा कही थी । हे राजन् ! जिस समय परशुरामके सङ्ग मेरा अत्यन्त दारुण संग्राम हुआ था, उस समय वसुगणोंने इस कथाको मेरे समीप वर्णन किया था ।

हे धार्म्मिकप्रवर महाराज ! तुमने यथार्थ रीतिसे मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने तुम्हारे समीप उस पवित्र धर्म्मयुक्त उत्तम कथाको वर्णन किया है । हे भारत ! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, यह वही परम धर्म्म मैंने कहा है । धर्म्मार्थ विषयमें अनभिलाषी वीर पुरुषोंके जितेन्द्रिय होकर निष्काम कर्म्म करनेसे उनके लिये मोक्षका द्वार खुला रहता है ।

हे महाराज ! वह उञ्छव्रत साधनमें निश्चय करनेवाला ब्राह्मण नागराजकी आज्ञानुसार आत्मकृत्य निबाहते तथा यम नियमको सहन करते हुए उञ्छव्रत अवलम्बनके सहारे जीवन धारण करके वनमें प्रविष्ट हुआ था ।

३६५ अध्याय समाप्त ।

शान्ति पर्व्व-समाप्त ।

महाभारत।

अनुशासन पर्व्व।

नारायण, पुरुषोत्तम नर और सरस्वती देवीको प्रणाम करके जय शब्द उच्चारण करे।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! शोकसे पार होनेके उपाय स्वरूप सूक्ष्म शम अनेक तरहका रूप धरता है इसे आपने कहा है, परन्तु शान्तिका ऐसा प्रभाव सुनके भी स्वजनोंके वध-रूपी शोकसे मेरा अन्तःकरण शान्त नहीं होता है। हे पितामह! इस विषयमें आपने अनेक प्रकार शान्तिके विषय कहे हैं, अनेक प्रकार शम जाननेसे किये हुए पापोंकी शान्ति किस प्रकार हो? हे वीर! आपका शरीर वाणोंसे सब प्रकार परिपूरित और तीव्र घावोंसे युक्त देखकर निज पापोंको सोचके मैं सुख लाभ करनेमें असमर्थ होरहा हूं। हे पुरुषप्रवर! झरनेवाले पर्व्वतकी भांति आपके रुधिरसे परिपूरिताङ्गोंको देखकर मैं वर्षाकालके बाद-लकी भांति अवसन्न होता हूं। हे पितामह! इससे बढ़के और क्या कष्ट होगा, कि हमारे लिये शत्रुओंके विरुद्ध खड़े होनेपर मेरी औरसे अर्ज्जुन और शिखण्डी आदिसे आप इस अवस्थामें युक्त पड़े और दूसरे राजा लोग भी पुत्र तथा बान्धवोंके सहित मेरे ही लिये मारे जावें, उससे बढ़के और दुःख क्या है? हे राजन्! हम लोग तथा धृतराष्ट्रके पुत्र काल-क्रोधके वशमें होकर इस निन्दित कर्म्मके कर-नेसे कैसी गति पावेंगे। हे प्रजानाथ! दुर्य्योध-नके पक्षमें यह कल्याणकारी बोध होता है, कि वह आपको ऐसी अवस्थामें पड़े हुए नहीं देखता है। मैं आपका नाशक और सुहृदोंका वध करानेवाला होकर आपको पृथ्वीपर पड़े और दुःखित देखकर किसी प्रकार भी शान्ति लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता हूं। दुष्टात्मा कुलनाशक दुर्य्योधन युद्धमें सब सेना और सहो-दर भाइयोंके सहित, इस क्षत्रधर्म्ममें मरा है; वह दुष्टात्मा इस समय आपको पृथ्वीपर पड़े हुए नहीं देखता है, इसलिये मैं मरना ही कल्याणकारी समझता हूं, जीवनको इस समय उत्तम नहीं समझता। हे वीर! हे अच्युत! पहले यदि मैं भाइयोंके सहित मारा जाता, तो आपको इस प्रकार वाणोंसे पीड़ित और दुःखसे आर्त्त न देखता। इसलिये, हे नरनाथ! मुझे निश्चय बोध होता है, कि विधाताने हम लोगोंको पापकर्म्म करनेके ही लिये उत्पन्न किया है। हे राजन्! आप यदि मेरी प्रियकामना करते हो, तो उपदेश करिये कि जन्मान्तरमें किस प्रकार इस पापसे मुक्त हूंगा।

भीष्म बोले, हे महाभाग! काल, प्रारब्ध और ईश्वरके आधीनमें रहनेवाले आत्माको तुम किस लिये पाप पुण्यका कारण समझते हो? आत्माका अकर्त्तृत्व सूक्ष्म है, इससे वह मनसे प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये अतिन्द्रिय है, प्राचीन लोग इस विषयमें काल, व्याधा, सर्पके सहित मृत्यु और गौतमीके सम्वादयुक्त इस पुराने इतिहासको कहा करते हैं। हे

कुन्तीपुत्र ! गौतमी नामी एक शम गुणसे युक्त बूढ़ी ब्राह्मणीने निज पुत्रको सांपके काटनेसे चेत-रहित देखा। अनन्तर अर्जुन नाम किसी व्याधाने क्रोधके वशमें होकर उस सांपको तांतके जालसे बांधके गौतमीके समीप आकर कहा; हे महाभागे ! यह अधम सर्प तुम्हारे पुत्रका नाशक है, इसलिये किस प्रकार इसका वध करूं, सो शीघ्र कहो। इसको आगमें डालू अथवा टुकड़े टुकड़े करके काटूं ? यह बालकका नाशक पापात्मा बहुत समय तक जीवित रहनेके योग्य नहीं है।

गौतमी बोली, हे अर्जुन ! तुम इसे छोड़ दो तुम्हें बुद्धि नहीं है, तुम इसका वध न करना। कौन पुरुष प्राप्त होनेवाली शोक-चिन्ता न करके अपनेको पापभारसे नरकमें डाला करता है। इस लोकमें धर्मसे जो लोग हलके हुए हैं, वेही जलके बीच नौकाकी भांति दुःखरूपी समुद्रसे पार होते हैं, और जो लोग पापके द्वारा भारी हुए हैं, वे जलके बीच गिरे हुए शस्त्रकी भांति डूब जाते हैं। इसे मारनेसे मेरा मरा हुआ पुत्र जीवित न होगा, और इस सर्पके जीते रहनेसे ही तुम्हारी कौनसी बुराई होगी। इस प्राणयुक्त जीवको मारके कौन पुरुष अनन्त नरकमें जायगा।

व्याधा बोला, हे गुण और गुणोंको जाननेवाली देवी ! मैं जानता हूं, बड़े लोग सबकीही पीड़ासे पीड़ित हुआ करते हैं; परन्तु ये सब उपदेश अच्छे चङ्गेके लिये हैं, दुःखितके वास्ते नहीं हैं, इसलिये इस क्षुद्र सर्पको मैं मारता हूं। शमयुक्त मनुष्य "कालके सहारेही इस पुरुषका नाश हुआ है" ऐसा समझकर शोक नहीं करते और प्रति-कार करनेवाले पुरुष उस ही समय शत्रुको मारके शोक परित्याग किया करते हैं, दूसरे लोग नित्य मोह निबन्धनसे कल्याणका नाश होता है, जानके शोक प्रकाश करते हैं, इसलिये मेरे हाथसे इस सांपके मरतेही तुम शोक परित्याग करो।

गौतमी बोली, मेरे समान लोगोंको इस प्रकार पुत्र शोक जनित पीड़ा नहीं होती, क्यों कि सज्जन लोग सदा ही धर्मपरायण हुआ करते हैं; इस बालककी मृत्युका यही समय निर्द्दिष्ट था। इसलिये इस सांपके नाश करनेमें असमर्थ हूं। ब्राह्मणोंमें क्रोध न होना चाहिये क्यों कि कोपके कारण दुःख हुआ करता है। हे साधु ! इसलिये तुम मृदुता अवलम्बन करके क्षमा करो और इस सर्पको छोड़ दो।

व्याधा बोला, इसे मारनेसे परलोकको हितकर अविनश्वर गति प्राप्त होगी जैसे यज-मान पशुओंको मारके अपने सङ्ग पशुओंको भी स्वर्गमें लेजाता है, वैसे ही शूर पुरुषोंको बलि-दानसे बड़ाई मिलती है। इस निन्दित अपकारी शत्रुके मरनेसे जो लाभ होगा, वह क्या तुम्हारे सम्बन्धमें शाश्वत सत्य और कल्याणकारी नहीं है।

गौतमी बोली, शत्रुको पराजित करके मारनेसे क्या लाभ है। और शत्रुको अपने वशमें करके फिर उसे छोड़ देनेसे क्या इष्ट-सिद्धि नहीं होती ? हे प्रिय दर्शन ! इसलिये किस निमित्त इस सर्पके बिषयमें क्षमा न करूंगी और किस कारणसेही इसके छुड़ानेके निमित्त यत्नवती न हूंगी ?

व्याधा बोला, हे गौतमी ! इस एक जीवसे अनेक प्राणियोंकी रक्षा करनी उचित है और अनेकको त्यागके एकको रक्षा करनी योग्य नहीं है। धर्म जाननेवाले मनुष्य अपराधीको नष्ट किया करते हैं, इसलिये तुम इस पापी सांपका वध करो।

गौतमी बोली, हे व्याध ! इस सर्पके मार-नेसे मेरा पुत्र जीवित न होगा और इसका वध करनेसे और कुछ पुण्य भी नहीं दीखता है, इसलिये इस सर्पको जीते ही छोड़ दो।

व्याधा बोला, इन्द्रने वृत्रासुरको मारके श्रेष्ठ भाग लाभ किया है, शूलधारी महादेवने यज्ञ नष्ट करके यज्ञ-भाग पाया है, इसलिये देवता-

औके व्यवहारका आचरण करना योग्य है; शीघ्र ही इस सर्पको मार डालो, इसमें कुछ भी शङ्का मत करो।

भीष्म बोले, व्याधने सांपको मारनेके लिये गौतमीको बार बार उत्तेजित किया, परन्तु उस महाभागाने पापकार्य्यमें मन नहीं लगाया। अनन्तर पाश-पीड़ित सर्प लम्बी सांस छोड़के अत्यन्त कष्टसे धीरज धरके मृदुस्वरसे मनुष्य वाक्य बोलने लगा।

सर्प बोला, हे मूर्ख अर्जुन! इस विषयमें मेरा क्या दोष है। मैं पराधीन और परवश हूं, इसलिये मृत्युने ही मुझे प्रेरण किया है, मैंने मृत्युकी आज्ञानुसार इसे काटा है, कोप अथवा कामानुसार दंशन नहीं किया है, इसमें यदि पाप हो, तो जिसने मुझे प्रेरण किया है, वह पाप उसे ही लगेगा।

व्याध बोला, हे भुजङ्ग! तुम यदि दूसरेके वशमें होकर यह अशुभ कर्म्म किया करते हो, तौभी तुम इस विषयमें कारण हो, इसलिये तुम भी पापभागी हो। हे सर्प! जैसे मट्टीके पात्र बनानेमें दण्ड, चक्र, जल और सूत कारण रूपसे कल्पित होते हैं, वैसे ही तुमभी इस विषयमें कारण होनेसे पापभागी हो। हे पन्नग! पाप करनेवाले मेरे बध्य हैं, तुम भी पापी मालूम होते हो और इस विषयमें अपनेको ही कारण कहते हो।

सर्प बोला, दण्ड चक्र प्रभृतिकी भांति सब ही अस्वतन्त्र हैं, इसलिये मैं भी अवश हूं, इससे मेरा यह दोष तुम्हारे समीप युक्ति-सम्मत नहीं हो सकता, अथवा यदि तुम्हें ऐसा ही सम्मत हो, तो दण्डचक्र प्रभृति परस्परको प्रयोजक हो सकते हैं और परस्परकी प्रेरणावशसे कार्य्य कारणमें सन्देह हुआ करता है; यदि ऐसा ही माना जावे, तौभी मेरा दोष नहीं है, मैं बध करनेके योग्य अथवा पापी नहीं हूं, यदि तुम इसमें पाप होना समझते हो, तो समु-दायकोही पाप होसकता है, अर्थात् यदि चेतनत्व निबन्धनसे मेरा बध करना ही तुम्हें सम्मत है, तो एकमात्र बध-कार्य्यमें साक्षात् और परस्पर सम्बन्धसे अनेकोंको प्रयोजकता है, इसलिये विभागके अनुसार सबको ही पाप लगेगा, केवल मैं ही पापी नहीं हूं।

व्याध बोला, तुम यदि विनाश कार्य्यमें अपनेको कारण अथवा कर्त्ता नहीं समझते हो, तौभी इस विनाशके विषयमें साक्षात् सम्बन्धसे तुम ही कारण हो, इसलिये मेरे विचारमें तुम बध करनेके योग्य हो। हे भुजङ्ग! पाप कार्य्य करके भी यदि कर्त्ता अपनेको उससे लिप्त न समझे, तब तो इस विषयमें कोई भी कारण नहीं होसकता, इसलिये उपस्थित विषयमें तुम ही कर्त्ता हो, इसीसे बध्य मालूम होते हो, क्यों तुम बड़ीबोल बोलते हो?

सर्प बोला, कर्त्ताके रहनेपर कुठाराद्यमन आदि कार्य्यसे छेदन क्रिया हुआ करती है, और कर्त्ताके न रहनेपर भी वृक्षोंकी डालियोंका आपसमें सघर्षण होनेसे कार्य्यवशसे उस-हीसे अग्नि प्रगट होके बनको जला देती है; इसलिये कारणके रहने अथवा न रहने पर भी जैसे कार्य्यकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही इस तुल्य हेतुके स्थलमें मेरा कारणत्व विशेष रीतिसे विचारना चाहिये। हे व्याध! यदि मैं कारण अर्थात् प्रयोजक कर्त्तृरूपसे यथार्थमें ही तुम्हारे समीप युक्तिसम्मत होऊं, तो शाखाके प्रयोजक वायुकी भांति मेरा प्रयोजक दूसरा कोई कर्त्ता अवश्य है, इस जीवके नाश विषयमें वही पापी हो सकता है।

व्याध बोला, रे नीच बुद्धि अधम सर्प! तू जानकर इस बालकका प्राण-नाशरूपी अत्यन्त नृशंस कार्य्य करके बध्य हुआ है; बध्य होके भी बार बार बड़ी बात करता है।

सर्प बोला, हे व्याध! जैसे ऋत्विक् लोग यज्ञमें हुतकी आहुति देनेसे उसके फलभागी

नहीं होते, इस विषयके फल सम्बन्धमें मैं भी वैसा ही हूं।

भीष्म बोले, मृत्यु-प्रेरित सर्पके ऐसा कहते रहने पर मृत्यु स्वयं उस स्थानपर उपस्थित हुई और उस सर्पसे कहने लगी।

मृत्यु बोली, हे सर्प! मैंने कालके द्वारा प्रेरित होकर तुम्हें प्रेरण किया था, इसलिये तुम इस बालकके विनाश-विषयमें कारण नहीं हो, मैं भी इसके नाशका कारण नहीं हूं। हे सर्प! जैसे वायु बादलोंको इधर उधर कर देता है, वैसे ही मैं भी बादलकी भांति कालके वशमें हूं; जो सब सात्त्विक, राजसिक और तामसिक भाव हैं, वे सभी कालात्मक होकर प्राणिमात्रमें निवास करते हैं। हे भुजङ्ग! द्युलोक वा भूलोकमें जितने स्थावर जङ्गम जीव हैं, वे सभी कालात्मक हैं, इसलिये यह जगत् कालस्वरूप कहा जाता है; इस लोकमें प्रवृत्ति निवृत्ति अथवा जो कुछ प्राणियोंकी विकृति होती है, वह सब कालात्मकरूपसे वर्णित हुआ करता है, हे पन्नग! सूर्य्य, चन्द्रमा, विष्णु, जल, वायु, इन्द्र, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, मित्र, पर्जन्य, अदिति, नदी, समुद्र, ऐश्वर्य्य और अनैश्वर्य्य, ये सब ही कालके सहारे बार बार उत्पन्न और संहृत होते हैं। हे सर्प! ऐसा जानके भी तुम मुझे क्या दोषी समझते हो? यदि इसमें मुझे दोष लगे, तो तुम भी दोषी हो।

सर्प बोला, हे मृत्यु! मैं तुम्हें सदोष वा निर्दोष नहीं कहता हूं, मैं केवल तुम्हारे द्वारा प्रेरित हुआ हूं, इतना ही कहता हूं। यदि कालको दोष लगता हो अथवा उसमें दोष लगना अभिलषित न हो;—उस दोषकी परीक्षा करना मेरा कार्य्य नहीं है, क्यों कि उस विषयमें मैं अधिकारी नहीं हूं, इस दोषको निर्म्मोचन करना जैसे मेरा कर्त्तव्य है, वैसे ही इस विषयमें जिस प्रकार मृत्युका भी दोष न हो, वह भी मेरा प्रयोजन है।

भीष्म बोले, अनन्तर सर्प अर्ज्जुनसे बोला, हे व्याध! तुमने मृत्युका वचन सुना, अब मैं निरपराधी हूं, मुझे पाशबन्धनके द्वारा दुःखित करना तुम्हें उचित नहीं है।

व्याध बोला, हे भुजङ्ग! मैंने मृत्युका और तुम्हारा वचन सुना है, परन्तु इससे तुम्हारी निर्दोषिता सिद्ध नहीं होती है, मृत्यु और तुम इस बालकके विनाशविषयमें कारण हो, मैं तुम दोनोंको ही कारण समझता हूं, जो कारण नहीं है, उसे कारण नहीं कहता। साधुओंको दुःख देनेवाली क्रूर दुष्टात्मा मृत्युको धिक्कार है और पापके हेतु पापात्मा तुम्हें भी धिक्कार है; मैं तुम्हारा अवश्य वध करूंगा।

मृत्यु बोली, हम निर्द्दिष्ट कर्म्म करनेवाले परवश तथा कालके वशमें हैं, इसलिये यदि तुम पूरीरीतिसे विचार करोगे, तो हम लोगोंको दोषयुक्त न कह सकोगे।

व्याध बोला, हे मृत्यु! हे सर्प! यदि तुम दोनों ही कालके वशमें हो, तब हम लोगोंको परोपकारकके विषयमें हर्ष और अपकारीके विषयमें जिस प्रकार द्वेष उत्पन्न होता है, उसे स्पष्ट रूपसे प्रकट करो, मैं इसे जाननेकी इच्छा करता हूं।

मृत्यु बोली, इस जगत्के बीच प्राणियोंमें जो कुछ कार्य्य संघटित होते हैं, काल ही उन सबका प्रयोजक है। हे व्याध! कालकी प्रेरणानुसार जो सब कार्य्य हुआ करते हैं, उन्हें मैंने पहले ही कहा है, ईश्वरके वशमें रहनेवाला पुरुष सत् वा असत् कर्म्म करके स्तुतियुक्त अथवा निन्दनीय नहीं होता; इसलिये हम दोनों ही कालके वशमें होकर यथा निर्द्दिष्ट कार्य्य करते हैं। हे व्याध! इसलिये तुम हमलोगोंको किसी विषयमें दोषी नहीं कह सकते।

भीष्म बोले, अनन्तर उस धर्म्मार्थ संशयके समयमें काल स्वयं उपस्थित होकर सर्प, मृत्यु और अर्ज्जुन नामक व्याधसे यह वचन कहने लगा।

काल बोला, हे व्याध ! मृत्यु, मैं और सर्प, हम तीनों ही जीवोंकी मृत्युके विषयमें निष्पाप हैं, क्योंकि हम लोग केवल प्रयोजक मात्र हैं, हे अर्ज्जुन ! इस बालकने जैसा कर्म्म किया था, वह कर्म्म ही हम लोगोंका प्रयोजक है, इसके विनाशका कारण दूसरा कोई भी नहीं है, यह बालक निज कर्म्मवशसे मरा है इस पहले जो कर्म्म किया था, उसहीके द्वारा मृत्युको प्राप्त हुआ ; इसलिये कर्म्म ही इसके विनाशका कारण है, हम सब लोग कर्म्मके वशीभूत हैं, कर्म्मसे ही लोगोंको उत्तम गति मिलती है अर्थात् कर्म्म पुत्रकी भांति लोगोंका उद्धार करता है, कर्म्मफलके मिलनेसे ही लोगोंका पुण्य पाप जाना जाता है ; जैसे सब कर्म्म परस्परके प्रयोजक होते हैं, हम लोग भी वैसे ही हैं। जैसे कर्त्ता मट्टीके पिण्डसे जैसा इच्छा करता है, वैसा ही पात्र बनाता है, मनुष्य भी उस ही प्रकार अपने किये हुए कर्म्म फलको पाता है। जैसे छाया और धूपका सदा सम्बन्ध है, वैसे ही कर्म्म और कर्त्ता सदा ही आत्मकर्म्मोंके द्वारा सम्बन्धविशिष्ट हैं। इसलिये मैं, मृत्यु, सर्प, तुम अथवा बूढ़ी ब्राह्मणी, हम लोग कोई भी इस बालककी मृत्युके कारण नहीं हैं, बालक ही इस विषयमें कारण है। हे राजन् ! कालके ऐसा कहते रहनेपर 'सब लोग अपने कर्म्मसे ही स्वर्ग नरक भोग करते हैं' ब्राह्मणी गौतमी ऐसा निश्चय करके अर्ज्जुनसे कहने लगी।

गौतमी बोली, काल, सर्प और मृत्यु, इनमेंसे कोई भी इस बालकके मरनेके विषयमें कारण नहीं हैं, इस बालकने निज कर्म्मोंके द्वारा ही मृत्यु लाभ की है। मैंने भी पूर्व शोकप्रद कर्म्म किया था, जिससे कि मेरा यह पुत्र पञ्चत्वको प्राप्त हुआ है ; इस समय काल मृत्यु गमन करें, हे अर्ज्जुन ! तुम भी सर्पको छोड़ दो।

भीष्म बोले, अनन्तर काल, मृत्यु और सर्पके चले जानेपर अर्ज्जुनका शोक छूटा और गौतमी भी शोक रहित हुई। हे महाराज ! इसे सुनके तुम शान्ति अवलम्बन करो, शोक मत करो। हे महाराज ! सब कोई निजकर्म्म-निबन्धनसे स्वर्ग और नरकलोकमें गमन किया करते हैं। राजा लोग जिन कर्म्मोंके सहारे मारे गये, वे तुम्हारा अथवा दुर्य्योधनके कृत कर्म्म नहीं थे, जानना चाहिये, कि वे कालके द्वारा विहित हुए थे।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, महातेजस्वी धर्म्मज्ञ युधिष्ठिर भीष्मका ऐसा वचन सुनके शोकरहित हुए और उनसे ० वक्ष्यमाण वचन कहने लगे।

१ अ ाय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ सब शास्त्रोंके जाननेवाले महाप्राज्ञ पितामह ! मैंने यह महत् आख्यान सुना, अब फिर आप धर्म्मार्थयुक्त जो इतिहास कहें, उसे मैं सुननेकी अभिलाष करता हूं, इसलिये आपको उसकी व्याख्या करनी उचित है। हे नरपाल किस गृहस्थने धर्म्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस वृत्तान्तको आप यथार्थ रूपसे बयान करिये।

भीष्म बोले, गृहस्थ मनुष्यने धर्म्मके सहारे मृत्युको पराजित किया है, इस विषयमें प्राचीन लोग इस पुराने इतिहासको प्रमाण दिया करते हैं। हे राजन् ! प्रजापति मनुके इक्ष्वाकु नामक एक पुत्र था, उस सूर्य्य समान तेजस्वी राजाके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। हे भारत ! उसके दशवें पुत्रका नाम दशाश्व था, वह सत्य पराक्रमी धर्म्मात्मा माहिष्मती नगरीका राजा हुआ था। दशाश्वका पुत्र परम धर्म्मात्मा मदिराश्व नामक राजा पृथ्वीमण्डल भरमें

प्रसिद्ध हुआ था। सत्य, तपस्या और दान विषयमें उसका चित्त सदा रत रहता था और वह धनुर्व्वेद तथा वेदमें भी अनुरक्त था। मदिराश्वके पुत्रका नाम द्युतिमान था, वह महाबली, महातेजस्वी, महाभाग और महासत्त्वशाली था। द्युतिमानका पुत्र परम धार्म्मिक सुवीर नाम राजा सब लोकोंमें विख्यात हुआ, वह धर्म्मात्मा अधिक धन-सम्पत्तिशाली और दूसरे इन्द्रके समान कोषवान था। सुवीरका पुत्र सर्व्व संग्राम दुर्ज्जय सब शास्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ सुदुर्ज्जय नामसे विख्यात था। सुदुर्ज्जयके इन्द्रके समान शरीरसे युक्त अग्नि सदृश तेजस्वी महाराज दुर्योधन नामक पुत्र हुआ। उस इन्द्र समान पराक्रमशाली युद्धमें अपरांमुख राजाके राज्यमें देवराज पुरोहितिसे जलकी वर्षा करते थे। अनेक प्रकारके शस्य, पशु और धन रत्नसे उस समय उसका राज्य तथा नगर परिपूर्ण था; उसके राज्यमें कोई कृपण वा दरिद्र नहीं था, और उसके राज्य शासनके समयमें कोई पुरुष रोगी अथवा कृश नहीं हुआ था। हे भारत! उस मृदुभाषी, असूया रहित, जितेन्द्रिय, धर्म्मात्मा, अनृशंस, पराक्रमी, अनात्म श्लाघा परायण, विधिपूर्व्वक यज्ञ करनेवाले, अन्तरिन्द्रिय-निग्रहशील, मेधावी, ब्रह्मनिष्ठ, सत्य, सङ्गर, अनवमन्ता, वदान्यवर, वेद-वेदान्तके जाननेवाले उत्तम दक्षिणा देनेवाले पुरुषप्रवर पृथ्वीपालकी शीतल जलसे युक्त कल्याणदायिनी पुण्यतमा देवनदी नर्म्मदाने स्वाभाविक कामना की थी। हे महाराज! राजा दुर्योधनने उस नर्म्मदा नदीसे एक सुदर्शना नामकी राजीवलोचना कन्या उत्पन्न की, वह कन्या केवल नामसे ही नहीं, रूपसे भी सुदर्शना थी। हे युधिष्ठिर! दुर्योधनकी कन्या जैसी सुन्दरी थी, स्त्रियोंके बीच वैसी सुन्दरी स्त्री पहले कभी उत्पन्न नहीं हुई थी। हे राजन्! अग्निने स्वयं ब्राह्मणका वेष धरके उस राजकन्या सुदर्शनाकी कामनासे राजाके निकट उसे पानेके लिये प्रार्थना की थी। ब्राह्मण मेरा असवर्ण और दरिद्र है, ऐसा समझके राजाने उस विप्रको सुदर्शना कन्या दान करनेकी अभिलाषा नहीं की। अनन्तर उस भूपतिके वितानिसाध्य यज्ञमें हव्यवाहन अग्निदेव अन्तर्हीन हुए, राजा उस समय अत्यन्त दुःखित होकर ब्राह्मणोंसे यह वचन बोला, हे द्विजश्रेष्ठगण! मुझसे अथवा आप लोगोंसे ऐसा कौनसा पापकर्म्म हुआ है, जिससे कि कापुरुषके उपकारकी भांति अग्निदेव अदृश्य हुए। हम लोगोंका अल्प पाप नहीं है; क्यों कि अग्नि विनष्ट हुई। यह हमारा अथवा आपका पाप है, इसे यथार्थ रीतिसे विचारिये, हे भरतप्रवर! उस समय वे सब ब्राह्मण राजाका वचन सुनके नियमनिष्ठ और वाक्संयत होकर अग्निदेवके शरणागत हुए। शरतकालके सूर्य्य समान तेजस्वी भगवान हव्यवाहनने उस समय निज रूपको प्रकाशित करके ब्राह्मणोंको दर्शन दिया। अनन्तर महानुभाव अग्नि उन ब्राह्मणोंसे बोले, मैं अपने लिये दुर्योधनकी कन्याको चाहता हूं। इस वचनको सुनके ब्राह्मण लोग विस्मित हुए और अग्निने जो कुछ कहा था, भोरके समय उठके वह सब वृत्तान्त राजाके समीप वर्णन किया। उस बुद्धिमान् राजा ब्रह्मवादियोंके मुखसे ऐसा वचन सुनके परम हर्षित होके कहा, कि ऐसा ही होगा और भगवान् अग्निके निकट शुल्कस्वरूप यह वर मांगा कि, हे विभावसु! इस स्थानमें आप सदा निवास करिये, भगवान अग्निदेव राजाका वचन सुनके बोले, कि "ऐसा ही होवे।" तभीसे माहिष्मती नगरीमें अग्नि सदा विद्यमान है, जब सहदेवने दक्षिण दिशा जीतनेके लिये प्रस्थान किया था, तब उन्हें प्रत्यक्ष दीख पड़ा था। अनन्तर राजा दुर्योधनने उस कन्याको नवीन वस्त्र पहराके सब आभूषणोंसे भूषित करके महात्मा

अग्निको प्रदान किया ; अग्निने भी अध्वरमें वसुधाराकी भांति उस राजकन्या सुदर्शनाको प्रतिग्रह किया। उसके कुश-शोभ शरीरकी सुघराई और श्री देखके अग्निदेव प्रसन्न होके उसे पुत्र प्रदान करनेमें मनोयोगी हुए। अग्निके द्वारा उस राजकन्याके गर्भसे सुदर्शन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ; सुदर्शन सुघराई और गुणमें पूर्णचन्द्रके समान हुआ, उसने बालक अवस्थामें ही सम्पूर्ण सनातन वेद अध्ययन किया।

नृग राजाके पितामह ओघवान् नामके राजा थे, उनके ओघवती नामकी कन्या और ओघरथ नामका पुत्र था, ओघवानने स्वयं विद्वान् सुदर्शनके साथ अपनी देवरूपिणी कन्याका विवाह किया। हे महाराज ! सुदर्शनने उस ओघवतीके साथ गृहस्थाश्रममें रत होके कुरुक्षेत्रमें निवास किया था। हे नरनाथ ! महातेजस्वी धीमान् सुदर्शन 'गृहस्थ होके मृत्युको जय करूंगा' ऐसी ही प्रतिज्ञा करके पत्नीसे बोले, कि तुम भी अतिथियोंके विषयमें किसी प्रकारसे प्रतिकूल आचरण न करना ; प्रतिदिन अतिथि जिस प्रकार तुम्हारे द्वारा प्रसन्न हो, तुम आत्मप्रदान करके भी उस कार्य्यको सिद्ध करना, इस विषयमें कुछ भी विचार न करना। हे सुश्रोणि ! मेरे हृदयमें सदा यह व्रत विद्यमान है, कि गृहस्थ मनुष्योंके निमित्त अतिथिसे बढ़के और कुछ भी नहीं है। हे शोभने ! हे वामोरु ! यदि तुम मेरे वचनको मानो, तो सन्देहरहित होके सदा इस ही वचनको हृदयमें धारण करो। हे कल्याणि ! हे पापरहित ! मैं चाहे घरसे बाहर रहूं, अथवा घरमें ही रहूं, मेरा वचन यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो तुम अतिथिकी अवमानना न करना। ओघवती उस समय हाथ जोड़के पतिसे बोली, तुम्हारी आज्ञा हर प्रकारसे मुझे पालन करना उचित है। हे राजन् ! उस समय मृत्यु उस गृहस्थ सुदर्शनकी जिगीषा परवश और छिद्रान्वेषी होकर सदा उसके पीछे पीछे घूमने लगी। जब अग्निपुत्र सुदर्शनने काष्ठ लानेके निमित्त गमन किया, तब धर्मने ब्राह्मणका वेष धरके अतिथि होकर उस ओघवतीसे कहा, हे वरवर्णिनि ! गृहस्थाश्रम-सम्मत धर्म्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो मेरा तुम आतिथ्य करो, मेरी यही अभिलाषा है। हे नरनाथ ! यशस्विनी राजपुत्री उस ब्राह्मणका ऐसा वचन सुनके वेदविहित विधिके अनुसार उसका सत्कार करने लगी, तथा ब्राह्मणको आसन और पाद्य देकर बोली, हे विप्रवर ! आपका कौनसा प्रयोजन है ? तब ब्राह्मण उस सुन्दरी राजकन्यासे बोला, हे कल्याणि ! मैं तुम्हें ही चाहता हूं, तुम निशङ्क होकर ऐसा ही आचरण करो। हे राजकन्या ! गृहस्थाश्रम सम्मत धर्म्म यदि तुम्हें प्रमाण हो, तो तुम आत्मप्रदान करके मेरा प्रियकार्य्य सिद्ध करो। राजपुत्रीने अन्य अन्य अभिलषित वस्तु देनेको ब्राह्मणको लोभ दिखाया, तो भी उसने उसके आत्म प्रदानके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु न मांगी। तब राजकन्याने पतिका वचन स्मरण करके लज्जापूर्व्वक ब्राह्मणसे कहा, कि "ऐसा ही होवे।" अनन्तर उस राजकन्याने गृहस्थाश्रमकी इच्छा करनेवाले पतिका वचन स्मरण करके हंसकर उस ब्राह्मणके साथ निर्जन गृहमें बैठी ; अनन्तर अग्निपुत्र सुदर्शन काठ लेकर घरपर आके उपस्थित हुए। रौद्र भावयुक्त मृत्यु अदृश्य भावसे सदा उनके निकटवर्त्ती था।

अनन्तर अग्निपुत्र उस समय अपने आश्रममें आके उस ओघवतीको 'कहां गई' ऐसा कहके बार बार आह्वान करने लगे। पतिव्रता सती उस समय उस ब्राह्मणके दोनों हाथोंसे आलिङ्गित रहनेसे पतिको कुछभी उत्तर न देसकी मैं पतिके समीप उच्छिष्ट हुई, ऐसा विचारती हुई लज्जित होकर वह साध्वी चुप होरही, तथा कुछ भी न बोली, अनन्तर सुदर्शनने फिर

उसी पुकार कर कहा, 'वह साध्वी कहां है?' वह कहां चली गई? इससे बढ़के और गुरुतर विषय दूसरा कौनसा होगा? पतिव्रता सत्यशीला, सदा सरल स्वभाववाली वह प्रियतमा किस निमित्त विस्मययुक्त होकर आज पहिलेकी भांति प्रकाशित नहीं होती है। सुदर्शन ऐसा ही वचन कह रहे थे, उस समय कुटीमें स्थित ब्राह्मणने उन्हें उत्तर दिया, कि हे अग्निपुत्र! तुम्हें विदित हो, कि मैं अतिथि उपस्थित हुआ हूं। हे सत्तम! मैं तुम्हारी भार्य्याके द्वारा अनेक प्रकारके सत्कारोंसे प्रलोभित होने पर भी केवल इसको ही प्रार्थना की है, यह वही शुभानना विधिपूर्व्वक मेरा सम्मान करती है, इस विषयमें दूसरा जो कुछ कार्य्य तुम्हें उपयुक्त बोध हो, अर्थात् स्त्री-दूषणके अनुसार यदि दण्ड देना उचित हो, तो तुम उसका अनुष्ठान करो। "अतिथिव्रत परित्याग करके जो प्रतिज्ञासे भ्रष्ट होता है, उसका बध करूंगा", ऐसा विचार कर मृत्युदेव लौहदण्ड धारण करके उस पुरुषको अनुगामी हुए हैं। सुदर्शन ऐसा वचन सुनके कर्म्म, मन, नेत्र और वचनसे ईर्षा तथा क्रोध परित्याग करके विस्मित होकर यह वचन बोले, हे विप्रवर! आपका सुरत हो, मुझे उससे परम प्रसन्नता होगी; अतिथि-सत्कार ही गृहस्थका परम धर्म्म है। जिस गृहस्थके घरमें अतिथि आकर पूजित होके गमन करता है, उससे बढ़के दूसरा कोई भी श्रेष्ठ धर्म्म नहीं है,—ऐसा पण्डित लोग कहा करते हैं। मेरा प्राण, पत्नी और दूसरा जो कुछ धन है, वह सब अतिथियोंको दान करूंगा, यही मेरा सङ्कल्पित व्रत है। हे विप्र! मैंने सन्देहरहित होकर जिस प्रकार यह वचन कहा है, वैसे ही सत्यके सहारे स्वयं, आत्माको अवलम्बन करता हूं।

हे धार्म्मिक प्रवर! पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और अग्नि ये पांच और बुद्धि, आत्मा, मन, काल तथा दिशा, ये दश सदा देहधारियोंके शरीरमें स्थित रहके सुकृत और दुष्कृत कर्म्मोंको अवलोकन करते हैं। आज मैंने जो यह सत्य वचन कहा है, उस सत्यके सहारे देवता लोग मुझे पालन करें, अथवा भस्म करें। हे भारत! अनन्तर "यही सत्य है, इसमें कुछ भी झूठ नहीं है," ऐसा ही शब्द सब ओरसे प्रकट हुआ। अनन्तर उदयशील वायुकी भांति शरीरके सहारे वह ब्राह्मण उस कुटीसे बाहर निकला और उदात्तादि धर्म्मविशिष्ट स्वरसे प्रथम उस धर्म्मज्ञ सुदर्शनका नाम लेके उन्हें आमन्त्रण करके यह वचन बोला, हे पापरहित! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं धर्म्म हूं, मैं तुम्हारी परीक्षा करनेके लिये इस स्थानमें आया था। हे सत्यज्ञ! जाननेसे अब तुम्हारे ऊपर मेरी अत्यन्त प्रीति हुई। छिद्रान्वेषी मृत्यु जो कि सदा तुम्हारा पीछा कर रही है, तुमने उसे जय किया है और धैर्य्य गुणसे वशीभूत किया है। हे पुरुषोत्तम! तुम्हारे इस पतिव्रता साध्वीको स्पर्श करनेकी बात तो दूर है, इसकी ओर देखनेकी भी तीनों लोकके बीच किसीको सामर्थ नहीं है। यह तुम्हारे गुणसे तथा पतिव्रता गुणसे रक्षित हुई है। यह अदुष्टा साध्वी जो कहेगी, वह मिथ्या न होगा। यह ब्रह्मवादिनी निज तपस्यासे संयुक्त होकर लोकको पवित्र करनेके लिये श्रेष्ठ नदी होगी। तुम इस जन्ममें इस ही शरीरसे सब लोकोंमें गमन करोगे, और यह महाभागा अर्द्ध शरीरसे ओघवती नामकी नदी होगी और आधे शरीरसे तुम्हारा अनुगमन करेगी, योगबलसे यह दो शरीर धारण कर सकेगी, क्यों कि योग इसके वशमें है, तुमने तपोबलसे जिन लोकोंको प्राप्त किया है, इसके सहित उन्हीं लोकोंमें जाओगे; जहांपर जानेसे फिर मर्त्त्यलोकमें नहीं आना होता, तुम इस ही शरीरसे उस शाश्वत सनातन लोकमें गमन

करोगे। मृत्यु तुमसे निर्ज्जित हुई है, तुमने उत्तम ऐश्वर्य्य पाया है, तुमने निज वीर्य्यबलसे मनोजव होकर पञ्चभूतोंको अतिक्रम किया है। तुमने इस गृहस्थधर्म्मके सहारे काम और क्रोधको जीता है। हे ऋषिराज! इस राजपुत्रोने तुम्हारी सेवाके सहारे स्नेह, राग, तन्द्रा, मोह और द्रोहको विशेष रूपसे जय किया है।

भीष्म बोले, अनन्तर देवराज इन्द्र सफेद रङ्गवाले हजार घोड़ोंसे युक्त उत्तम रथ लेकर उस ब्राह्मणके निकट उपस्थित हुए। हे नरनाथ! उस ब्राह्मणने अतिथिके विषयमें भक्तिवशसे मृत्यु, आत्मा, सब लोक, पञ्चभूत, बुद्धि, काल, मन, व्योम, काम तथा क्रोधको जय किया था, इसलिये गृहस्थाश्रमी पुरुषके लिये अतिथिके समान दूसरा कोई भी देवता नहीं है, इसे मनहीमन विचारो। अतिथि पूजित होनेसे मनहीमन जो शुभचिन्ता करता है, उसकी समानता सौ यज्ञके फल भी नहीं कर सकते, इसलिये पण्डित लोग कहा करते हैं कि अतिथि सत्कारका फल उससे भी अधिक हुआ करता है। शीलवान् सत्पात्र अतिथिके उपस्थित होनेसे जो पुरुष उसका सत्कार नहीं करता, उसे वह अतिथि अपना पापका फल देकर उसके पुण्यफलको लेकर चल देता है। हे तात! पहले समयमें गृहस्थ पुरुषके द्वारा मृत्यु जिस प्रकार पराजित हुई थी, यह वही उत्तम आख्यान मैंने तुम्हारे समीप वर्णन किया है। यह उत्तम आख्यान धन यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। ऐश्वर्य्यकी इच्छा करनेवाले मनुष्य इसे सब पापोंको नष्ट करनेवाला समझते हैं। हे भारत! जो विद्वान् पुरुष नित्य इस सुदर्शन चरितको कहता है, वह पुण्य लोक पाता है।

२ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे नरनाथ! क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, इन तीनों वर्णोंको यदि ब्राह्मणत्व प्राप्त होना दुष्प्राप्य है, तो महानुभाव विश्वामित्रने क्षत्रिय होके किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया था। इसे मैं यथार्थ रीतिसे सुननेकी इच्छा करता हूं। हे पुरुषश्रेष्ठ धर्म्मात्मा पितामह! आप मेरे समीप इस विषयको वर्णन करिये। हे पितामह! उस अत्यन्त वीर्य्यशाली विश्वामित्रने तपस्याके प्रभावसे महात्मा वसिष्ठके एक सौ पुत्रोंका नाश किया था। उनके शरीरमें क्रोध उत्पन्न होनेपर उन्होंने कालान्तक समान बहुतेरे महातेजस्वी यातुधान राक्षसोंको उत्पन्न किया था। एक सौ ब्रह्मर्षियोंसे युक्त विद्यावान् अत्यन्त महान् कुशिक वंश इस मनुष्य लोकमें ब्राह्मणोंके द्वारा स्तुतियुक्त होकर स्थापित हुआ है; ऋचीकके पुत्र महातपस्वी शुनःशेफ पशुत्वको प्राप्त होकर महायज्ञसे विमोचित हुए; हरिश्चन्द्र निज तेजके सहारे यज्ञमें देवताओंको सन्तुष्ट करके बुद्धिमान् विश्वामित्रका पुत्रत्व लाभ किया। देवताओंने विश्वामित्रको देवरात नामक जो पुत्र प्रदान किया था, उसके ज्येष्ठ तथा राजा होनेपर भी उनके अन्य पुत्रोंने उसे प्रणाम नहीं किया, इसीसे उन्होंने उन पचास पुत्रोंको शाप दिया, वे सब चाण्डाल होगये। इक्ष्वाकुकुल पुत्र त्रिशङ्कु वसिष्ठके शापसे चाण्डाल होगया, इसीसे उसके बान्धवोंने उसे परित्याग किया। अनन्तर उनके दाक्षिण्य दिशाको अवलम्बन करके अवाक्शिरा होनेपर विश्वामित्रने उसे स्वर्गमें भेजा। विश्वामित्रकी कौशिकी नामकी देवर्षियोंसे सेवित एक बड़ी नदी थी, उस कल्याणी पुण्यसलिलवाली श्रेष्ठ नदीको देवता और ब्रह्मर्षिलोग सदा सेवा करते थे। पञ्चचूड़वती उत्तम और प्रसिद्ध रम्भानामकी अप्सरा उसकी तपस्यामें विघ्न करनेसे शाप वशसे शिला होगई थी। इस ही ऋषिके भयसे पहली समयमें वसिष्ठ मुनि पत्थरखण्डके सहित

जलमें डूबे थे और विपाश होकर फिर जलसे ऊपर उठे थे, तभीसे उस पवित्र सलिलवाली महानदी महात्मा वसिष्ठके उस ही कर्मसे विपाशा नामसे विख्यात हुई है। जब विश्वामित्र त्रिशङ्कुके यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए, तब वसिष्ठ मुनिके पुत्रोंने उन्हें यह कहके शाप दिया, कि "जब तुम चाण्डालके पुरोहित हुए हो, तो स्वयं चाण्डाल होजाओगे।" इस ही शापके सत्य होनेके निमित्त किसी आपद्कालमें विश्वामित्रने चौर्य्यवृत्तिसे कुत्ते का निकृष्ट मांस चुराकर उसे पकाना आरम्भ किया था, इतने ही समयमें इन्द्रने बाजपक्षीका रूप धरके उस मांसको हरण किया। उस समय विश्वामित्रने वचनसे भगवान् इन्द्रकी स्तुति की, इन्द्रने प्रसन्न होकर उन्हें शापसे मुक्तकर दिया उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव और ब्रह्मर्षियोंके बीच जो उदीची दिशाका अवलम्बन करके सदा नक्षत्र रूपसे प्रकाशित होरहे हैं, हे कौरव! उस विश्वामित्रके ये सब तथा अन्यान्य कर्म्मोको सुनके, कि क्षत्रियके द्वारा यह सब घटना हुई थी, इससे मुझे अत्यन्त आश्चर्य्य उत्पन्न हुआ है। हे भरतश्रेष्ठ! यह घटना किस प्रकार हुई थी, आप उसे वर्णन करिये। विश्वामित्र बिना दूसरा शरीर धारण किये ही किस प्रकार ब्राह्मण हुए। हे तात! हमारे समीप इन समस्त वृत्तान्तोंको वर्णन करनेके योग्य आप ही हैं, जैसा मतङ्गका वृत्तान्त है, वैसे ही इसे भी आप मेरे निकट वर्णन करिये। हे भरतप्रवर। मतङ्गने शूद्रके सहारे ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न होके कठिन तपस्या करनेपर भी ब्राह्मणत्व लाभ नहीं किया, वह युक्तिसङ्गत है, परन्तु विश्वामित्रने किस प्रकार ब्राह्मणत्व लाभ किया।

३ अध्याय समाप्त।

भीष्म बोले, हे तात पृथापुत्र! पहिले समयमें विश्वामित्रने जिस प्रकार ब्राह्मणत्व और ब्रह्मर्षित्व प्राप्त किया था। उसे यथार्थ रीतिसे कहता हूं, सुनो। हे भरतप्रवर! भरतवंशमें आजमीढ़ नामक यज्ञ करनेवाला धार्म्मिकोंमें श्रेष्ठ एक राजा था। गङ्गा जिसकी पुत्री कहाती हैं, वही जन्हु उसके मुख्य पुत्र थे; उनके महायशस्वी सिन्धुद्वीप गुणोंमें उन्हींके सदृश पुत्र हुआ, सिन्धुद्वीपसे महाबली बलाकाश्व राजर्षि उत्पन्न हुआ। साक्षात् धर्म्मसमान उसके वल्लभ नाम पुत्र हुआ। इन्द्रके समान तेजस्वी उसका पुत्र कुशिक हुआ, कुशिकका पुत्र श्रीमान गाधि नामक राजा था, वह अपुत्र होनेसे वनवासी हुआ था। जब वह वनमें निवास कर रहा था, तब उसके एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका सत्यवती नाम रखा, पृथ्वी मण्डलमें वैसी रूपवती और कोई स्त्री नहीं थी। महातपस्वी भृगुवंशी च्यवन मुनिके पुत्र जो कि ऋचीक नामसे विख्यात हैं, उन्होंने राजासे उस कन्याके निमित्त प्रार्थना किया, शत्रुनाशन गाधिराज पहले महानुभाव ऋचीकको दरिद्र समझके अपनी कन्या देनेमें सम्मत नहीं हुए। अनन्तर जब ऋचीक मुनि वहांसे लौटकर चलने लगे, तब नृपसत्तम गाधिराजने उनसे कहा, कि तुम मुझे शुल्क प्रदान करो, तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण कर सकोगे।

ऋचीक मुनि बोले, मैं तुम्हारी कन्याका क्या शुल्क प्रदान करूं, उसे तुम निःसन्देह मुझसे कहो।

महाराज गाधि बोले, हे भार्गव! चन्द्रमाकी किरण समान प्रकाशमान वायुके सदृश बलशाली और जिनके एक कान श्यामवर्ण है, वैसे एक हजार घोड़े मुझे दो।

भीष्म बोले, अनन्तर उस भृगुवंशीय च्यवन मुनिके पुत्र ऋचीकने अदितिपुत्र जलाधिपति वरुणदेवसे कहा कि, हे देवसत्तम! एककर्ण श्यामवर्ण और चन्द्रकिरण समान सफेद, वायु समान वेगशाली एक हजार घोड़े पानेके लिये मैं आपके समीप भिक्षा मांगता हूं। अदिति-

पुत्र वरुणदेवने भृगुसत्तम ऋचीक मुनिसे कहा "बहुत अच्छा"—तुम्हें जिस स्थानपर उन घोड़ोंके निमित्त अभिलाषा होगी, उस ही स्थानमें ऐसे लक्षणोंसे युक्त एक हजार घोड़े प्रकट होजायँगे। अनन्तर ऋचीक मुनिके ध्यान करते ही महातेजस्वी चन्द्रमा समान सफेद एक हजार श्यामकर्ण घोड़े गङ्गाजलसे प्रकट हुए; कान्यकुब्ज देशके समीप जिस स्थानमें ये घोड़े प्रकट हुए थे, अबतक भी मनुष्य उसे अश्वतीर्थ कहा करते हैं। हे तात। अनन्तर तपस्वी श्रेष्ठ ऋचीक मुनिने प्रसन्न होकर शुल्कके निमित्त महाराज गाधिको वेही एक हजार उत्तम श्यामकर्ण घोड़े प्रदान किये, गाधिराज उसे देखकर विस्मित हुए और शाप भयसे डरके अपनी कन्याको सब आभूषणोंसे भूषित करके ऋचीक मुनिको प्रदान किया। ब्रह्मर्षिसत्तम ऋचीक मुनिने विधिपूर्व्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया, वह भी उन्हें पति रूपसे पाके परम हर्षित हुई। हे भारत। ब्रह्मर्षि ऋचीक उसके चरित्रसे हर्षित हुए और उससे कहा कि तुम्हें पुत्र दान करूंगा, इस प्रकार वर देके उस वरवर्णिनिको प्रलोभित किया। हे भारत। कन्याने वह सब वृतान्त अपनी मातासे कह दिया।

अनन्तर माताने उस अधोवदनवाली अपनी पुत्रीसे कहा, हे पुत्री। तुम्हारा पति मुझ पर भी कृपाकर सकता है, वह महातपस्वी पुत्र देनेमें समर्थ है। हे राजन्। इतनी बात सुनके उसने शीघ्र ही पतिके निकट जाके माताका सब अभिप्राय कह सुनाया। तब ऋचीक मुनिने उससे कहा, हे कल्याणि। मेरे प्रसादसे तुम्हारी माताके शीघ्रही गुणवान पुत्र जन्मेगा। तुम्हारे भी गुणवान और यशस्वी हमारे वंशको वृद्धि करनेवाला श्रीमान् महान् पुत्र उत्पन्न होगा; यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे कल्याणि! तुम और तुम्हारी माता जब ऋतुमती होकर स्नान करने पर अश्वत्थ और उडुम्बर वृक्षको आलिङ्गन करना, तब मेरे वचनके अनुसार तुम दोनोंको पुत्र लाभ होगा। हे शुचिस्मिते! वह और तुम इस मन्त्रयुक्त दो चरु भोजन करना, तब तुम दोनोंको ऐसे ही गुणोंसे युक्त दो पुत्र होंगे। अनन्तर सत्यवती अत्यन्त हर्षित होके माताके निकट गई, और ऋचीक मुनिने जो कुछ कहा था, वह सब वृतान्त तथा चरुके विषयको वर्णन किया। तब उसकी माता निज पुत्री सत्यवतीसे बोली, हे पुत्री। मैं तुम्हारे पतिसे भी तुम्हारे समीप माननीय हूं, इसलिये तुम मेरा वचन प्रतिपालन करो, तुम्हारे पतिने तुम्हें जो मन्त्रयुक्त चरु दिया है, वह मुझे दो और जो चरु मुझे दिया है, उसे तुम लो। हे शुचिस्मिते! हे अनन्दिते। मैं तुम्हारी माता हूं, यदि मेरा वचन तुम्हें प्रमाण हो, तो हम दोनों उन दो वृक्षोंको आलिङ्गन करें। सब कोई अपने लिये उत्तम और निर्म्मल पुत्रकी कामना करते हैं, भगवान् ऋचीकने भी अवश्य इस ही प्रकार क्या होगा यह शीघ्रमें मालूम होजायगा। हे सुमध्यमे! इस ही निमित्त तुम्हारे वृक्ष और चरुमें मेरी अभिरुचि हुई है। जिस प्रकार तुम्हारा भाई श्रेष्ठ हो, तुम वैसीही चिन्ताकरो।

हे युधिष्ठिर। सत्यवती और उसकी माताने ऊपर कहे हुए वचनसे उस ही प्रकार आचरण किया अनन्तर वे दोनों गर्भवती हुईं, भृगु सत्तम ऋचीक मुनिने अपनी भार्य्या सत्यवतीको गर्भवती देखकर दुःखित होकर कहा, हे कल्याणि। चरु अदल बदल करना तुम्हारा उपयुक्त कार्य्य नहीं हुआ है, यह पीछे मालूम होगा और तुमने जो वृक्षमें उलट फेर किया है, वह स्पष्ट ही मालूम होरहा है। मैंने तुम्हारे चरुमें विश्वब्रह्मतेज परिपूरित किया था और तुम्हारी माताके चरुमें सम्पूर्ण क्षत्रिय तेज भरा हुआ था। तुम्हारे तीनोंलोकके बीच निज गुणोंसे

बिख्यात् ब्राह्मण पुत्र हो और तुम्हारी माताके क्षत्रिय पुत्र होवे, इस ही लिये मैंने ऐसा किया था। हे शुभे! तुम दोनोंने जब उसमें हेर फेर किया है, तब तुम्हारी माताके एक उत्तम ब्राह्मण पुत्र उत्पन्न होगा और तुम्हारे प्रचण्ड कर्म्म करनेवाला एक क्षत्रिय पुत्र होगा। हे भद्रे हे भामिनि! तुमने मातृस्नेहके वशमें होकर इस प्रकार वृक्ष और चरुको बदलके उत्तम कार्य्य नहीं किया।

हे महाराज! वह वरवर्णिनि सत्यवती ऐसा वचन सुनके शोकित तथा दुःखित होकर टूटी हुई मनोहारिणी लताकी भांति पृथ्वीपर गिर पड़ी। कुछ समयके अनन्तर गाधिराज पुत्री सावधान होके हाथ जोड़के सिर भुकाकर भार्गव श्रेष्ठ पतिको प्रणाम करके कहने लगी। हे वेदज्ञवर विप्रर्षि! मैं तुम्हारी भार्य्या हूं, इससे प्रसन्न होके आप मुझपर कृपा करिये,—जिससे कि मेरे क्षत्रिय पुत्र न हो। यदि आपकी इच्छा हो, तो मेरा पौत्र उग्र कर्म्म करनेवाला क्षत्रिय होसकेगा, परन्तु जिसमें मेरा पुत्र क्षत्रिय न हो, वही करिये। हे ब्रह्मन्! आप मुझे यही वर दीजिये, महातपस्वी ऋचीकमुनि अपनी भार्य्यासे बोले,—'ऐसा ही होगा।' हे राजेन्द्र! अनन्तर सत्यवतीके शुभलक्षणसे युक्त यमदग्नि नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और यशस्विनी गाधिराजकी भार्य्या ऋषिके प्रसादसे ब्रह्मर्षि बिश्वामित्रकी जननी हुई। महातपस्वी बिश्वामित्रने क्षत्रिय होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया और नीचेलिखे ब्राह्मण बंशके कर्त्ता हुए। उनके महानुभाव सब पुत्र ब्राह्मण बंशकी वृद्धि करनेवाले, तपस्वी, ब्रह्मवित् और गोत्रकर्त्ता हुए थे; उनके ये नाम हैं,—भगवान् मधुच्छन्द, वीर्य्यवान् देवरात, अक्षीण, शकुन्त, बभ्र, कालपथ, बिख्यात् याज्ञवल्क्य, महाब्रतस्थूल, उलूक, मुद्गल, सैन्धवायन, ऋषि, भगवान् वल्गुजङ्घ, महर्षि गालव, रुचि, बिख्यात्वज्र, सालङ्कायन, लीलाढ्य, नारद, कूर्च्चामुख, वाहुलि, मूषक, वज्रग्रीव, आङ्घ्रिक, नैकदृक्, शिलायूप, शित, शुचि, चक्रक, मारुतन्तव्य, वातघ्न, आश्वलायन, श्यामायन, गार्ग्य, जावालि, सुश्रुत, कारीषि, संश्रुत्य, पर पौरवतन्तव, महर्षि कपिल, ताड़कायन ऋषि, उपगहन, आसुरायणि ऋषि, मार्गमऋषि, हिरण्याक्ष, जङ्घारि, वाभ्रवायन, सूति, बिभूति, सूत, सुरकृत्, आराणि, नाचिक, चाम्पेय, उज्जयन, नवतन्तु बकनख, सयन, यति, अम्भोरुह, अमत्स्याशी, शिरीषी, गार्द्दभि, उज्जेयोनि, रुदापेक्षी और महर्षि नारदी, ये सब बिश्वामित्रके पुत्र ब्रह्मवादी मुनि थे।

हे महाराज युधिष्ठिर! महातपस्वी बिश्वामित्रके क्षत्रिय होनेपर भी ऋचीक मुनिके द्वारा जो पहले चरुमें ब्रह्मतेज प्रवेशित किया गया था, उस ही निमित्त उन्होंने क्षत्रियवीर्य्यसे उत्पन्न होके भी ब्राह्मणत्व लाभ किया था। हे भरतश्रेष्ठ! यह मैंने तुम्हारे समीप चन्द्रमा सूर्य्य तथा अग्निके समान तेजस्वी बिश्वामित्रकी उत्पत्तिका वृत्तान्त यथार्थ रूपसे वर्णन किया। हे नृपसत्तम! फिर जिन विषयोंमें तुम्हें सन्देह हो, वह मुझसे कहो, मैं तुम्हारा सब सन्देह मिटा दूंगा।

४ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे धर्म्मज्ञ पितामह! मैं अनृशंस्य धर्म्म और भक्तोंके गुणको सुननेकी इच्छा करता हूं, आप मेरे समीप इसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, प्राचीन लोग इस विषयमें महानुभाव शुक और इन्द्रके सम्वादयुक्त इस प्राचीन इतिहासका उदाहरण दिया करते हैं। काशिराजके राज्यमें कोई व्याधा गांवसे निकलकर विषमें बुझे हुए बाण ग्रहण करके हरिनोंको खोजमें घूम रहा था। मृगयाके समय महाव-

नमें उस मांसलोभी व्याधने थोड़ी दूरपर हरिणोंका भुण्ड देखकर वाण साधा। दुर्ब्बारितास्त्र व्याधने मृग मारनेके लिये वाण चलाया, वह वाण निशानेसे विचलकर वनमें एक वृहत् वृक्षमें विद्ध हुआ। वह वृक्ष विषमें बुझे हुए तीखा वाणसे बलपूर्व्वक वेधित होनेसे फल और पत्तोंको त्यागके सूखने लगा। उस वृक्षको ऐसी अवस्था होनेपर भी उसके कोटरमें बहुत समयसे निवास करनेवाला एक शुकपक्षी भक्तिवशसे वहांसे पृथक् न हुआ। धर्म्मात्मा कृतज्ञ शुक, निष्प्रचार, निराहार, ग्लानियुक्त और शिथिल वचन होकर वृक्षके सहित सूखने लगा। इन्द्र उस अतिमानुषी बुद्धिवाले उदार और सुख दुःखको समान माननेवाले महाप्राणी शुकको देखकर विस्मित हुए। उन्होंने सोचा, कि इस पक्षीने किस प्रकार तिर्य्यग् योनिमें असम्भाव्य परायें दुःखसे दुःखितभाव अवलम्बन किया है। अथवा इन्द्रको इस विषयमें कुछ आश्चर्य्य नहीं मालूम हुआ, क्यों कि मनुष्य पशु पक्षी आदि सब प्राणी तथा सब जातिमें ही दया और निठुरता प्रभृति दीख पड़ती हैं। अनन्तर इन्द्र ब्राह्मणवेषसे मनुष्य रूप धारण कर पृथ्वीपर उतरके उस शुक पक्षीसे बोले, हे विहङ्गवर शुक! दक्ष दौहित्री शुकी तुम्हारे द्वारा उत्तम प्रजायुक्त हुई है, मैं तुमसे पूछता हूं, कि तुम किस लिये इस वृक्षको परित्याग नहीं करते?

अनन्तर शुक पूछनेपर सिर भुकाके उन्हें प्रणाम करके बोला, हे देवराज! आपने सुखसे आगमन किया है न? मैंने ज्ञानदृष्टिके सहारे आपको पहचाना है। अनन्तर इन्द्रने 'साधु साधु' ऐसा वचन कहा और क्या ही आश्चर्य्ययुक्त विज्ञान है? ऐसा विचारके मनही मन उसकी प्रशंसा करने लगे। बलसूदन इन्द्रने उस शुभ कर्म्म करनेवाले परम धार्म्मिक शुकको ऐसा जानके भी वृक्षके विषयमें उसकी सुहृदताका विषय पूछा। यह वृक्ष पत्तारहित फलहीन, सूखा और पक्षियोंका अनाश्रय है, इसलिये इस महावनके बीच दूसरे, सजीव वृक्षोंके विद्यमान रहते किस निमित्त तुम इस सूखे वृक्षमें वास करते हो? इस महावनमें दूसरे बहुतेरे वृक्ष हैं, उनका कोटर पत्तोंसे परिपूर्ण है, देखनेमें सुन्दर हैं, तुम उन वृक्षोंपर सहजहीमें उड़के जासकते हो। हे धीर! इसलिये तुम बुद्धिके सहारे विचार करके इस निर्ज्जीव, सामर्थरहित, सारहीन, श्रीरहित सूखे वृक्षको परित्याग करो।

भीष्म बोले, धर्म्मात्मा शुक इन्द्रका वचन सुनके लम्बी सांस छोड़ते हुए दुःखित होके कहने लगा। हे शचिपति सुरराज! देव वचन अनतिक्रमणीय है, जिस विषयमें आपने प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनिये। मैंने इस वृक्षपर जन्म लिया है, बाल्य अवस्थासे प्रतिपालित और सद्गुणयुक्त हुआ हूं, शत्रुओंसे कभी आक्रान्त नहीं हुआ। हे पापरहित! मैं पराये दुःखसे दुःखित, अभियुक्त भक्त और अनन्य गतिसे युक्त हूं. आप क्यों करुणा करके मुझमें जन्मका शोक उत्पन्न करते हैं? दया ही साधुओंके महत् धर्म्मका लक्षण है, वही उन्हें सदा प्रसन्न किया करती है। देवता लोग सन्देहयुक्त होनेसे आपसे ही उस विषयमें प्रश्न करते हैं। हे देव! इस ही निमित्त आप देवताओंके आधिपत्य पर प्रतिष्ठित हुए हैं। हे सहस्रलोचन! मुझे सदाके लिये इस वृक्षको त्यागना उचित नहीं है। जब यह वृक्ष समर्थ था, तब इसे उपजीव्य करके इस समय किस प्रकार इसे परित्याग करूं। धर्म्मात्मा इन्द्र शुकका प्रिय वचन सुनके हर्षित होकर उससे बोले, मैं तुम्हारी अनृशंसतासे अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ हूं, तुम वर मांगो। सदा पर दुःखसे दुःखित शुकने उस समय उस वृक्षके हरे होनेके लिये वर मांगा। देवराज उस सुग्गेकी उस

वृक्षपर दृढ़भक्ति और शील सम्पत्ति मालूम करके प्रसन्न हुए और शीघ्र ही अमृत छिड़कके उस वृक्षको हरा कर दिया। अनन्तर वह वृक्ष शुकके दृढ़ भक्ति निबन्धनसे फल पत्र और मनोहर शाखासे युक्त होकर श्रीमान् हुआ। हे महाराज! शुकने भी उस अनृशंस कर्मके सहारे आयु शेष होनेपर इन्द्रके समान लोक प्राप्त किया। हे मनुजेन्द्र! जैसे वृक्षने शुकको आश्रय देकर सिद्धि लाभ की, वैसे ही जो लोग भक्तिमान पुरुषको आश्रय देते हैं, वे सब प्रयोजनोंमें सिद्धि लाभ करते हैं।

५ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे सर्व्व शास्त्र विशारद महाप्राज्ञ पितामह! दैव (भाग्य) और पुरुषकार (उद्योग) इन दोनोंमेंसे कौन श्रेष्ठ कहा जायगा। भाग्य सब विषयोंका मूल होने पर भी बिना पुरुषार्थके कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता; इसलिये भोग और मोक्षकी इच्छा करने वाले मनुष्योंको अवश्य ही पुरुषार्थ करना उचित है। इसमें यदि दोनों विषय ही श्रेष्ठ हुए, तब इन दोनोंके बीच अधिक श्रेष्ठ कौन होगा?

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर! प्राचीन लोग इस विषयमें ब्रह्मा और वशिष्ठ मुनिके सम्वाद-युक्त इस पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। पहिले समयमें भगवान् वशिष्ठ मुनिने सोचा, कि दैव अर्थात् पूर्व्वकर्म्म और मानुष अर्थात् वर्त्तमान कर्म्म, इन दोनोंमेंसे श्रेष्ठ कौन है? अनन्तर उन्होंने यह विषय पितामहसे पूछा था। हे महाराज! अनन्तर कमलसे उत्पन्न भये देवोंके देव पितामह ब्रह्मा अर्थ तथा युक्तियुक्त मधुर वचन कहने लगे।

ब्रह्मा बोले, बिना बीजके कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती और बिना बीजके फलकी भी उत्पत्ति नहीं होती; बीजसे ही बीज उत्पन्न हुआ करता है; इसलिये यह निश्चित है, कि बीजसे ही फल होता है। कृषक खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल पाता है, वैसे ही सुकृत रूपी बीजको बोके लोग उस ही भांति फल पाते हैं। जैसे बिना क्षेत्रके उत्त बीज निष्फल होते हैं, वैसे ही पुरुषार्थके बिना भाग्यकी कदापि सिद्धि नहीं होती; इसलिये पण्डित लोग पुरुषार्थको क्षेत्र भाग्यको बीज रूपसे उदाहरण दिया करते हैं, क्षेत्र और बीजके सम्बन्ध निबन्धनसे शस्योंकी वृद्धि हुआ करती है। यह लोकमें प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, कि कर्त्ता स्वयं अपने सुकृत वा दुष्कृत कर्म्मोंका फल भोगता है। किये हुए कर्म्म सर्व्वत्र ही फलित होते हैं और अकृत कर्म्मोंका फल कहीं भी नहीं दीख पड़ता। सब कृती पुरुष ही भाग्यके अनुसार प्रतिष्ठा पाते हैं और अकृति मनुष्य भ्रष्ट होकर क्षतमें क्षार सेचन लाभ किया करता है, मनुष्य तपस्यारूपी कर्म्मके सहारे रूप, सौभाग्य और विविध रत्नोंको पाता है, अकृतात्मा पुरुष दैववशसे उसे नहीं पा सकता। इसके अतिरिक्त समस्त भोग, स्वर्ग और मनोकामना युक्त जो कुछ निष्ठा हैं, उन सबको विहित कर्म्म करनेवाला पुरुष प्रयत्नके सहारे पाता है। पुरुषार्थसे ही नक्षत्रों, देवताओं, नागों, यक्षों, चन्द्रमा, सूर्य्य और मरुद्गणोंने मनुष्यत्व उलङ्घन करके देवत्व लाभ किया है। अर्थ मित्र और कुल परम्परासे प्रचलित ऐश्वर्य्य तथा श्रीसम्पत्ति अकृतकर्म्मा मनुष्योंको प्राप्त होनी अत्यन्त दुर्लभ हैं। ब्राह्मण पवित्रतासे श्री लाभ करता है, क्षत्रिय पराक्रमसे सम्पत्तिवान होता है, वैश्य पुरुषार्थके सहारे धनी होता और शूद्रसेवासे ही श्रीसम्पन्न हुआ करता है। सब अर्थ अदाताको सेवा करते हैं और कादर, क्रियारहित, निषिद्ध कर्म्म करनेवाले, निबल और जो पुरुष तपस्वी नहीं हैं, वेभी अर्थवान नहीं होते।

जिसने तीनों लोकोंकी सृष्टि की है और देवता तथा दैत्य जिससे उत्पन्न हुए हैं, वह यही भगवान विष्णु समुद्रगर्भमें तपस्या करता है। यदि अपने किये हुए कर्म्मोंका फल न रहे, तो सब लाभ ही निष्फल होजावें, भाग्यको लक्ष्य करके उदासीन होना न चाहिये। बिना पुरुषार्थ किये जो पुरुष भाग्यका अनुवर्त्तन करता है, स्त्रीके निकट क्लीव पतिकी भांति वह पुरुष भी वृथा परिश्रम किया करता है। पापकर्म्मसे देवलोकमें जैसा भय उत्पन्न होता है, मनुष्य लोकमें शुभाशुभ कर्म्मोंसे वैसा भय नहीं होता। उत्तम रीतिसे पुरुषका विहित प्रयत्न भाग्यके ही अनुसार किया करता है; बिना कर्म्म किये दैव किसीको भी कुछ देनेमें समर्थ नहीं होता, अकस्मात् निधि प्राप्त होनेपर भी उसमें किञ्चित कर्म्मकी सहायता है। जब कि दैव लोकमें इन्द्रादि स्थान भी अनित्य दीख पड़ते हैं, तब बिना पुण्य कर्म्मके देवता लोग ही किस प्रकार स्थित रहेंगे और कैसे अन्य प्राणियोंको स्थापित करेंगे। देवता लोग इस लोकमें किसी पुरुषके पुण्यकर्म्मका अनुमोदन नहीं करते, धर्म्ममें विघ्न करनेवाले उग्रकर्म्म आत्माभिभवकी शंकासे विशेष आसङ्ग उत्पन्न करते हैं। ऋषिवृन्द और देवताओंको सदा ही शत्रुता उत्पन्न हुआ करती है अर्थात् ऋषियोंकी तपस्याके समय देवता लोग विघ्न आचरण करते हैं और यह प्रसिद्ध है, कि च्यवन आदि ऋषियोंने इन्द्रादि देवताओंको पराजित किया था। इसलिये यदि देवर्षियोंका भी इस प्रकार कर्म्मपरत्व हुआ है, तोभी यह नहीं कहा जासकता कि "भाग्य नहीं है," क्यों कि भाग्य ही पुरुषको कर्म्ममें प्रवृत्त कराया करता है। जब दैव ही कर्म्मका प्रवर्त्तक हुआ, तब भाग्यके बिना किस प्रकार कर्म्मकी उत्पत्ति हो सकती है। पुण्यवान पुरुष निज धर्म्ममें प्रवृत्त होता है, धर्म्मसे पुण्य बढ़ता है, नहीं तो सभी धर्म्ममें प्रवृत्त न होते। जैसे इस लोकमें अत्यन्त धनवान पुरुष वाणिज्यका फैलाव करके अतुल अर्थ उपार्ज्जन करता है, वैसे ही पुण्यवान पुरुष स्वर्ग लोकमें पुण्यके सहारे बहुतसा भोग उपभोग किया करता है। जीव आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है, आप ही अपने कृत और अकृत कर्म्मफलका साक्षी है। कर्म्म करनेसे ही पाप पुण्य प्रकाशित होता है; सुकृत अथवा दुष्कृत कर्म्म यथार्थरूपसे फलदायक नहीं होते, उसका कारण यह है, कि पुण्यके द्वारा पाप और पापसे पुण्य नष्ट होके दोनोंके फल स्वर्ग और नरकका भोग नहीं प्राप्त होता। पुण्य ही देवताओंका गृहस्वरूप है, पुण्यसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है, पुण्यवान् मनुष्यके निकट दैव क्या कर सकता है; पुण्यकी अधिकता होनेसे दैव कर्म्म भी नष्ट हुआ करता है।

पहले समयमें राजा ययाति स्वर्गसे भ्रष्ट होके पृथ्वीपर गिरे और पुण्य कर्म्म करनेवाले दौहित्रोंके द्वारा फिर स्वर्ग लोकमें चले गये, राजऋषि पुरूरवा जो इलाका पुत्र कहके विख्यात है, वह राजा पहले समयमें ब्राह्मणोंसे अभिहित होकर स्वर्गमें गया। अयोध्याके राजा सौदास अश्वमेध आदि यज्ञोंके द्वारा सत्कृत होके भी महर्षिके शापवशसे मनुष्यभक्षी राक्षस हुए थे। अश्वत्थामा और परशुराम दोनों ही मुनिपुत्र और महाधनुर्द्धर होके भी इस लोकमें अपने किये हुए कर्म्मोंके द्वारा स्वर्ग लोकमें न जासके। दूसरे इन्द्रके समान वसुने सौ यज्ञ पूरा करके भी एक ही बार मिथ्या वचन कहनेसे रसातलके नीचे गमन किया है। विरोचनका पुत्र राजा बलि देवताओंके धर्म्म पाशमें बद्ध होकर विष्णुके पुरुषार्थसे पातालमें निवास करता है। और तेजस्वी पुरुषोंका पाप भी दोषका कारण नहीं होता। जनमेजय देवराजके द्विज-स्त्री-दूषणको जानके प्रस्थान

करनेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका वध करते हुए क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। ब्रह्मर्षि वैशम्पायन अज्ञान वशसे ब्रह्महत्या करके भी बालक वध निबन्धनसे क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। और पुण्य भी किसी किसी पुरुषके परित्राणका हेतु नहीं होता, पहले समयमें राजऋषि नृग महायज्ञमें ब्राह्मणोंको गोदान करके भी गिरगिट योनिको प्राप्त हुए थे। युवनाश्व राजऋषि यज्ञ करते ही करते जराग्रस्त हुए, वह देवताओंके दिये हुए वरको परित्याग करके गिरिव्रजमें निद्रित हुए थे, यज्ञका फल नहीं पाया। महाबली पराक्रमी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्य्योधन आदिने पाण्डवोंका राज्य हर लिया था, परन्तु पाण्डवोंने अपने भुजबलसे उस हृत राज्यको फिर ले लिया; उसमें दैव कुछ भी कारण नहीं है। तप नियमसे युक्त संशितव्रती मुनि लोग क्या दैवबलसे ही शाप दिया करते हैं? क्या कर्म्म-वशसे वे लोग अभिशाप नहीं देते? लोकमें अत्यन्त दुर्लभ सहस्र वस्तु पापी पुरुषोंको प्राप्त होके फिर उसे परित्याग किया करती हैं; लोभ मोहसे युक्त मनुष्योंका दैव कभी परित्राण नहीं कर सकता जैसे बहुत थोड़ी अग्नि वायुके द्वारा बढ़के महान् होती है, वैसे ही कर्म्म संयुक्त दैव उत्तम रीतिसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे तेलके नष्ट होनेसे दीपकका नाश होता है, वैसे ही कर्म्म नष्ट होनेसे भाग्य भी नष्ट होजाता है। इस लोकमें कर्म्महीन मनुष्य बहुतसा धन, उपभोग विषय और स्त्रियोंको पाके भी उप-भोग करनेमें समर्थ नहीं होते; और सदा उद्योगी मनुष्य भाग्यके सहारे बच्यमाण पृथ्वीमें पड़ी हुई निधि भी पाते हैं। श्रद्धाप्रिय देवता लोग व्ययशाली साधु पुरुषोंके सदाचारके निमित्त संशय करते हैं, अर्थात् अपना भाग ग्रहण करनेके लिये उसे ही उपजीव्य किया करते हैं। मनुष्य लोकसे देवलोकको उत्तम देखकर साधु लोग श्रेष्ठ फल पानेके लिये सर्व्वस्व व्यय करके भी यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते हैं; और मनुष्योंका गृह अनेक प्रकारको समृद्धियोंसे परिपूरित होनेपर भी यदि उसमें यज्ञ आदि कर्म्म न हों, तो देवता लोग उस स्थानको श्मशानके समान देखते हैं। जीव लोकमें कर्म्महीन मनुष्यको तृप्ति लाभ नहीं होती और केवल दैवकुमार्गी मनुष्योंको निवा-रित करके नहीं रख सकता; इसलिये दैवकी कुछ भी प्रभुता नहीं है। परन्तु जैसे शिष्य गुरुका अनुसरण करता है, वैसे ही दैवकर्म्म पुरुषार्थ जिन जिन विषयोंमें उत्तम रीतिसे अनुष्ठित होता है, उन्हीं विषयोंमें भाग्यको उत्पत्ति हुआ करती है। जब यत्नके सहारे पुरुषको कार्य्य सिद्धि होती है, तब लोग कहते हैं, कि "दैवकी अनुकूलतासे यह कार्य्य सिद्ध हुआ है।" हे मुनिसत्तम! मैंने यथार्थ रूपसे योगयुक्त दृष्टिके द्वारा अनुभव करके तुम्हारे समीप यह सब पुरुषार्थका फल वर्णन किया है। भाग्यके उदय होने तथा पूरी रीतिसे कर्म्म आरम्भ करने अर्थात् शास्त्रविहित कर्म्मसे लोकमें स्वर्गपथ प्राप्त हुआ करता है।

६ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! मैं आपसे प्रश्न करता हूं, आप शुभ कर्म्मोंका फल मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतकुल धुरन्धर युधिष्ठिर! बहुत अच्छा, तुमने मुझसे जो पूछा है, मैं तुम्हारे समीप वही विषय कहता हूं। मरनेके अनन्तर दूसरा शरीर मिलनेपर जिस कर्म्मसे जो चिरेप्सित फल प्राप्त होता है, ऋषियोंके उस रहस्य विषयको सुनो। जो पुरुष जिस जिस शरीरसे जो जो कर्म्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता

है अर्थात् मनके द्वारा किये हुए कर्म्मोंके फल स्वप्नकालमें मनके ही सहारे भोगे जाते हैं और शरीरके द्वारा जो कर्म्म किये जाते हैं, वे जाग्रत अवस्थामें शरीरसे ही भोगे जाते हैं। मनुष्य, बालक, युवा अथवा आपद वा निरापद अवस्थामें जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता है। इस जन्ममें पञ्च इन्द्रियोंके द्वारा नित्यके किये हुए कर्म्म कभी निष्फल नहीं होते ; वे पांचों इन्द्रियें और छठवां आत्मा सदा उस कर्म्म करनेवालेके साक्षी हुआ करते हैं। अभ्यागत पुरुषके विषयमें कोमल दृष्टि करे, सत्य और प्रिय वचन कहे, उसका अनुगमन करे और उसकी उपासना करनी चाहिये, यही पञ्च दक्षिणायुक्त यज्ञ है। जो लोग अनचीन्हे तथा मार्गके थके हुए पथिकको उत्तम अन्नदान करते हैं, उन्हें अपरिमित पुण्यफल मिलता है। वाणप्रस्थ व्रताचारी कुशापर शयन करनेवाले मनुष्योंको गृह तथा शय्या आदि प्राप्त होती हैं और चीरवल्कलधारी योगयुक्त तपस्वियोंको वस्त्र, आभूषण, वाहन, यान आदि फलस्वरूपसे प्राप्त हुआ करते हैं, अग्निके समीप शयन करनेवाले लोगोंको राजाका पौरुष प्राप्त होता है ; रसोंको प्रतिसंहार करनेसे सौभाग्य हुआ करता है। मांसको प्रतिसंहार करनेसे पशु और पुत्र प्राप्त होते हैं, जो अवाक्शिरा होकर लटकते रहते हैं और जो लोग जलमें निवास करते हैं, तथा जो पुरुष सदा अकेले ही शयन करते अर्थात् ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन किया करते हैं, वे लोग अभिलषित गति पाते हैं। जो लोग अतिथिपूजाके लिये पाद्य, अर्घ, आसन, दीपक, अन्न, अवलम्ब-स्थान दान करते हैं, वे पञ्चदक्षिणा यज्ञके फलभागी होते हैं, जो लोग रणभूमिमें वीरासन और वीरशय्यापर शयन करते हैं, उनके सर्व्वकामप्रद लोक अक्षय होते हैं। हे महाराज ! दान करनेसे धन लाभ होता है ; मौन रहनेसे अविच्छिन्न आज्ञा प्राप्त हुआ करती है, तपस्यासे उपभोग और ब्रह्मचर्य्यके द्वारा दीर्घ जीवन लाभ होता है ; अहिंसासे ऐश्वर्य्य और आरोग्य भोग प्राप्त होता है ; फलमूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता खानेवालोंको स्वर्ग मिलता है। हे महाराज ! योगयुक्त होके बैठनेवालोंके लिये सर्व्वत्र सुख वर्द्धित हुआ करता है। जो लोग केवल शाक भोजन करके नियम अवलम्बन करते हैं, वे लोग गोसमूहसे पूजित होते हैं। तृणभोजी मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करते हैं। स्त्री सहवास परित्याग करके जो लोग नियमपूर्व्वक तीन बार स्नान करते तथा वायु पीके रहते हैं, वे सत्य संकल्पफल लाभ करते हैं। सत्यके द्वारा स्वर्ग मिलता है, और यज्ञके सहारे उत्तम कुलमें जन्म हुआ करता है। जो संस्कारयुक्त ब्राह्मण जलशायी होते हैं उनके अविच्छिन्न अग्निहोत्र सम्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रोंको सिद्ध करते हैं, उन्हें राज्य मिलता है। अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे स्वर्गलोकमें वास होता है। हे राजन् ! बारह वर्षके यज्ञमें उपवास व्रतके लिये ब्राह्मणको दूध आदि पाना व्रत है, और क्षत्रीको यवागूका आहार ही व्रत है, वैश्यको आमिक्षा आहार ही व्रत और अभिषेक अर्थात् बारह वर्षकाल तीर्थ भ्रमण व्रत करनेसे वीर स्थान स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। मनुष्य सब वेदोंको पढ़नेसे सदाके लिये दुःखोंसे छूट जाता है ; मानसिक धर्म्माचरण करनेसे स्वर्ग लोक मिलता है। नीचबुद्धि पुरुषोंसे जो दुस्त्यज्य है, पुरुषके बूढ़े होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होता तथा जो प्राणान्तिक रोग स्वरूप है, उस तृष्णाको जो लोग त्यागते हैं, वे सुखी हुआ करते हैं। जैसे सहस्र गौओंके बीच बछड़ा अपनी माताको खोज लेता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म्म

करनेके समय ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंका वध करते हुए क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। ब्रह्मर्षि वैशम्पायन अज्ञान वशसे ब्रह्महत्या करके भी बालक वध निबन्धनसे क्या दैवके द्वारा निवारित नहीं हुए थे। और पुण्य भी किसी किसी पुरुषके परित्राणका हेतु नहीं होता, पहिले समयमें राजर्षि नृग महायज्ञमें ब्राह्मणोंको गोदान करके भी गिरगिट योनिको प्राप्त हुए थे। युन्धमार राजर्षि यज्ञ करते ही करते जराग्रस्त हुए, वह देवताओंके दिये हुए वरको परित्याग करके गिरिव्रजमें निद्रित हुए थे, यज्ञका फल नहीं पाया। महाबली पराक्रमी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन आदिने पाण्डवोंका राज्य हर लिया था, परन्तु पाण्डवोंने अपने भुजबलसे उस हृत राज्यको फिर ले लिया; उसमें दैव कुछ भी कारण नहीं है। तप नियमसे युक्त संशितव्रती मुनि लोग क्या दैवबलसे ही शाप दिया करते हैं? क्या कर्म वशसे वे लोग अभिशाप नहीं देते? लोकमें अत्यन्त दुर्लभ सहस्र वस्तु पापी पुरुषोंको प्राप्त होके फिर उसे परित्याग किया करती हैं, लोभ मोहसे युक्त मनुष्योंका दैव कभी परित्राण नहीं कर सकता जैसे बहुत थोड़ी अग्नि वायुके द्वारा बढ़के महान् होती है, वैसे ही कर्म संयुक्त दैव उत्तम रीतिसे वर्द्धित हुआ करता है। जैसे तेलके नष्ट होनेसे दीपकका नाश होता है, वैसे ही कर्म नष्ट होनेसे भाग्य भी नष्ट होजाता है। इस लोकमें कर्महीन मनुष्य बहुतसा धन, उपभोग विषय और स्त्रियोंको पाके भी उपभोग करनेमें समर्थ नहीं होते; और सदा उद्योगी मनुष्य भाग्यके सहारे वच्यमाण पृथ्वीमें पड़ी हुई निधि भी पाते हैं। सदाप्रिय देवता लोग व्ययशाली साधु पुरुषोंके सदाचारके निमित्त संशय करते हैं, अर्थात् अपना भाग ग्रहण करनेके लिये उसे ही उपजीव्य किया करते हैं। मनुष्य लोकसे देवलोकको उत्तम देखकर साधु लोग श्रेष्ठ फल पानेके लिये सर्वस्व व्यय करके भी यज्ञ करनेमें प्रवृत्त होते हैं; और मनुष्योंका गृह अनेक प्रकारकी समृद्धियोंसे परिपूरित होनेपर भी यदि उसमें यज्ञ आदि कर्म न हों, तो देवता लोग उस स्थानको श्मशानके समान देखते हैं। जीव लोकमें कर्महीन मनुष्यका तृप्ति लाभ नहीं होती और केवल दैवकुमार्गी मनुष्योंको निवारित करके नहीं रख सकता; इसलिये दैवकी कुछ भी प्रभुता नहीं है। परन्तु जैसे शिष्य गुरुका अनुसरण करता है, वैसे ही दैवकर्म पुरुषार्थ जिन जिन विषयोंमें उत्तम रीतिसे अनुष्ठित होता है, उन्हीं विषयोंमें भाग्यकी उत्पत्ति हुआ करती है। जब यत्नके सहारे पुरुषको कार्य्य सिद्धि होती है, तब लोग कहते हैं, कि "दैवकी अनुकूलतासे यह कार्य्य सिद्ध हुआ है।" हे मुनिसत्तम! मैंने यथार्थ रूपसे योगयुक्त दृष्टिके द्वारा अनुभव करके तुम्हारे समीप यह सब पुरुषार्थका फल वर्णन किया है। भाग्यके उदय होने तथा पूरी रीतिसे कर्म्म आरम्भ करने अर्थात् शास्त्रविहित कर्म्मसे लोकमें स्वर्गपथ प्राप्त हुआ करता है।

६ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे भरतश्रेष्ठ पितामह! मैं आपसे प्रश्न करता हूं, आप शुभ कर्म्मोंका फल मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, हे भरतकुलधुरन्धर युधिष्ठिर! बहुत अच्छा, तुमने मुझसे जो पूछा है, मैं तुम्हारे समीप वही विषय कहता हूं। मरनेके अनन्तर दूसरा शरीर मिलनेपर जिस कर्म्मसे जो चिरेप्सित फल प्राप्त होता है, ऋषियोंके उस रहस्य विषयको सुनो। जो पुरुष जिस जिस शरीरसे जो जो कर्म्म करता है, वह उस ही शरीरसे उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता

है अर्थात् मनके द्वारा किये हुए कर्म्मोंके फल स्वप्नावस्थामें मनके ही सहारे भोगे जाते हैं और शरीरके द्वारा जो कर्म्म किये जाते हैं, वे जाग्रत अवस्थामें शरीरसे ही भोगे जाते हैं। मनुष्य, बालक, युवा अथवा आपद वा निरापद अवस्थामें जो शुभाशुभ कर्म्म करता है, जन्म जन्म उस ही अवस्थामें उन कर्म्मोंका फल भोग किया करता है। इस जन्ममें पञ्च इन्द्रियोंके द्वारा नित्यके किये हुए कर्म्म कभी निष्फल नहीं होते, वे पांचों इन्द्रियें और छठवां आत्मा सदा उस कर्म्म करनेवालेके साक्षी हुआ करते हैं। अभ्यागत पुरुषके विषयमें कोमल दृष्टि करे, सत्य और प्रिय वचन कहे, उसका अनुगमन करे और उसकी उपासना करनी चाहिये, यही पञ्च दक्षिणायुक्त यज्ञ है। जो लोग अनचीन्हे तथा मार्गके थके हुए पथिकको उत्तम अन्नदान करते हैं, उन्हें अपरिमित पुण्यफल मिलता है। वाणप्रस्थ व्रताचारी कुशापर शयन करनेवाले मनुष्योंको गृह तथा शय्या आदि प्राप्त होती हैं और चीरवल्कलधारी योगयुक्त तपस्वियोंको वस्त्र, आभूषण, वाहन, यान आदि फलस्वरूपसे प्राप्त हुआ करते हैं, अग्निके समीप शयन करनेवाले लोगोंको राजाका पौरुष प्राप्त होता है; रसोंको प्रतिसंहार करनेसे सौभाग्य हुआ करता है। मांसको प्रतिसंहार करनेसे पशु और पुत्र प्राप्त होते हैं, जो अवाक्शिरा होकर लटकते रहते हैं और जो लोग जलमें निवास करते हैं, तथा जो पुरुष सदा अकेले ही शयन करते अर्थात् ब्रह्मचर्य्य व्रत अवलम्बन किया करते हैं, वे लोग अभिलषित गति पाते हैं। जो लोग अतिथिपूजाके लिये पाद्य, अर्घ, आसन, दीपक, अन्न, अवलम्ब-स्थान दान करते हैं, वे पञ्चदक्षिणा यज्ञके फलभागी होते हैं, जो लोग रणभूमिमें वीरासन और वीरशय्यापर शयन करते हैं, उन्हें सर्व्वकामप्रद लोक अक्षय होते हैं। हे महाराज! दान करनेसे धन लाभ होता है; मौन रहनेसे अविच्छिन्न आज्ञा प्राप्त हुआ करती है, तपस्यासे उपभोग और ब्रह्मचर्य्यके द्वारा दीर्घजीवन लाभ होता है; अहिंसासे ऐश्वर्य्य और आरोग्य भोग प्राप्त होता है; फलमूल भोजन करनेवालोंको राज्य और पत्ता खानेवालोंको स्वर्ग मिलता है। हे महाराज! योगयुक्त होके बैठनेवालोंके लिये सर्व्वत्र सुख वर्णित हुआ करता है। जो लोग केवल शाक भोजन करके नियम अवलम्बन करते हैं, वे लोग गोसमूहसे पूजित होते हैं। तृणभोजी मनुष्य स्वर्गगामी हुआ करते हैं। स्त्री सहवास परित्याग करके जो लोग नियमपूर्व्वक तीन बार स्नान करते तथा वायु पीके रहते हैं, वे सत्य संकल्पल लाभ करते हैं। सत्यके द्वारा स्वर्ग मिलता है, और यज्ञके सहारे उत्तम कुलमें जन्म हुआ करता है। जो संस्कारयुक्त ब्राह्मण जलशायी होते हैं उनको अविच्छिन्न अग्निहोत्र सम्पन्न हुआ करते हैं। जो लोग गायत्री आदि मन्त्रोंको सिद्ध करते हैं, उन्हें राज्य मिलता है। अनशन व्रत अवलम्बन करनेसे स्वर्गलोकमें वास होता है। हे राजन्! बारह वर्षके यज्ञमें उपवास व्रतके लिये ब्राह्मणको दूध आदि पीना व्रत है, और क्षत्रीको यवागूका आहार ही व्रत है, वैश्यको आमिक्षा आहार ही व्रत और अभिषेक अर्थात् बारह वर्षकाल तीर्थ भ्रमण व्रत करनेसे और स्थान स्वर्गसे भी श्रेष्ठ ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। मनुष्य सब वेदोंको पढ़नेसे सदाके लिये दुःखोंसे छूट जाता है; मानसिक धर्म्माचरण करनेसे स्वर्ग लोक मिलता है। नीचबुद्धि पुरुषोंसे जो दुस्त्यज्य है, पुरुषके बूढ़े होनेपर भी जो जीर्ण नहीं होता तथा जो प्राणान्तिक रोग स्वरूप है, उस तृष्णाको जो लोग त्यागते हैं, वे सुखी हुआ करते हैं। जैसे सहस्र गौओंके बीच बछड़ा अपनी माताको खोज लेता है, वैसे ही पहलेके किये हुए कर्म्म

कर्त्ताका अनुगमन किया करते हैं। जैसे अप्रेरित फल और फूल अपने समयको अतिक्रम नहीं करते, पहिलेके किये हुए कर्म्म भी वैसे ही हैं। बूढ़े पुरुषोंके केश झड़ जाते, दांत गिर जाते, दोनों नेत्र और दोनों कान जीर्ण होजाते हैं, परन्तु एकमात्र तृष्णा कभी जीर्ण नहीं होती। जिन कर्म्मोंसे पिताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके द्वारा प्रजापति प्रसन्न होते हैं, और जिसके द्वारा माताको प्रसन्न किया जाता है, उसहीके सहारे पृथ्वी पूजित होती है। जिन कर्म्मोंसे गुरुको प्रीति युक्त किया जाता है, उससे ब्रह्म पूजित होता है, पिता, माता और गुरु, ये तीनों ही जिससे आदरयुक्त होते हैं, उसके सब धर्म्म ही आदृत होते हैं, और ये तीनों जिससे अनादृत होते हैं, उसकी समस्त क्रिया ही निष्फल होती है।

श्री वैशम्पायन मुनि बोले, कुरुप्रवीर पुरुष भीष्मके ऐसे वचनको सुनके विस्मित हुए और उस समय वे लोग प्रसन्नचित्त तथा प्रीतियुक्त हुए थे। जैसे जिगीषा आदिके निमित्त मन्त्रका उच्चारण निष्फल होता है, जैसे बिना दक्षिणाके सोमयाग निष्फल होजाता है, जैसे बिना मन्त्रके होमसे कोई कार्य्य सिद्ध नहीं होता अर्थात् इन तीनोंसे जो पाप हुआ करता है, मिथ्या बोलनेवालेको वह सब पाप प्राप्त होता है। हे महाराज! शुभाशुभ फलकी प्राप्तिके निमित्त यह मैंने ऋषियोंके कहे हुए समस्त विषय वर्णन किया अब कौनसा विषय सुननेकी इच्छा करते हो?

७ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे भारत! पूज्य कौन है? किसे नमस्कार करना चाहिये; आप किन लोगोंको नमस्कार करते हैं। यह सब तथा आप जिन लोगोंकी स्पृहा करते हैं, वह सब वृत्तान्त मेरे समीप वर्णन करिये; अथवा आपदायुक्त होनेपर भी आपका मन जिसमें अनुरक्त रहता है, मनुष्य लोक तथा परलोकमें जो कुछ हितकर हो, उसे ही वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जिन लोगोंका, आत्मप्रत्यय ही स्वर्ग स्वाध्यायसाधन ही तपस्या और ब्रह्म ही परम धन है, मैं उन ब्राह्मणोंकी ही सदा स्पृहा किया करता हूं; जिनके बालक और बूढ़े पितर पितामहके भारको उठाया करते हैं और अवसन्न नहीं होते, मैं उन्हीं लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं। हे तात युधिष्ठिर! विद्याविनयसे सम्पन्न, दान्त, कोमल वचन कहनेवाले, शास्त्र ज्ञान और सच्चरित्रसे युक्त ब्रह्मवित् साधु पुरुषोंकी सभाके बीच हंसके जल परित्याग करके दूध पीनेकी भांति आत्मानात्म विचार करके वचन बोलते रहनेपर उनके मङ्गलमय मनोहर बादलके दिव्य शब्दसमान पूरी रीतिसे कहे हुए सब वचन सुनाई देते हैं, सेनायुक्त राजाके समीप कहे हुए वे सब वचन इस लोक और परलोकमें सुखदायक हुआ करते हैं। विज्ञानगुणसे युक्त सभाके बीच सम्मानभाजन जो सब मनुष्य सदा साधुओंके कहे हुए वचनोंको सुनते हैं, मैं उन लोगोंकी भी बड़ाई किया करता हूं। हे युधिष्ठिर! जो लोग श्रद्धापूर्व्वक उन ब्राह्मणोंको तृप्त करनेके निमित्त उत्तम, पवित्र और सुगन्धयुक्त अन्न दान करते हैं, मैं उन लोगोंकी स्पृहा किया करता हूं। रणभूमिमें संग्राम करनेमें अनायास ही सामर्थ्य होती है, परन्तु असूयारहित भावसे दान करना सहज नहीं है। हे युधिष्ठिर! इस लोकमें सैकड़ों शूरवीर पुरुष हैं, जिनकी गिनती करनेके समय दानवीर ही सबसे श्रेष्ठ होता है, हे प्रियदर्शन! तप और विद्यामें रत धर्म्मकी गति सत्कुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंका तो कहना ही क्या है, मैं जन्मान्तरमें कुत्सित् ब्राह्मणकुलमें [illegible]

भीष्म बोले, हे भरतश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र! इस लोकमें तुमसे बढ़के मेरे दूसरा कोई भी प्रिय नहीं है, परन्तु ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं। हे कुरुसत्तम! जब ब्राह्मण लोग तुमसे भी मेरे अधिक प्रिय हैं तो इस ही सत्यके प्रभावसे मैं उन लोकोंमें गमन करूंगा, जहांपर मेरे पिता शान्तनु विराजमान हैं। ब्राह्मणोंसे बढ़के पिता, पितामह और दूसरे सुहृद लोग भी मेरे अधिक प्रिय नहीं हैं। इस लोकमें ब्राह्मणोंके निकट मुझे किसी फल पानेकी आशा नहीं है, पूज्य समझके ही देवतोंकी भांति मैं उनकी पूजा किया करता हूं; साधुकार्य्यमें मैं तनिक तथा अधिक परिमाणमें फलकी आशा नहीं करता।

हे शत्रुतापन! कर्म्म, मन और वचनसे मैंने ब्राह्मणोंको जो कुछ आराधना की है, इस समय शरशय्यामें पड़े रहनेपर भी मैं उस ही ब्राह्मण पूजाके प्रभावसे दुःखित नहीं हुआ। प्राचीन लोगोंने मुझे ब्राह्मण जातिके पराभव करनेमें असमर्थ कहा है, मैं उसही वचनसे सन्तुष्ट हुआ हूं, यह समस्त पवित्रतासे भी परम पवित्रता कहके वर्णित हुआ है। हे तात! मैं सब लोकोंको ही पवित्र और निर्म्मल देखता हूं, मैं ब्राह्मणोंका दास हूं, इसलिये शीघ्र ही सदाके लिये उन पवित्र लोकोंमें गमन करूंगा। हे युधिष्ठिर! जैसे इस लोकमें पति ही स्त्रियोंके लिये देवता है, वैसे ही ब्राह्मण ही क्षत्रियोंके देवता और ब्राह्मण ही क्षत्रियोंकी गति है; इसके अतिरिक्त क्षत्रियोंके लिये दूसरी कोई गति नहीं है। सौ वर्षकी अवस्था वाला क्षत्रिय और दश वर्षकी अवस्थावाला उत्तम ब्राह्मण पिता पुत्र रूपसे मालूम होते हैं, इन दोनोंके बीच ब्राह्मण ही गुरु हैं। जैसे स्त्री पतिके अभावमें देवरको पति तुल्य मानती है, वैसे ही पृथ्वी ब्राह्मणके अभावमें क्षत्रियको अपना स्वामी समझती है। हे कुरुसत्तम! इस- लिये क्षत्रियोंको चाहिये कि पुत्रकी भांति ब्राह्मणोंकी रक्षा करें, ब्राह्मण गुरु समान पूजनीय और अग्निकी भांति उपचारके योग्य हैं, इसलिये सरल साधु सत्यशील सब प्राणियोंके हितमें रत रहनेवाले क्रुद्ध विषैले सर्प समान ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करनी योग्य है।

हे युधिष्ठिर! तेज और तपस्यासे सदा भय करना उचित है, तपोबल और तेजोबल दोनों ही परित्याज्य हैं। क्षत्रियोंके तेज और ब्राह्मणोंकी तपस्या इन दोनोंके फल अत्यन्त तीव्र हैं। हे महाराज! परन्तु तेजस्वी क्षत्रियकी अपेक्षा तपस्वी ब्राह्मण क्रुद्ध होने पर शीघ्रही मनुष्योंका नाश करते हैं। अक्रोधी ब्राह्मणके निकट प्रयोग किया हुआ तेज और तप, ये दोनों ही अधिक होने पर भी खण्डित होते हैं, और दोनों ही यदि शेष करें, तो क्षमा रागके द्वारा खण्डित तेजका जो कुछ अंश शेष रहेगा, वह निःशेष न करनेपर भी अवश्य ही निःशेष होगा। जैसे गोपाल सदा हाथमें दण्ड लेकर गौवोंको पालन करता है, वैसेही क्षत्रिय राजा ब्राह्मण और वेदोंकी सब प्रकारसे रक्षा करे। जैसे पिता पुत्रोंको पालन करता है, वैसेही धर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंकी रक्षा करे और उन लोगोंके गृह तथा जीविका निर्व्वाहके योग्य कोई वस्तु है वा नहीं, उसे जान लिया करे, यदि कोई वस्तु न हो, तो उसे दान करे।

८ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे महातेजस्वी धार्म्मिक- श्रेष्ठ पितामह! जो सब दुराचारी मनुष्य ब्राह्मणोंको दान देनेका सङ्कल्प करके फिर मोहके वशमें होकर नहीं देते हैं, भविष्यमें उनकी कैसी दशा होती है, आप यथार्थ रीतिसे यह धर्म्म मेरे समीप वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जो पुरुष थोड़ी अथवा अधिक वस्तु दान करनेका सङ्कल्प करके फिर उसे

दान नहीं करता, उसकी सब आशा इस प्रकार नष्ट होजाती है, जैसे नपुंसक पुरुषके पुत्रकी लालसा नष्ट होती है। हे भारत! जीव जिस समय जन्मता और जिस समय नष्ट होता है, उस जन्म और मृत्युके मध्यकाल अर्थात् जीवनके समयमें उसका जो कुछ सुकृत होता है, तथा वह जो कुछ होम, दान और तपस्या करता है,—उस पुरुषके वे सभी कर्म्म निष्फल हुआ करते हैं। हे भरतश्रेष्ट! धर्म्मशास्त्र जाननेवाले पुरुष परम युक्तिवती बुद्धिसे विचार करके उक्त वचन कहा करते हैं और वे लोग यह भी कहते हैं, कि एक हजार श्याम कर्ण घोड़े दान करनेसे इसका प्रायश्चित्त होता है, इस अश्वके कार्य्यका अनुष्ठान असाध्य है, इसीसे पाप नष्ट नहीं होता। हे भरतनन्दन! प्राचीन लोग इस विषयमें सियार और बन्दरके सम्वाद युक्त यह पुराना इतिहास कहते हैं,—हे शत्रुतापन! पहिले मनुष्य जन्ममें वे दो भाई थे। इस समय दूसरे जन्ममें एक सियार योनि और दूसरा बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ था। अनन्तर बन्दरने सियारको श्मशानके बीच मरे मनुष्योंका मांस भक्षण करते हुए देखकर पूर्व्वजाति स्मरण करके कहा, कि तुमने पहिले जन्ममें ऐसा कौनसा दारुण पापकर्म्म किया था, जिसके फलसे इस श्मशानमें निन्दनीय मृतक शरीरको भक्षण करते हो। सियार उस समय ऐसा वचन सुनके बन्दरसे बोला, मैंने ब्राह्मणोंको देनेको कहके उन्हें दान नहीं किया था। हे शाखाविहारी! इस ही निमित्त मैं पापयोनिको प्राप्त हुआ हूं और उसही कारणसे भूखा होकर इस प्रकार निन्दित भक्ष्य भक्षण करता हूं।

भीष्म बोले, हे नरोत्तम! सियारने फिर बन्दरसे कहा, तुमने क्या पापकर्म्म किया था, जिसके फलसे बन्दर हुए हो।

बन्दर बोला, मैं सदा ब्राह्मणोंका फल खाया करता था, इस ही कारण बन्दर योनिमें उत्पन्न हुआ हूं, इसलिये विद्वान् पुरुषोंको उचित है, कि ब्राह्मणोंकी वस्तुको हरण न करें। ब्राह्मणोंके सङ्ग विवाद करना योग्य नहीं है और उन्हें देनेको कहके अवश्य दान देना उचित है।

भीष्म बोले, हे महाराज! पहिले जब मेरे गुरु यह ब्राह्मणकी कथा कह रहे थे, तब उनके मुखसे मैंने इस विषयको सुना था। हे नरनाथ! जब धर्म्मज्ञ व्यासदेव पवित्र और प्राचीन इतिहास कह रहे थे, तब उनके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी थी। हे पाण्डव! फिर ब्राह्मणोंके विषयमें श्रीकृष्णके मुखसे भी मैंने यह कथा सुनी है; ब्राह्मणोंका धन हरना उचित नहीं है, सदा उन लोगोंके विषयमें क्षमा करनी चाहिये। चाहे ब्राह्मण बालक हो, दरिद्र हो अथवा कृपण ही होवे, उसकी कदापि अवमानना न करनी चाहिये; ब्राह्मण लोग मुझे सदा ऐसा ही उपदेश दिया करते हैं, ब्राह्मणोंके समीप देनेका सङ्कल्प करके उन्हें दान देना ही उचित है, ब्राह्मणोंकी आशाको निष्फल करना योग्य नहीं है। हे पृथ्वीपाल! ब्राह्मण लोग पहिलेकी की हुई आशासे जलती हुई अग्निकी भांति समृद्ध हुआ करते हैं। हे महाराज! वे पहिलेकी आशासे संयुक्त होके क्रोधपूर्व्वक जिसकी ओर देखते हैं, उसे इस प्रकार भस्म किया करते हैं, जैसे अग्नि तृण काठ प्रभृतिको जला देती है और जब वेही प्रसन्न होकर प्रशान्त वचनसे जिसे अभिनन्दित करते हैं, उसका राज्यचिकित्सकके समान होता है, उसके निकट कोई आपदा नहीं रहती, पुत्र, पौत्र, बन्धु, बान्धव, मन्त्री, पुर और प्रजा, सबको ही वह पुरुष शक्तिके अनुसार उत्तम रीतिसे पालन करता है; पृथ्वीपर सहस्र किरणवाले सूर्य्यके तेज समान ब्राह्मणोंका यह परम तेज दीख पड़ता है। हे भरतसत्तम युधिष्ठिर! यदि कोई उत्तम जाति प्राप्त

योगियोंकी इच्छा करे, तो उसे योग्य है, कि ब्राह्मणोंके निकट देनेका सङ्कल्प करके दान करे। ब्राह्मणोंको दान देनेसे अत्यन्त उत्तम अक्षय स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ होता है, इसलिये दानके समान महत् कार्य्य और कुछ भी नहीं है। इस लोकमें दान करनेसे देवता और पितर लोग जीवन धारण किया करते हैं, इसलिये ज्ञानवान् मनुष्य ब्राह्मणोंको देने योग्य वस्तु दान करे; क्यों कि ब्राह्मण ही दानका पात्र है, हे भरतश्रेष्ठ! ब्राह्मण ही महत् तीर्थरूपसे वर्णित होते हैं; इसलिये किसी समयमें ही ब्राह्मण अपूजित होकर गमन न करें।

९ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, हे राजऋषि! उपकारकी इच्छा करके जो लोग उपकार करते हैं, वैसी मित्रता और उपकारकी इच्छा न करके जो पुरुष उपकर्त्ता बनते हैं, वैसी मित्रतासम्बन्धके वशमें होकर यदि कोई पुरुष नीचजातिको उपदेश करे, तो उसे कुछ दोष होता है, वा नहीं? हे पितामह! जिससे मनुष्य लोग मोहित होते हैं, वह धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है; इसलिये ऊपर कहे हुए विषयको यथार्थ रूपसे मैं सुननेकी इच्छा करता हूं।

भीष्म बोले, हे महाराज! पहले ऋषियोंने इस विषयका वर्णन किया था, मैंने जिस प्रकार सुना है, उसको तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। किसी नीच जातिको उपदेश करना उचित नहीं है, क्यों कि ऐसा शास्त्रमें वर्णित है, कि वैसे मनुष्यको उपदेश करनेसे उपदेश करनेवालेको महान् दोष होता है। हे भरतश्रेष्ठ युधिष्ठिर! पहले समयमें दुःखस्थ नीचके विषयमें उक्त वचनका यह प्रमाण है, मैं कहता हूं, तुम सुनो। हिमालयके पवित्र स्थानमें ब्रह्माश्रमके निकट एक पवित्र आश्रम है, वह अनेक प्रकारके वृक्ष गुल्म और लताओंसे परिपूरित, हरिण और पक्षियोंसे सेवित, सिद्ध-चारणोंसे युक्त और फूले हुए वनसे शोभित रहनेसे अत्यन्त रमणीय था; वह स्थान बहुतेरे ब्रह्मचारी और वाणप्रस्थ पुरुषोंसे परिपूर्ण था, सूर्य्य तथा अग्निके समान तेजस्वी ब्राह्मण लोग वहां सदा निवास करते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! वह आश्रम नियम व्रतसंयुक्त, दीक्षित, मिताहारी शुद्धचित्तवाले तपस्वियोंसे परिपूरित था। हे भरतप्रवर! वह तपस्या और अध्ययनके शब्दसे निनादित तथा बहुतेरे वालखिल्य वा सन्न्यासियोंसे निषेवित था। पहले समयमें प्राणियोंके अभय निबन्धनसे दयायुक्त होकर कोई शूद्र सन्न्यास धर्म्म अवलम्बन करके भली भांति उत्साहपूर्व्वक उस आश्रममें उपस्थित हुआ। शूद्र सन्न्यासीको आश्रममें आया हुआ देखके तपस्वियोंने उसका बहुत आदर किया। हे भारत! वह उन मुनियोंको देवताओंके समान महातेजस्वी और अनेक प्रकारके नियमोंसे युक्त देखके अत्यन्त हर्षित हुआ। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर उसके मनमें यह विचार हुआ कि "मैं तपस्या करूं" हे भारत! तब वह कुलपतिके दोनों चरणोंको पकड़के बोला, हे द्विजवर! मैं आपकी कृपासे धर्म्म जाननेकी अभिलाष करता हूं हे भगवान्! इसलिये आप मुझसे धर्म्म कहने और परित्याग करानेके उपयुक्त हैं। हे सत्तम! मैं नीचवर्ण शूद्र जाति हूं, इससे आपकी सेवा करनेकी इच्छा करता हूं, आप मुझ दीनके ऊपर प्रसन्न होइये।

कुलपति बोले, सन्न्यासी चिन्ह धारण करके शूद्र इस स्थानमें निवास करनेमें समर्थ नहीं होता, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो इस आश्रममें वास करो और सेवा करनेमें तत्पर रहो, सेवासे सहारे निःसन्देह उत्तम लोकोंको पाओगे।

भीष्म बोले, हे महाराज! जब मुनिने उस

शूद्रसे ऐसा कहा, तब उसने बोला, कि "मैं इस स्थानमें क्या करूंगा? मुझे धर्म्मनिष्ठामें श्रद्धा है, मैं अपना प्रियकार्य्य करूंगा, इस ही प्रकार मालूम होवे" अनन्तर उसने उस आश्रमसे दूर जाके एक कुटी बनाई और वहां पूजाके निमित्त वेदी, शयन करनेका स्थान तथा देवताओंका स्थान बनाया। हे भरतश्रेष्ठ! उसने उस ही कुटीमें प्रवेश करके नियमनिष्ठ होकर मौनव्रत अवलम्बन किया। वह शूद्र सन्न्यासी त्रिसन्ध्या स्नान करके देवस्थानमें नियम पूर्व्वक बलि और होम करके उनकी पूजा करता था, संकल्पित नियमनिष्ठ और जितेन्द्रिय होके फल भोजन करता तथा औषधि और फलसे सदा निकटवर्त्ती अतिथियोंकी यथावत् पूजा करता था। इस ही प्रकार उसका बहुत समय व्यतीत हुआ।

अनन्तर कोई मुनि उस शूद्र सन्न्यासीको देखनेके लिये उसके आश्रममें उपस्थित हुए। उसने उस ऋषिसे स्वागत प्रश्न करके भली भांति विधिपूर्व्वक पूजा करके उन्हें सन्तुष्ट किया। परम तेजस्वी संशितव्रती धर्म्मात्मा ऋषि उसके सङ्ग अनुकूल वचन कहके जिस निमित्त आये थे, वह उसके समीप वर्णन किया, हे भरतश्रेष्ठ नरनाथ! इस ही प्रकार वह ऋषि उस शूद्र सन्न्यासीको देखनेके लिये बार बार उसके आश्रम पर आते थे। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर शूद्र उस तपस्वीसे बोला, मैं पितृकार्य्य करूंगा, आप इस विषयमें मेरे ऊपर कृपा करिये। हे भारत! ब्राह्मणने उसका वचन स्वीकार किया, तब शूद्र पवित्र होकर ऋषिके निमित्त पाद्य ले आया। हे भरतश्रेष्ठ! अनन्तर दाभ और वनकी औषधि, पवित्र आसन तथा व्रती पुरुषोंके लिये आसन लाया। अनन्तर दक्षिण दिशाको आवरण करके अन्यायपूर्व्वक व्रतीका आसन पश्चिमाग्र रूपसे रखा गया था, उसे देख कर ऋषिने उस शूद्रसे कहा, "इस आसनको पूर्व्वशीर्ष करो और तुम पवित्र तथा उदङ्मुख होकर बैठो।" जब ऋषिने ऐसा कहा तब शूद्रने वैसा ही किया। धर्म्ममार्गमें गमन करनेवाला मेधावी शूद्र दाभ, अर्घ हव्यकव्य आदिसे जिस प्रकार पितर कार्य्य करना योग्य था, वह सब उस तपस्वी ऋषिके वचनके अनुसार पूरा किया, जब उसका पितृकार्य्य पूरा हुआ, तब ब्राह्मणने उसके समीपसे विदा होकर प्रस्थान किया।

अनन्तर वह शूद्र तपस्वी बहुत समयतक तपस्याचरण करके वनके बीच पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। हे तात! महातेजस्वी शूद्र उस पूर्व्वजन्मके पुण्य सञ्चयसे महाराजवंशमें उत्पन्न हुआ और वह विप्रर्षि उस ही समयमें भरके पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए। हे भरतश्रेष्ठ! इस ही प्रकार वह शूद्र और मुनि उस स्थानमें उत्पन्न होके दोनों ही धीरे धीरे बर्द्धित होकर विद्याविषयमें दक्ष होगये। ऋषि अथर्व्व वेद तथा ऋक्, यजु और साम, इन तीनो वेदोंमें सुशिक्षित हुए, तथा सूत्रोक्त यज्ञ प्रयोग और ज्योतिषशास्त्रके भी पारदर्शी हुए, सांख्य शास्त्रमें भी उनकी परम प्रीति विशेषरूपसे वृद्धिको प्राप्त हुई। इधर पिताके परलोकमें गमन करनेपर राजपुत्र भी पवित्र चरित्रवाली प्रजासमूहसे अभिषिक्त होकर पृथ्वीपति हुआ। उसने अभिषिक्त होकर उस ऋषिको अपना पुरोहित बनाया।

हे भरतश्रेष्ठ! राजा उसे पुरोहित बनाके परम सुखसे वास करने लगा, वह धर्म्मपूर्व्वक प्रजापालन करते हुए राज्य शासन करता था, वह राजा सदा धर्म्मकर्म्ममें पुण्याहवाचनके समय पुरोहितको देखकर उपहास करके हंसता था। पुरोहित बार बार उस राजाको उपहास करते हुए देखकर क्रुद्ध हुआ। अनन्तर पुरोहितने एक समय एकान्त स्थानमें राजाके सङ्ग मिलके अनुकूल वचनसे उसे प्रसन्न किया। हे भरतर्षभ! फिर उस पुरोहितने राजासे कहा, हे महातेजस्वी! मेरी यह इच्छा

है, कि आप मुझे एक वरदान करिये । राजा बोला, हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं आपको एक सौ वर प्रदान करूं, अथवा एक ही वर दूं ? प्रीति और बहुमान वससे आपको देनेके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है ।

पुरोहित बोला, हे महाराज । यदि आप प्रसन्न हुए हों, तो मैं एक वर मांगता हूं, आप प्रतिज्ञा करके सत्य वचन कहना, मिथ्या न बोलना ।

भीष्म बोले, हे युधिष्ठिर । राजाने उससे कहा 'ऐसा ही होगा' परन्तु यदि मुझे मालूम होगा, तो मैं कहूंगा और यदि न मालूम होगा, तो न कह सकूंगा ।

पुरोहित बोला, प्रतिदिन धर्म्मकार्य्यके उपलक्षमें पुण्याहवचनके समय और शान्ति तथा होमके समयमें आप मेरी ओर देखके किस निमित्त हंसते हैं । आपके हंसनेसे मेरा मन अत्यन्त लज्जित होता है । हे महाराज । मैं इसका कारण जाननेके लिये अपना अङ्ग स्पर्श कराके आपसे शपथ कराता हूं कि आप मिथ्या न कहें । आपकी हंसी अकारण न होती होगी, इसमें अवश्य ही कुछ स्पष्ट कारण है ; इसलिये इस विषयमें मुझे अत्यन्त ही कौतूहल हुआ है ; आप यथार्थ रीतिसे इस विषयको मेरे समीप वर्णन करिये ।

राजा बोला, हे विप्र । आपने जब इस प्रकार कहा है, तब मेरे पक्षमें यह विषय न कहने योग्य होनेपर भी मैं अवश्य कहूंगा, आप चित्त एकाग्र करके सुनिये । हे द्विजश्रेष्ठ ! पूर्व्वजन्ममें जो कुछ हुआ था, उसे कहता हूं, सुनो । हे द्विजसत्तम ! पूर्व्वजन्ममें मैं अत्यन्त तपस्यायुक्त शूद्र था, उस समयमें आप भी उग्र तपस्यावाले ऋषि थे । हे पापरहित ब्रह्मन् । उस समय आपने प्रसन्न होकर पितृकार्य्यके निमित्त मुझे उपदेश दिया था । हे मुनिसत्तम ! पहले मेरे उस पितृकार्य्यके विषयमें व्रतीके आसन, दाभ और हव्य-कव्य आदि सब वस्तुओंका आपने जिस प्रकार मुझे उपदेश दिया था, मैंने उसहीके अनुसार सब कार्य्य किया था, इस ही कर्म्मदोषसे आप मेरे पुरोहित कुलमें उत्पन्न हुए हैं और मैं राजा हुआ हूं । हे विप्रवर । इससे कालकी उलटी गति देखिये, मैं शूद्र होके भी जातिस्मर हुआ हूं और आप मुनि होनेपर भी पुरोहित हुए हैं; आपने जो मुझे उपदेश दिया था, उसका यही फल प्राप्त हुआ है । हे द्विजश्रेष्ठ ! इस ही कारणसे मैं आपको देखकर हंसता हूं, आपका उपहास करनेके लिये मैं नहीं हंसता ; क्यों कि आप मेरे गुरु हैं । इस उलटी गतिको देखकर मुझे जो दीनता हुई है, उसहीसे मेरा अन्तःकरण दुःखित होता है, मैं जातिको स्मरण करता हूं, इस ही लिये आपको देखकर हंसता हूं । इस ही प्रकार उपदेश करनेसे आपकी दारुण तपस्या नष्ट हुई है, इसलिये आप पुरोहितका कार्य्य परित्याग करके अगाडीके वास्ते प्रयत्न करिये । हे द्विज । जिससे कि आप इससे भी बढ़के दूसरी कोई अधम योनि न पावें । हे सत्तम ! आप इस विपुल वित्तको ग्रहण करके पुण्यात्मा होइये ।

भीष्म बोले, अनन्तर वह विप्र राजाके समीपसे बिदा मांगके ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, भूमि और ग्राम दान किया । ब्राह्मणोंके कहे हुए कृच्छ्र व्रतका अनुष्ठान करके तीर्थोंमें गमन करके ब्राह्मणोंको गोदान तथा अनेक भांतिकी वस्तु दान देकर पवित्र चित्त होकर आत्मवान हुआ और उस ही आश्रममें जाकर बृहत् तपस्याचरण करने लगा । हे राजसत्तम ! अनन्तर उस ब्राह्मणने उन आश्रमवासी ऋषियोंमें सम्मत होकर परम सिद्धि पाई । हे नृपसत्तम । इस ही प्रकार वह ऋषि परम कृच्छ्रको प्राप्त हुआ था, इसलिये ब्राह्मणोंको उचित है, कि किसी नीच वर्णके पुरुषको उपदेश न दें । हे महा

राज! ब्राह्मण सदा ही उपदेश देनेसे विमुख रहें, उपदेश देनेसे उन्हें क्लेश मिलता है। हे नृपसत्तम! ब्राह्मणको योग्य है, कि सदा वचनको संयम कर रखे, इस लोकमें हीनवर्णवाले पुरुषसे कुछ भी न कहे। हे महाराज! ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनोंवर्ण द्विजाति हैं, इन्हें उपदेश करनेसे ब्राह्मण कदापि दूषित नहीं होता है; परन्तु किसीके निकट कुछ भी न कहना। साधुओंका मुख्य कर्त्तव्य कार्य्य है, क्यों कि धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है इसहीसे वह अकृतात्म पुरुषोंको नहीं मालूम होती, इसही कारणसे मुनि लोग आदरयुक्त होके भी मौनव्रत अवलम्बन करते हैं; यदि कुछ वचन कहनेसे दोषी होना पड़े, इस ही भयसे वे लोग कुछ भी नहीं कहते। धार्म्मिकगण, तथा सत्य और सरलतायुक्त मनुष्य भी न कहने योग्य वचन कहनेसे पापभागी होते हैं। इसलिये कदापि किसीके विषयमें उपदेश करना उचित नहीं है, ब्राह्मण लोग जिसे उपदेश करते हैं, उसके पापके फलभागी होते हैं, इसलिये धर्म्मकी इच्छा करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषको उचित है, कि विचारके वचन कहे। वाणिज्य और धनके लाभसे जो उपदेश किया जाता है, वह उपदेश करनेवालेको अवश्य ही नष्ट करता है। पूछने पर विशेष निश्चय करके बोलना उचित है। जिससे धर्म्म प्राप्त हो, वैसा ही उपदेश करना चाहिये। यह मैंने तुम्हारे प्रश्नके अनुसार सब वृत्तान्त कहा और उपदेश भी किया, अधम पुरुषको उपदेश देनेसे अत्यन्त क्लेश प्राप्त होता है, इसलिये इस लोकमें वैसे पुरुषोंको उपदेश करना उचित नहीं है।

१० अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! कैसे पुरुष अथवा कैसी स्त्रीमें कमलालक्ष्मी सदा निवास करती है? आप मुझसे यही कहिये।

भीष्म बोले, इस विषयमें जैसी घटना हुई थी और मैंने जिस प्रकार सुना है, तथा श्रीकृष्णके निकट रुक्मिणीने लक्ष्मीसे जो प्रश्न किया था, उसे तुम्हारे समीप कहता हूं, सुनो। प्रद्युम्नकी माता नारायणके अङ्कवासिनी रुक्मिणी कमलवर्ण प्रकाशमान लक्ष्मीको उत्तम प्रकार नेत्रसे देखकर कौतूहलवशसे प्रश्न किया। हे महर्षि कल्पे! त्रिलोकेश्वर कान्ते! इस लोकमें तुम कैसे मनुष्यके निकट हाथी घोड़ेके रूपसे तथा धीरज सुन्दरताई वा पराक्रम आदि रूपसे निवास करती हो और कैसे लोगोंके समीप नहीं जाती? इस विषयको मेरे समीप यथार्थ रीतिसे वर्णन करो। जब गरुड़ध्वजके सम्मुखमें रुक्मिणी देवीने लक्ष्मीसे ऐसा प्रश्न किया, तब वह चन्द्रमुखी प्रसन्न होकर उत्तम और मधुरवचन कहने लगी।

लक्ष्मी बोली, हे सुभगे! मैं प्रतिभावन, निरालसी, कार्य्यदक्ष, क्रोधरहित, देवताओंकी आराधनामें निष्ठावान, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय और उद्योगी पराक्रमी पुरुषके निकट सदा निवास किया करती हूं, और जो पुरुष कार्य्य करनेमें समर्थ नहीं है, जो नास्तिक, वर्णसङ्कर करनेवाले, कृतघ्न, भिन्न चरित्री, निठुर वचन बोलनेवाले, चोर और गुरुजनोंकी असूया करनेवाले है;—उनके निकट कदापि निवास नहीं करती। और जो लोग अल्पपराक्रमी, अल्प बलवाले, अल्प बुद्धि तथा अल्प मानयुक्त हैं, जो किसी विशिष्ट पुरुषके निकट क्लेश पाते और क्रोध करते हैं, वैसे गुप्त-मनोरथी अर्थात् जो एक विषयकी चिन्ता करते हुए दूसरे विषयमें जा पड़ते हैं, वैसे मनुष्योंके समीप में कभी स्थित नहीं होती। इसके अतिरिक्त जो पुरुष अपनी किसी प्रकारकी उन्नतिकी इच्छा नहीं करते, जिनका अन्तरात्मा स्वभावहीसे उपहत हुआ है, उन अल्प सन्तोषवाले मनुष्योंके निकट मैं पूरीरीतिसे निवास नहीं करती। स्वधर्म्ममें विश्वासवान्,

प्रवीण, गुरुओंकी सेवामें रत रहनेवाली, दान्त, कृतात्मा, क्षमाशील, सत्यस्वभाव, सरल, देवता ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाली स्त्रियोंमें मैं निवास करती हूं। जिसके गृहकी सामग्रियें इधर उधर बिखरी रहती हैं जो स्त्री बिना विचारे कार्य्य करती है, सदा पतिके विषयमें प्रतिकूलवादिनी हुआ करती है, जो पराये गृहमें वास करनेमें अनुरक्त तथा लज्जाहीन होती है, मैं वैसी स्त्रीको परित्याग किया करती हूं। और पतिव्रता, कल्याणशीला, विभूषित, सत्यवादिनी, प्रियदर्शना, सौभाग्ययुक्त और गुणमयी स्त्रीके निकट मैं सदा निवास करती हूं। और दयारहित, अपवित्र, अवलेहिनी अर्थात् सदा शयन करनेवाली स्त्रीको मैं परित्याग किया करती हूं। सब प्रकारकी सवारियें, कन्यासमूह, विभूषण, यज्ञस्थान, वृष्टियुक्त मेघमण्डल, फूले हुए कमलदलों, शरदकालके नक्षत्रों, गजयूथ, गो-समूह आसन और प्रकाशमान उत्पल और कमलयुक्त तालावों, अधिक कहांतक कहूं, समस्त रमणीक वस्तुओंमें ही मैं निवास किया करती हूं। हंस और सारस आदिके शब्दसे निनादित वृक्षोंसे शोभित, तपस्वी सिद्ध और ब्राह्मणोंसे निषेवित, अधिक जलयुक्त, सिंह तथा हाथियोंसे परिपूरित नदियोंमें मैं सदा निवास करती हूं। मतवाले हाथियों, गऊ, वृषभ, राजसिंहासन, सत्पुरुषों और जिस स्थानमें मनुष्य अग्निमें होम करते हैं, अथवा गऊ ब्राह्मण वा देवताओंकी पूजा करते हैं, उस स्थानमें मैं सदा निवास करती हूं। सदा स्वाध्यायमें रत रहनेवाले ब्राह्मणों, सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले क्षत्रिय, कृषिकार्य्यमें अनुरक्त वैश्यों और प्रतिदिन सेवाकार्य्यमें रत शूद्रोंके निकट मैं निवास किया करती हूं। मैं नारायणके निकट एकाग्रचित्त और मूर्त्तिमती होकर आदरके सहित सदा निवास किया करती हूं, उन्हींमें उत्तम महान् धर्म ब्रह्मण्य और प्रियत्व सदा प्रतिष्ठित है। हे देवि! मैं नारायणके अतिरिक्त दूसरे स्थानमें मूर्त्तिमती होकर निवास नहीं करती, इस समय यह नहीं कह सकती, कि मैं जिस पुरुषके निकट आदरके सहित निवास करती हूं वह धर्म, अर्थ और कामसे वर्द्धित होता है।

११ अध्याय समाप्त।

युधिष्ठिर बोले, हे राजन्! स्त्री-पुरुषोंके परस्पर संयोगसे नैषयिक सुख किसे अधिक होता है, इस संशयके विषयको आप यथावत् कहनेमें समर्थ हैं।

भीष्म बोले, पहले समयमें भङ्गास्वन राजाके सहित इन्द्रको जो शत्रुता हुई थी, प्राचीन लोग इस विषयमें उस ही पुराने इतिहासका प्रमाण दिया करते हैं। हे पुरुषप्रवर! पहले समयमें भङ्गास्वन नामक अत्यन्त धार्म्मिक एक राजर्षि था। वह पुत्ररहित था, इसलिये पुत्रके निमित्त यज्ञ किया था। उस महाबलवान राजऋषिने इन्द्रके द्वेषी अग्निष्टुत यज्ञ करना आरम्भ किया अर्थात इस यज्ञमें इन्द्रकी प्रधानता न रहनेसे उनका इस यज्ञसे द्वेष था। त्रिगुणित अग्निहोम यज्ञमें अग्निदेव ही केवल स्तुत होकर पुत्र प्रदान करते हैं, इस ही निमित्त इसका नाम वेदमें अग्निष्टुत कहके प्रसिद्ध है। मनुष्योंको पुत्रकी कामनासे प्रायश्चित करनेके समय अग्निष्टुत ही इष्ट हुआ करता है। हे राजन्! महाभाग सुरश्वर इन्द्र उस यज्ञको होता हुआ जानके सावधान चित्तसे उस राजर्षिका छिद्र अन्वेषण करनेमें प्रवृत्त हुए; परन्तु किसी प्रकार भी उस महात्माका कोई छिद्र न देख सके। कुछ समयके अनन्तर राजा मृगया खेलने गया, तब इन्द्रने यही उत्तम समय समझके उसे मोहित करना आरम्भ किया। राजा इन्द्रके द्वारा मोहित होकर अकेले ही घोड़ेसे

सहारे भ्रमण करते हुए भूख प्याससे पीड़ित होकर दिशाको न जान सका। महाराजने परिश्रमसे प्यासा होकर इधर उधर भ्रमण करके निर्म्मल जलसे पूरित एक मनोहर तालाब देखा। उसने उस ही तालाबपर जाके पहिले घोड़ेको जल पिलाया और पानी पिलाके घोड़ेको एक वृक्षमें बांधकर जलमें स्वयं स्नान किया, स्नान करते ही स्त्री होगया। राजा अपनेको स्त्री रूपधारी देखके राजाकी इन्द्रियें और मन उस समय अत्यन्त व्याकुल हुआ। चिन्ताकरने लगा, "मैं किस प्रकार घोड़ेपर चढ़ूं, कैसे नगरमें जाऊं, अग्निष्टुत यज्ञके सहारे मेरे महाबलवान एक सौ औरस पुत्र उत्पन्न हुए है, मैं उनसे क्या कहूंगा और पुरवासी तथा जनपद वासियोंसे ही क्या कहूंगा?" उस समय वह इन्हीं सब विषयोंको विचारने लगा। "धर्म्म तत्वार्थदर्शी ऋषि लोग कहते हैं, कि मृदुत्व, ततुत्व तथा विक्लवत्व, ये तीन स्त्रियोंके गुण है और व्यायाम् कठोरताई और बीर्य्य ये तीन पुरुषोंके गुण है; इस समय मेरा सब पौरुष बिनष्ट हुआ, न जाने किस कारणसे क्लिन्न उत्पन्न हुआ? क्लिन्न निबन्धन अब फिर घोड़ेपर चढ़नेका मैं किस प्रकार उत्साह करूं। यह सब बिचारके राजा अत्यन्त यत्न पूर्व्वक घोड़ेपर चढ़के फिर स्त्रीरूपसे नगरमें आया। उसके पुत्र, स्त्रियें, पुरवासी तथा जनपद-वासियोंने यह क्या हुआ? ऐसा ही सोचकर बिस्मययुक्त हुए।

अनन्तर उस स्त्रीरूपी वक्तृप्रवर राजर्षिने कहा, मैं सेनाके सहित मृगयाके लिये गया था, दैव बशसे मार्ग भूलकर एक घोर बनमें प्रविष्ट हुआ, उस भयङ्कर बनके बीचमें प्याससे आर्त्त हुआ था, अनन्तर वहांपर पक्षियोंसे परिपूरित एक मनोहर तालाब दीख पड़ा; उसमें स्नान करते ही दैव बशसे मेरा ऐसा रूप होगया है। वह राजा पत्नी और मन्त्रियोंको अपना नाम गोत्र सुनाकर अन्तमें कुमार बालकोंसे बोला हे पुत्रगण! मैंने राजा होके खिन्न लाभ किया है, इसलिये बनमें गमन करता हूं, अब तुम लोग परस्पर प्रीतिपूर्व्वक राज्यभोग करो। उसने अपने एक सौ पुत्रोंसे ऐसा कहके बनमें गमन किया; बनमें जाके वह एक तपस्वीके आश्रममें पहुंचके उसके समीप निवास करने लगा। उस आश्रममें तपस्वीके द्वारा उसके गर्भसे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उसने उन पुत्रोंको सङ्ग लेके पहिलेके पुत्रोंके निकट आके कहा। तुम लोग मेरी पुरुष अवस्थाके पुत्र हो और मेरे स्त्रित्व प्राप्त होनेपर ये सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं। हे पुत्रगण! इसलिये तुम लोग इनके सङ्ग मिलके राज्य भोग करो।

अनन्तर वे सब भाई मिलके उस समय राज्य भोग करने लगे। देवराजने उन लोगोंको भ्रातृभावसे उत्तम प्रकार राज्यभोग करते हुए देखकर क्रुद्ध होके मनमें सोचा, कि मैंने तो इस राजर्षिका उपकार ही किया है, इसका अपकार तो कुछ भी न हुआ। अनन्तर शत-क्रतु इन्द्र ब्राह्मणका रूप धरके उस नगरमें जाकर राजपुत्रोंका भेदित करनेमें प्रवृत्त हुए। उन्होंने कहा, जो लोग एक पिताके पुत्र हैं, वैसे भाइयोंमें भी सौभ्रात नहीं रहता, कश्यपके पुत्र देवता और असुर लोग परस्पर बिबाद किया करते है। तुम लोग भङ्गास्वन राजाके पुत्र हो, और ये लोग तपस्वीके पुत्र हैं; जब कि देवता और असुर दोनों कश्यपके पुत्र होनेपर भी राज्यके निमित्त बिवाद किया करते हैं, तब तपस्वीके पुत्र जो तुम्हारे पैतृक राज्यको भोग करते हैं, यह अत्यन्त ही आश्चर्य है। राजपुत्र लोग इन्द्रके द्वारा भेदित होनेपर युद्धमें परस्पर एक दूसरेका नाश करते हुए सब नष्ट होगये। तपस्विनी यह वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त दुःखित होके रोदन करने लगी। इन्द्र ब्राह्मण वेष धरके उस तापसीके निकट

आकर बोली, हे ब्राह्मण! तुम किस दुःखसे सन्तापित होकर रोदन कर रहे हो? उस अवस्थामें उस समय ब्राह्मणको देखकर महा करुणायुक्त स्वरसे कहा, हे ब्रह्मन्। मेरे दो सौ पुत्र कालवशसे नष्ट होगये हैं। हे विप्रवर! पहिले मैं राजा था, उस समय मेरे समान रूपवान एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, अनन्तर किसी समय मैं मृगयाके निमित्त गृहसे निकलके घने वनमें मार्ग भूल गया, हे द्विजोत्तम। उस वनके बीच एक तालावमें स्नान करनेसे मैं स्त्री होगया। अनन्तर पुत्रोंको राज्य देकर जब मैं स्त्री होकर वनके बीच इस आश्रममें आई, तब महानुभाव तपस्वीके द्वारा मेरे एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, मैं उन्हें नगरमें लेगई थी। हे द्विजवर। कालक्रमसे मेरे उन सब पुत्रोंमें वैर उत्पन्न हुआ; मैं दैवके द्वारा पुत्ररहित होकर इस समय शोककर रही हूं। इन्द्रने उसे दुःखित देखकर कठोर वचन कहा, हे भद्रे। पहिले मेरे अधिष्ठित रहनेपर भी मुझे आह्वान न करके इन्द्रद्विष्ट अग्निष्टोम यज्ञ करके तुमने मेरे चित्तमें अत्यन्त दुःख उत्पन्न किया था। हे दुर्बुद्धे! मैं वही इन्द्र हूं मैंही तुम्हारे विषयमें वैरका पलटा ले रहा हूं। उस समय राजऋषि इन्द्रको देख उनके दोनों चरणोंपर अपना सिर रखके बोले, हे देवश्रेष्ठ! आप प्रसन्न होइये, मैंने पुत्रकी इच्छासे यज्ञ किया था, उस विषयमें मुझपर क्षमा करनी उचित है। इन्द्र उसकी विनतीसे सन्तुष्ट होके वरदान करनेके लिये उद्यत होके बोले, हे राजन्! तुम्हारे स्त्री शरीरसे जो सब पुत्र उत्पन्न हुए थे, अथवा पुरुष देहसे जिन पुत्रोंने जन्म ग्रहण किया था उनके बीच कौनसे पुत्र जीवित होवें, वह तुम मुझसे कहो। अनन्तर तापसी सावधान होकर हाथ जोड़के इन्द्रसे बोली, हे इन्द्र! मेरे स्त्री होनेपर जो एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए हैं, वेही जीवित होवें। तब इन्द्रने विस्मित होके उस स्त्रीसे पूछा, कि पुरुष शरीरके उत्पन्न हुए पुत्र तुम्हें अप्रिय क्यों हुए? और स्त्री होनेपर जो सब पुत्र जन्मे हैं, उनके ऊपर तुम्हारा अधिक स्नेह क्यों है? मैं उसका कारण सुननेकी इच्छा करता हूं, इसलिये इस विषयको तुम्हें मेरे समीप वर्णन करना उचित है।

स्त्री बोली, हे देवराज। स्त्रीकी स्नेह अधिक होता है, पुरुषका वैसा नहीं होता, इसही लिये मेरी स्त्री अवस्थामें जो सब पुत्र उत्पन्न हुए हैं वेही जीवित होवें।

भीष्म बोले, इन्द्र उस तापसीका वचन सुनके प्रीतिपूर्व्वक बोले, हे सत्यवादिनी! तुम्हारे सब पुत्र ही जीवित होवें। हे उत्तम व्रत करनेवाली राजेन्द्र। पुरुषत्व अथवा स्त्रीत्व, इन दोनोंमेंसे जो इच्छा हो, वह वर मांग लो।

स्त्री बोली, हे इन्द्र! मैं स्त्रीत्वकी ही अभिलाष करती हूं, पुरुषत्वकी इच्छा नहीं करती। देवराजने ऐसा वचन सुनके फिर उससे कहा, हे महाराज! तुमने पुरुषत्वको परित्याग करके किस लिये स्त्रित्वकी इच्छा की? स्त्रीरूपधारी राजाने देवराजका ऐसा वचन सुनके उत्तर दिया, हे देवेन्द्र। पुरुषके संयोगसे स्त्रीको ही अधिक प्रसन्नता हुआ करती है, यह सत्य है, कि स्त्री शरीरमें ही रतिका अधिक सुख मिलता है, मैं स्त्रीभावमें ही सन्तुष्ट हूं। हे देवराज! आपकी जहां इच्छा हो, वहां जाइये। इन्द्र बोले, ऐसा ही हो' यह वचन कहके उस तापसीका आमन्त्रण करके देवलोकमें चले गये। हे महाराज! इसी प्रकार स्त्रीका पुरुषमें अधिक वैषयिक सुख वर्णित हुआ है।

१२ अध्याय समाप्त।

महाराज युधिष्ठिर बोले, लोकयात्राके हितार्थी अर्थात् ऐहिक शिष्ट व्यवहार और

पारलौकिक कल्याणकी इच्छा करनेवाले हितैषी मनुष्यको इस विषयमें क्या करना चाहिये और कैसे स्वभावसे युक्त होके लोक-यात्रा निबाहे।

भीष्म बोले, शरीरसे तीन, वचनसे चार और मानससे तीन इन दश प्रकारके कर्म्मोंको परित्याग करे। प्राणिहिंसा, चोरी और परस्त्री हरण ये तीनों शारीरिक पाप परित्यागके योग्य हैं। हे राजेन्द्र! ग्रामवार्त्तादि, निठुर वचन कहना, राज द्वारमें पराये दोष प्रकट करना, असत्प्रलाप वा मिथ्या अर्थात् दूसरेको पीड़ित करनेवाला मिथ्या वचन, इन चार प्रकारके पापोंकी जल्पना और चिन्ता न करे अर्थात् 'ऐसा कहूंगा' यह मनमें भी न सोचे परधनकी चिन्ता, दूसरेकी बुराईकी चिन्ता करना और बाद विषयमें नास्तिकता, ये तीनों पाप कर्म्मोंको मनसे परित्याग करना चाहिये। परस्व विषयकी चिन्ता न करनी, सब जीवोंमें सुहृद्भाव और कर्म्म फलका अस्तित्व स्वीकार मन ही मन इन त्रिविध विषयोंका आचरण करे। इसलिये मनुष्य वचन, शरीर और मनके द्वारा अशुभ आचरण न करे, शुभ वा अशुभ कर्म्म करनेसे उसका फल भोगना पड़ता है।

१३ अध्याय समाप्त।

राजा युधिष्ठिर बोले, हे गङ्गानन्दन पितामह! आपने जगत्पति महेश्वरके नामोंको सुना है, इसलिये इस समय उस ही जगन्नियन्ता अन्तर्यामी विशाल विश्वरूप महाभाग सुरासुर गुरु जगत्की उत्पत्ति और लयके कारण स्वयम्भू देवके नामोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करिये।

भीष्म बोले, जो देव सर्व्व उपादान निबन्धनसे सर्व्वगत होके भी सर्व्वत्र नहीं दीख पड़ता, उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूं। जो विराट्स्वरूपाकार वा प्राणका उपादान तथा निमित्त कारण है, ब्रह्मा आदि देवता और पिशाच प्रभृति जिसकी उपासना करते हैं, पञ्चतन्मात्र अहङ्कार महत् अव्यक्त विश्वकारण प्रकृतिके परम हेतु भोक्ता पुरुषसे भी परतर रूपसे योगवित् तत्वदर्शी ऋषि लोग जिसका ध्यान किया करते हैं। जो अपरिणामी परब्रह्म, अव्याकृत कारण, रज्ज् सर्पवत् भासमान होके भी अनिर्व्वचनीय है। जिसने अपने तेजप्रभावसे माया और उसमें प्रतिबिम्बित चैतन्यको प्राणि-कर्म्मानुरोधसे साम्यावस्थामें स्थापित करते हुए निज सत्तामें स्फूर्त्ति प्रदान करके ब्रह्माको उत्पन्न किया है। जब कि उस देवोंके देवसे प्रजापति उत्पन्न हुए हैं, तब गर्भ जन्म जरायुक्त मृत्यु सम्पन्न कौन मनुष्य उस धीमान् महादेवके गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ होगा। हे तात! शङ्खचक्र गदाधारी नारायणके अतिरिक्त मेरे समान कोई मनुष्य उस परमेश्वरको नहीं जान सकता। ये गुणोंमें श्रेष्ठ परम दुर्ज्जय दिव्य दृष्टि महातेजस्वी विद्वान् विष्णु योगनेत्रके सहारे उसे देख सकते हैं। रुद्र भक्तिके हेतु महात्मा कृष्णके द्वारा समस्त जगत् व्याप्त होरहा है। हे भारत! बदरिकाश्रममें इन्होंने उस ही देवको प्रसन्न करके दिव्य दृष्टि महेश्वरके प्रभावसे उस समय सब लोकोंके बीच भोगरूप वस्तुओंसे भी प्रियतरत्व प्राप्त किया है। इस ही कृष्णने पूरी रीतिसे एक हजार वर्षतक तपस्या की थी, चराचर गुरु वरददेव शिवको प्रसन्न करके कृष्णने युगयुगमें महेश्वरको सन्तोषयुक्त किया है और इस महात्माकी परम भक्तिसे महादेव प्रसन्न हुए हैं। जगद्योनि महादेवका जैसा ऐश्वर्य है, उसका इस अच्युत हरिने पुत्रके निमित्त साक्षात् दर्शन किया है। हे भारत! उससे परे मैं और किसीको भी नहीं देखता; ये महाबाहु कृष्ण ही उस महादेवके नामोंको अशेषरूपसे कह सकेंगे

हैं, वेही उस भगवान्के गुणोंको वर्णन करनेमें समर्थ हैं, हे महाराज ! येही महेश्वरकी सत्यविभूतिको विस्तारपूर्व्वक वर्णन करनेके उपयुक्त हैं।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, महायशस्वी भीष्म पितामह उस समय भव-महात्म्यविषयमें ऐसा कहके वासुदेवसे कहने लगे।

भीष्म बोले, हे सुरासुर गुरु विष्णुदेव ! विश्वरूप शिवके उद्देश्यसे युधिष्ठिरने मुझसे जो प्रश्न किया है, तुम उस विषयको वर्णन करनेमें समर्थ हो। शिवके एक हजार नाम जो कि पहले ब्रह्मलोकमें ब्रह्माके समीप ब्रह्मयोनि तपस्वीके द्वारा वर्णित हुए थे, द्वैपायन आदि उत्तम व्रत करनेवाले दान्त तपस्वी ऋषि लोग तुम्हारे मुखसे उन नामोंको सुनें, कूटस्थ आनन्दमय कर्त्तृस्वरूप कर्म्मफल दान करके रक्षा करनेवाले विश्वस्रष्टा गार्हपत्य अग्निस्वरूप मुण्डी अर्थात् यथार्थमें निस्पृह कपर्द्दी उपाधिवशसे चूड़ाविशिष्ट विश्वेश्वरका ऐश्वर्य्य वर्णन करिये।

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हिरण्यगर्भ आदि तथा इन्द्रके सहित समस्त देवता लोग और महर्षिवृन्द ईश्वरके कर्म्मोंकी गतिको यथार्थ रूपसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं। सूक्ष्मदर्शी इन्द्रियादिदेववृन्द जिसका द्वादशाख्य स्थानको नहीं जान सकते, वह साधुओंकी गतिस्वरूप ईश्वर मनुष्योंको किस प्रकार मालूम होगा। इसलिये मैं आपके निकट उस व्रतपूर्व्वक किये हुए यज्ञोंके फल देनेवाले असुरनाशक भगवानके कुछ गुणोंको यथार्थ रीतिसे वर्णन करूंगा।

श्रीवैशम्पायन मुनि बोले, भगवान् कृष्ण इस ही प्रकार उस धीमान् महात्माके गुणोंका वर्णन कर जल स्पर्श करके पवित्र होकर कहने लगे।

श्रीकृष्ण बोले, हे द्विजेन्द्रगण ! हे तात धर्म्मराज ! हे गाङ्गेय ! आप भी इस समय कपर्द्दीके नामोंको सुनिये। पहले मैंने शाम्बके निमित्त जिन सब अत्यन्त दुष्कर नामोंको प्राप्त किया था, उसे ही बखान करूंगा। पहले मैंने समाधिके द्वारा उस भगवान्का दर्शन किया था। बुद्धिमान् रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्नके द्वारसे शम्बरासुरके मारे जानेपर बारह वर्षके अनन्तर जाम्बवतीने मुझसे कुछ कहनेकी इच्छा की। हे धर्म्मराज ! वह रुक्मिणी पुत्र प्रद्युम्न और चारु देष्णा आदिको देखकर पुत्रकी कामना करके मेरे निकट आके बोली, हे अच्युत ! तुम थोड़े ही समयके बीच शीघ्र ही मुझे शूर, बलवान कान्तरूप और अकल्मष अपने समान पुत्र प्रदान करो। हे यदुकुल धुरन्धर ! तीनों लोकोंके बीच तुम्हें कुछ भी अप्राप्य नहीं है, इच्छा करनेसे तुम दूसरे लोकोंकी सृष्टि कर सकते हो। तुमने बारह वर्षका व्रत करके शरीर सुखाकर महादेवकी आराधना करके रुक्मिणीमें जिन पुत्रोंको उत्पन्न किया है अर्थात् चारुदेष्णा सुचारु, चारुवेश, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और शम्भु, ये सब सुन्दर तथा पराक्रमी पुत्र जैसे रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं; हे मधुसूदन ! वैसे ही मुझे भी एक पुत्र प्रदान करो। जाम्बवतीका ऐसा वचन सुनके मैंने उस सुन्दरीसे कहा, हे रानी ! तुम अनुमति दो, मैं तुम्हारे वचनको प्रतिपालन करूंगा, उसने मुझसे कहा, तुम विजय और मङ्गलके निमित्त प्रस्थान करो। हे यादव ! ब्रह्मा, शिव काश्यप, नदियें, मनके अनुगामी सब देवता, अग्नि, क्षेत्रज्ञ, ओषधियें, छन्दसमूह, ऋषिवृन्द, सब पर्व्वत, समुद्र, दक्षिणा, सामपूरण स्तोभ वाक्य, तारासमूह, पितर, ग्रह, देवपत्नी, देवकन्या और देवमातृवृन्द, मन्वन्तर, गऊ, चन्द्रमा सूर्य्य, हरि, सावित्री वा ब्रह्मविद्या, ऋतु, वर्ष क्षण, लव, मुहूर्त्त, निमेष और युग पर्य्याय, ये सब जहां तुम जाओ, उस ही स्थानमें तुम्हारी रक्षा करें और तुम्हारी रक्षाके कारण होवें।

हे पाप रहित ! तुम अप्रमत्त होके निर्व्विघ्न मार्गमें गमन करो। जब उसने मेरा ऐसा स्वस्त-

बध किया, तब मैंने उन राजपुत्रोंकी अनुमति लेकर फिर पुरुषसत्तम पिता तथा माता और राजा आहुकके निकट जाके जाम्बवतीने अत्यन्त दुःखित होके मुझसे जो कुछ कहा था, उसे निवेदन करके अति कष्टसे उनकी आज्ञासे गद और महाबलवान बलदेवके निकट सब वृत्तान्त वर्णन करके उनको अनुमति मांगी। उस समय उन्होंने प्रसन्न होके कहा, तुम्हारे तपकी निर्व्विघ्न वृद्धि होवे, अनन्तर मैंने गुरुजनोंकी आज्ञा पाके गरुड़को स्मरण किया। गरुड़पर चढ़के मैं हिमालय पहाड़पर गया और वहां पहुंचके मैंने उसे बिदा किया। अनन्तर उस पर्व्वतपर आश्चर्य्यमय विषयोंको देखने लगा। वैयाघ्रपद्य गोत्र महानुभाव उपमन्युका दिव्य आश्रम जो तपस्वियोंका क्षेत्र कहके विख्यात था, मैंने उस अद्भुत और उत्तम स्थानको देखा वह आश्रम देवताओं और गन्धर्व्वोंसे पूजित तथा ब्राह्मी लक्ष्मीसे समावृत था; धव, ककुभ, कदम्ब, नारियल, कुरवक, केतकी, जामुन, पाटल, बट, बरुण, वत्सनाभ, बेल, सरल, कापत्थ, पियाल, शाल, ताल, बदरी, कुन्द, पुन्नाग, अशोक, अतिमुक्त मधुक, कोविदार, चम्पा, पनस और दूसरे अनेक प्रकारके फल और फूलोंसे युक्त वृक्षोंसे घिरा हुआ था। वह आश्रम पुष्प, गुल्म और लताओंसे परिपूरित, केलेके खम्भोंसे शोभित, विविध पक्षियोंके भोज्य फल और वृक्षोंसे अलंकृत, यथायोग्य स्थानमें रखी हुई भस्मसे ढकी हुई अग्निसे विभूषित, रुरु बन्दर शार्दूल सिंह हरिन बर्हिण मार्जार भुजगन्द्र और तरक्षोंसे परिपूर्ण, अनेक प्रकारके मृगसमूह भैंसे और वृक्षोंसे निषेवित सकृत् प्रभृति हाथियोंसे विभूषित अनेक प्रकारके प्रहृष्ट पक्षियोंसे सेवित और बादलके समान उत्तम फूले हुए वृक्षोंसे विचित्र बोध होता था, वहांपर विविध पुष्पोंकी सुगन्धियुक्त दिव्य स्त्रियोंके संगीत समान सुखस्पर्श युक्त वायु बह रही थी। हे वीर! वह स्थान जलधारा निनाद, पक्षियोंकी बोली, हाथियोंके मनोहर चिग्घाड़, किन्नरोंके उदार गीत और साम-गान करनेवाले ब्राह्मणोंकी पवित्र ध्वनिसे अलंकृत था; दूसरे पुरुषोंको मनसे भी अचिन्तनीय, तड़ागोंसे अलंकृत और विशाल तथा कुसुम वृत अग्निगृहोंके द्वारा उत्तम शोभासे युक्त था।

हे महाराज! वह आश्रम पवित्र जलशालिनी जन्हुनन्दिनीसे सदा सेवित और विभूषित तथा अग्निके समान तेजस्वी महात्माओंसे अलंकृत था। वायु तथा जल पीनेवाले जपमें रत मैत्री प्रभृति निश्चय करके शोधन करनेवाले ध्याननिष्ठ योगी जन और धूमपाश उष्मप और क्षीरप ब्राह्मणेन्द्रोंके द्वारा सब भांतिसे सेवित था। गोचारी अर्थात जो लोग गऊके समान मुखसे आहार किया करते हैं, अश्मकुट, दन्तोलूखलिक, मरीचिप अर्थात् चन्द्रकिरण पान करके जीवन धारण करनेवाले, फेनप, मृगचारी, अश्वत्थफल भोजी, जलमें शयन करनेवाले, चीर और चर्म्माम्बरधारी तथा वल्कल और अत्यन्त कष्टसे जो लोग उन सब नियमोंमें तत्पर रहते हैं, ऐसे अनेक प्रकारके तपस्वी मुनियोंका दर्शन करके मैंने उस स्थानमें प्रवेश करनेकी इच्छा की। हे भारत! हे राजन्! आकाशमण्डलमें चन्द्रमण्डलकी भांति वह आश्रममण्डल पुण्यकर्म्म करनेवाले महानुभाव भव आदि देवताओंसे सदा उत्तम रीतिसे पूजित होकर बिराजमान था। महातपस्वी महात्माओंके सहवास और प्रभावसे वहांपर नेवल विषधर सांपोंके साथ और बाघ मृगयूथोंके सङ्ग मित्रकी भांति क्रीड़ा करते थे। वेदवेदान्त जाननेवाले विविध नियमोंसे विख्यात द्विजवर्य्य महानुभाव महर्षियोंसे सेवित उस सर्व्वभूत मनोरम श्रेष्ठ आश्रमस्थलमें प्रवेश करते ही मैंने जटा चीरधारी तेज और तपस्याके द्वारा

अग्निके समान प्रकाशमान, शिष्योंके अनुगत शान्त यौवनसम्पन्न निग्रहानुग्रहमें समर्थ द्विजवर उपमन्युका दर्शन किया। जब मैंने सिर नीचा करके उनकी वन्दना की, तब वह मुझसे बोले, हे पुण्डरीकाक्ष ! तुमने सुखसे आगमन किया है न ? हम लोगोंकी तपस्या सफल हुई, क्यों कि तुम पूज्य होके भी हमारी पूजा करते हो और हमारे दर्शनीय होनेपर भी हम लोगोंके दर्शनकी इच्छा करते हो। मैंने हाथ जोड़के उनसे मृग, पक्षी, अग्नि, धर्म्म और शिष्योंके विषयमें अनामय प्रश्न किया।

अनन्तर भगवान उपमन्यु मुझसे परम मनोहर शान्त वचनसे बोले, हे कृष्ण ! तुम अपने समान पुत्र निःसन्देह प्राप्त करोगे। तुम उत्तम महत् तपस्या अवलम्बन करके सर्व्वनियन्ता महादेवको सन्तुष्ट करो। हे अधोक्षज ! वह देव सपत्नीक होके इस ही स्थानमें विराजमान हैं। हे जनार्द्दन ! पहिले समयमें ऋषियोंके सहित देवताओंने इस ही स्थानमें तपस्या, ब्रह्मचर्य्य सत्य और इन्द्रियनिग्रहके द्वारा उस महादेवको सन्तुष्ट करके शुभवासनाओंको प्राप्त किया था। हे शत्रुनाशन ! तुम जिसकी प्रार्थना करते हो, वह तपोनिधि और तेजके आधार अचिन्तनीय भगवान इस ही स्थानमें शुभाशुभ और संहार करते हुए अभिप्रायको उत्पन्न करनेवाली देवीके सहित विराजमान हैं।

सुमेरु पर्व्वतको कंपानेवाला जो हिरण्यकशिपु नामक दानव था, उसने महादेवकी कृपासे अर्व्बुद वर्ष पर्य्यन्त सब देवताओंका ऐश्वर्य्य पाया था। उसहीका मुख्य पुत्र मन्दर नामसे विख्यात है, उसने महादेवके वरप्रभावसे अर्व्बुद वर्षतक इन्द्रके सङ्ग युद्ध किया था। हे तात केशव ! विष्णुका वह घोरचक्र और इन्द्रका भयङ्कर वज्र पहिले समयमें उस मन्दरके अङ्गमें लगनेसे विफल हुआ था।

हे पापरहित ! पहिले समयमें भगवानने जलान्तरचर बलगर्व्वित दैत्यको मारके तुम्हें जो चक्र दिया था, तथा उस दैत्यको मारनेके लिये वृषभध्वजने जो अग्निके समान प्रकाशमान चक्र उत्पन्न किया था, भगवानने जो तुम्हें अद्भुत तेजसे युक्त दुर्द्धर्ष चक्र प्रदान किया था, पिनाकीके अतिरिक्त दूसरा कोई पुरुष उसका दर्शन नहीं कर सकता। इस ही निमित्त महादेवने उस समय कहा था, कि यह सुदर्शन होवे ; तभीसे लोकके बीच वह सुदर्शन नामसे प्रतिष्ठित होरहा है। हे तात केशव ! वह चक्र मन्दरके अङ्गमें लगके जीर्ण तृणके समान व्यर्थ हुआ था। महादेवने उस मन्दर असुरको यह वर दिया था, कि तुम सब शस्त्रोंसे अवध्य होगे, इस ही वरके प्रभावसे वह धीमान् प्रबल बलशाली असुर निज अङ्गपर चक्र और सैकड़ों वज्र आदि शस्त्रोंकी चोट सहजमें ही सह सकता था। जब बलवान मन्दरने देवताओंको अत्यन्त पीड़ित किया, तब देवताओंने महादेवके दिये हुए वरके प्रभावसे गर्व्वित दानवोंके दलको नष्ट किया था, देवताओंके बुद्धि कौशलसे वे लोग आपसमें कलह करके विनष्ट हुए।

महादेवने विद्युत्प्रभा दानवके ऊपर प्रसन्न होके उसे तीनों लोकका ऐश्वर्य्य दान किया था, वह सौ हजार वर्षतक सब लोकोंका ईश्वर हुआ था। भगवानने उसे कहा था, कि तू सदा मेरा ही अनुचर होगा और उसे सहस्र अयुत पुत्र प्रदान किया था। जन्मरहित भगवानने उसे राज्यके सहित कुशद्वीप दान किया।

अनन्तर शतमुख नामक जो महासुर ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न हुआ था और जिसने एक सौ वर्ष तक निज मांससे अग्निको तृप्त किया था, भगवान शङ्कर उसपर प्रसन्न होके बोले, मैं तुम्हारे लिये क्या करूं ? शतमुखने उनसे कहा, हे देवोंकेदेव ! आपकी कृपासे मुझमें चन्द्रमा, सूर्य्य, पर्जन्य पृथ्वी आदिकी सृष्टिकी सामर्थ्यशाली अद्भुतयोग होवे और आप मुझे

ब्रह्मविद्यासे उत्पन्न शाश्वत बल प्रदान करिये। निग्रहानुग्रहमें समर्थ भगवानने उसका वह वचन सुनके कहा, 'ऐसा ही होगा।'

स्वायम्भुवक्रतु भी पुत्रके निमित्त योगके सहारे तीन सौ वर्ष तक हिरण्य-गर्भमें आविष्ट हुए थे भगवानने उसे क्रतु परिमित सहस्र पुत्र प्रदान किया। हे कृष्ण! वेदमें वर्णित योगेश्वरको तुम निःसन्देह जानते हो। परम धार्मिक ऋषि जो याज्ञवल्क्य नामसे विख्यात हैं; वह महादेवकी आराधना करके अतुल यशस्वी हुए हैं।

पराशर पुत्र महामुनि योगिवर वेदव्यासन भी शङ्करको आराधना करके अशेष यशलाभ किया है। पहले समयमें बालखिल्य मुनियोंने देवराजके द्वारा अवज्ञात होनेसे क्रुद्ध होकर तपस्याके सहारे महादेवको सन्तुष्ट किया। जगत्पति महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले, तुम लोग तपस्याके द्वारा सोम हरनेवाले गरुड़को उत्पन्न करोगे।

पहले समयमें महादेवके क्रोधवश समस्त जल नष्ट हुआ था। महेश्वरने सप्त-कपाल अर्थात् त्र्यम्बक दैवत मन्त्रके सहारे जलको फिर उत्पन्न किया। अनन्तर महादेवके प्रसन्न होनेपर पृथ्वीमण्डलपर समस्त जल पीने योग्य हुआ था।

अत्रिमुनिकी ब्रह्मवादिनी भार्य्या पतिको परित्याग करके प्रतिज्ञा की, कि मैं अब फिर कभी किसी प्रकारसे भी उस मुनिकी वशवर्त्ती न हूंगी; ऐसा कहके वह महेश्वरकी शरणागत हुई थी। उसने अत्रिके भयसे अनाहारी होके तीन सौ वर्षतक महादेवकी कृपाके निमित्त मूषल अर्थात् लोह हलके अग्रभागमें शयन किया। महेश्वरने हंसके उससे कहा, कि रुद्रमन्त्रके प्रभावसे बिना पतिके ही तुम्हारे निःसन्देह पुत्र होगा, और वंशके बीच वह तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा।

हे मधुसूदन! भगवान भक्तिमान विकर्णने महादेवको प्रसन्न करके सिद्धि लाभ की थी। हे केशव! संशितचित्त शाकल्यने नव सौ वर्षतक मनो-यज्ञसे महादेवकी आराधना की थी। भगवान प्रसन्न होके उससे बोले, हे तात! तुम ग्रंथ कर्त्ता होगे। और तीनों लोकके बीच तुम्हारी अक्षय कीर्त्ति होगी, महर्षि कुलके द्वारा अलंकृत तुम्हारा वंश अक्षय होगा और तुम्हारा पुत्र द्विजश्रेष्ठ तथा सूत्रकर्त्ता होगा।

सतयुगमें सावर्णि नाम एक विख्यात ऋषि थे, उन्होंने इस स्थानमें छःहजार वर्षतक तपस्या की थी; भगवान रुद्रदेव स्वयं उनसे बोले, हे अनघ! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं तुम अजर और अमर होके लोकमें प्रसिद्ध ग्रन्थ-कर्त्ता होगे।

हे जनार्द्दन! पहले समयमें दिग्वासा अनुगृहीत भगवान काशीधाममें भक्तवर इन्द्रके द्वारा पूजित हुए थे, उन्होंने महादेवकी आराधना करके देवराज्य पाया।

पहले समयमें नारद मुनिने भक्ति भावसे महादेवकी आराधना की थी, देवगुरु महादेव प्रसन्न होके उनसे बोले; तेज तपस्या और कीर्त्तिके द्वारा तुम्हारे समान कोई भी न होगा, गीत और बाजेके द्वारा तुम सदा मेरे अनुगत रहोगे। हे तात! हे त्रिभुमाधव! मैंने जिस प्रकार पहले समयमें देवोंके देव पशुपतिका साक्षात् दर्शन किया था, उसे भी तुम विस्तारके सहित सुनो। हे अनघ! पहले देवोंकेदेव महादेवसे मैंने सावधान होके जिस प्रकार उन्हें प्रबोधित किया था, इस समय उसे पूरी रीतिसे कहता हूं। हे तात! पहले सत्ययुगमें वेदवेदाङ्ग जाननेवाले महायशस्वी व्याघ्रपाद नामसे विख्यात एक ऋषि थे, मैं उनका पुत्र था और धौम्य मेरा भाई था। हे माधव! किसी समय मैं धौम्यके सङ्ग खेलते हुए भावित मुनियोंके आश्रममें उपस्थित हुआ। वहांपर

मैंने किसी दूध देनेवाली गऊका दूध दूहना देखा, वह दूध अमृतके समान स्वादयुक्त मालूम हुआ।

अनन्तर बाल्यकालकी सुलभ चपलतासे मैंने अपनी मातासे कहा, हे माता। मुझे चीरयुक्त भोजन प्रदान करो। उस समय मेरी माताने दूधके अभावसे दुःखित होकर चावल पीसकर उसका पिष्ट बनाया और जलमें घोलके इसमें पीनेको दिया। हे तात माधव। मैंने पहले एक बार गऊका दूध पीया था, यज्ञके समय पिता मुझे एक महत् ज्ञातिकुलमें लेगये थे, वहां दिव्य गऊ सुरनन्दिनीका दूध झरता था, मैंने उसका वही अमृत समान दूध पीके दूधका गुण और जिस प्रकार उसकी उत्पत्ति होती है, उसे जानता था, इसलिये वह पिष्टरस मुझे रुचिकर न हुआ। हे तात। अनन्तर मैंने बाल-स्वभावके वशमें होकर उस समय अपनी मातासे कहा, हे माता! तुमने मुझे जो दिया है, वह दूध नहीं है। हे माधव। अनन्तर दुःख शोकसे युक्त माताने पुत्रस्नेहवश मुझे गोदीमें मस्तक सूंघकर बोली, हे पुत्र! सदा वनवासी कन्दमूलफल भोजन करनेवाले आत्मज्ञ ऋषियोंके आश्रममें चीरोदन कहां है? जो लोग वालखिल्यगणोंसे निषेवित दिव्य नदीको अवलम्बन किये हुए हैं, उन वनवासी और पर्व्वतनिवासी मुनियोंके निकट दूध कहांसे आवेगा? हे पुत्र! आश्रम-निवासी वायु और जल पीनेवाले तथा ग्राम्य आहारसे विरत जङ्गलके फल खानेवाले ऋषि-योंके सुरभी गोत्रसे रहित वनमें दूध नहीं है। नदी गुफा पर्व्वत और विविध तीर्थोंमें हम लोग तपस्याके द्वारा जपमें रत हुआ करते हैं, इस-लिये देवोंकेदेव महेश्वर ही हम लोगोंको परम गति हैं। हे पुत्र! अव्यय स्थाणु वरद विरूपा-क्षको बिना प्रसन्न किये चीरोदन और सुखसा-धन वस्त्र आदि कहांसे प्राप्त होंगे? हे पुत्र! इसलिये तुम्हें सब भांतिसे चित्त लगाके उन ही महादेवके शरणागत होना उचित है, उनकी कृपासे तुम सब वाञ्छनीय फल पाओगे।

हे शत्रुनाशन। माताका ऐसा वचन सुनके उस समय हाथ जोड़के विनयपूर्व्वक मैंने उससे यह वचन कहा, हे माता! वह महादेव कौन हैं? और वह किस प्रकार प्रसन्न होते हैं? वह देव किस स्थानमें निवास करता है और किस प्रकारसे उसका दर्शन किया जाता है, किस भांति वह महेश्वर सन्तुष्ट होता है; उसका कैसा रूप है? किस प्रकार लोग उसे प्रसन्न हुआ जान सकते हैं? हे माता! तुम मेरे निकट यह सब वृत्तान्त वर्णन करो।

हे कृष्ण। उस समय जब मैंने पुत्रवत्सला मातासे ऐसा वचन कहा, तब वह मेरा मस्तक सूंघकर आंसू भरे हुए नेत्रसे युक्त होकर शरीर-पर हाथ फेरकर दीनता अवलम्बन करके बोली।

माता बोली, महादेव दुर्व्विज्ञेय (शास्त्रसे जानना अशक्य है) दुराधार (शास्त्रसे ज्ञान होने पर भी मनमें धारण करना अयोग्य है। दुरावधि (ध्रियमान होनेपर भी लय विक्षेपके द्वारा सङ्कटयुक्त है,) क्योंकि वह दुरन्तक है, (अर्थात् उसमें सब बन्ध दूषित हुआ करते हैं,) विघ्नाभावमें भी वह दुर्ग्राह्य है। वह सहजमें नहीं जाना जाता और पुण्यहीन मनुष्योंका दुर्दर्श्य है (वैराग्यसे भी वह किसीके दृष्टिगो-चर नहीं होता) मनीषी लोग उसके अनेक प्रकारके रूप, विचित्र स्थान और अनेक भांतिकी प्रसन्नताके विषय कहा करते हैं, उस ईश्वरके शुभचरितोंको कौन जाननेमें समर्थ होता है? पहले समयमें देवोंकेदेव महेश्वरने जिन रूपोंको धारण किया था, तथा वह जिस प्रकार क्रीड़ा करते, जैसे प्रसन्न होते, विश्वरूप महेश्वर सब प्राणियोंके हृदयस्थ होनेपर भी भक्तोंपर कृपा करके जिस प्रकार रूप धारण करते हैं, जिस भांति उनका दर्शन किया जा सकता है, महादेवके पवित्र चरित्र कहनेवाले

मुनियोंके मुखसे उनके शुभ चरित्रोंको मैंने जिस प्रकार सुना है, हे तात ! ब्राह्मणोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त उन्होंने जो सब रूप धारण किये थे, देवताओंके कहे हुए उन सब विषयोंको संक्षेपमें सुनो। तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, वह सब वृत्तान्त मैं तुमसे कहती हूं।

माता बोली, भगवान महेश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, रुद्र, आदित्य, अश्विनीकुमार और विश्वदेवगणके रूपको धारण करते हैं। पुरुष, स्त्री, प्रेत, पिशाच, किरात, शबर और विविध जलचर तथा वनचर जीवोंका रूप धारण किया करते हैं। वह कूर्म्म, शङ्ख और प्रवालांकुर-भूषण वसन्तकाल स्वरूप होते हैं। वह देव, यक्ष, राक्षस, सर्प, दैत्य, दानव और बिलासिगणके रूपको धारण करते हैं। बाघ, सिंह, हरिन, तेंदुआ भालू, पक्षी, उल्लू और सियारोंके रूपका अवलम्बन करते हैं; वह हंस, कौआ, मोर, कृकलास, सारस, बक, गिद्ध, चक्रवाक, स्वर्णचातक तथा पर्व्वत आदिके रूपको भी धारण किया करते हैं। महादेव गऊ, हाथी, घोड़, ऊंट और खरकी आकृति भी अवलम्बन करते हैं। वह बकरे और शार्दूलके रूपको धारण करते तथा अनेक प्रकारके मृगोंका रूप अवलम्बन किया करते हैं। महेश्वर दिव्य पक्षजोंकी आकृति धारण करते हैं, तथा वह दण्ड, छत्र और कुण्डल धारण करके द्विजोंको अवलम्बन किया करते हैं। वह षड्मुख और अनेक मुखवाले, त्रिलोचन और बहुशीर्षक हैं। वह अनेक कटि, अनेक चरण, अनेक उदर और शरीर धारण करते हैं। वह अनेक हाथ, अनेक पार्श्व और अनेकों गणोंसे युक्त रहते हैं। वह ऋषिरूप, गन्धर्व्वरूप और सिद्ध चारणोंका रूप धारण किया करते हैं। उनका शरीर भस्मके द्वारा पाण्डुर वर्ण और अर्द्धचन्द्रसे विभूषित है; वह विविध वरसे सन्तुष्ट और अनेक स्तोत्रोंसे संस्कारयुक्त हैं। वह सब भूतोंके नायक होके सब लोकोंमें प्रतिष्ठित हैं; सर्व्व स्वरूप, सब प्राणियोंकी अन्तरात्मा, सर्व्वग और सर्व्वभाषी वह भगवान सर्व्वत्र विद्यमान हैं और देहधारियोंके हृदयमें निवास कर रहा है। जो लोग जिस विषयकी अभिलाषा करके जिस निमित्त उसकी पूजा किया करते हैं, वह देवेश महेश्वर उन सब विषयोंको जानता है; इसलिये यदि इच्छा हो, तो तुम उसकी शरणमें जाओ। वह अनिन्दित होता, कुपित होता और हुङ्कार प्रकाश किया करता है। वह चक्र, शूल, गदा, मूषल और पट्टिश धारण किया करता है; वह पर्व्वत होके, नागकी बनी हुई मौञ्जीमेखला धारण करता है, वह सांपोंका अनेक पहरता और गजाम्बर धारण किया करता है। वह हंसता, गाता, मनोहर रीतिसे नाचता और भूतोंमें घिरकर विचित्र बाजा बजाया करता है। वह बात करता, जमुहाई लेता, रोता और रुलाता है। वह उन्मत्तरूप वा मत्त स्वरूप और उत्तम स्वरसे बातालाप किया करता है। वह रौद्र रूपसे तीनों नेत्रोंके द्वारा लोगोंको त्रासित करके अत्यन्त भयङ्कर हास्य किया करता है; वह जागता, सोता और सुखपूर्व्वक जमुहाई लेता है। वह जप करता है, और सब लोग उसका जप किया करते हैं; वह तप करता है, और उसके निमित्त लोग तपस्या किया करते हैं। वह दान करता और प्रतिग्रह ग्रहण किया करता है, याग करता और ध्यान करता है। वेदी, यूप गोसमूहके बीच और अग्निमें कभी दीख पड़ता तथा कभी अदृश्य होता है। वही बालक, वृद्ध और युवा है, वही ऋषिकन्या तथा ऋषिपत्नियोंके सङ्ग क्रीड़ा करता है। वह उर्द्धकेश, महालिङ्ग, नग्न और विकृतनेत्र है। वह गौर, श्याम, कृष्ण, पाण्डुर, धूम्र और लालवर्णसे युक्त है; वह विकृताक्ष, विशालाक्ष, दिगम्बर और सर्व्वाम्बर अर्थात् सबका

आच्छादक है; उस रूपरहित अर्थात् आद्यरूपी, निष्कल, मायावी, अतिरूप, नाशकार्य्यके कारण, आद्यरूप, हिरण्यगर्भ, अनादि, अनन्त, जन्मरहित महेश्वरका अन्त यथार्थ रीतिसे कौन जान सकता है? जो हृदयके बीच प्राण, मन और जीवस्वरूप अर्थात् अन्नमय, मनोमय और विज्ञानमय कोषरूपसे वर्णित होता है। जो योगात्मा तथा आनन्दमय है, वही योगसंज्ञिक योगी कहा जाता है, वह परम शुद्ध योगस्वरूप परमात्मा महेश्वर सूक्ष्म मनोवृत्तिके द्वारा भी मालूम होने योग्य नहीं है। वही वादक, गीतगानेवाला, सहस्रशतलोचन, एक वक्त्र, आनन्दभुक्, द्विजिह्व, लिङ्गदेह और जीवस्वरूप है, विवक्त स्थूल शरीरके सहित पूर्व्वोक्त दोनों शरीर स्वरूप और अनेक वक्त्र अर्थात् विराट होता है। हे पुत्र! तुम उसहीका भक्त होके उसीमें चित्त लगाओ, उसीमें निष्ठा करो और उसहीमें रत होके महादेवकी ही आराधना करो; तब तुम अभिलषित विषयोंको प्राप्त करोगे।

हे शत्रुनाशन! माताका ऐसा वचन सुनके उस ही समय महादेवके विषयमें मेरी नैष्ठिकी भक्ति उत्पन्न हुई। अनन्तर मैंने तपस्या करके महादेवको सन्तुष्ट किया; बायें अङ्गूठेके सहारे स्थित होकर एक हजार वर्ष बिताये, एक सौ वर्ष तक फल भोजन करके रहा; दूसरी बार एक सौ वर्ष तक सूखे पत्तोंको खाके रहा, फिर एक सौ वर्ष तक जल पीके समय बिताया; अनन्तर सात सौ वर्ष तक वायु पीके रहा; इस ही प्रकार देव परिमाणसे एक सहस्र वर्ष तक महेश्वर मेरे द्वारा पूजित हुए। अनन्तर सब लोकोंके ईश्वर प्रभु महादेव प्रसन्न हुए उस समय उन्होंने मुझे अपना मुख्य भक्त समझके जाननेकी इच्छा की। उन्होंने इन्द्रका रूप धरके सब देवताओंके सहित महायशस्वी वज्रधारी सहस्राक्षके वेषसे सुधाकी भांति धवदांत, लालनेत्र, स्तब्धकर्ण, महा उत्कट विशालभुजा, घोररूपी चार दांतवाले महा मातङ्गपर चढ़के अपने तेजसे प्रकाशमान होकर हार किरीट और कुण्डल विभूषित शरीरसे आगमन किया। उनके सिरपर पाण्डुर आतपत्र शोभित था, वह दिव्य गन्धर्व्वोंकी सङ्गीतध्वनि और अप्सराओंके द्वारा सेव्यमान थे।

अनन्तर देवराजरूपी भगवानने कहा, हे द्विजोत्तम! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारे मनमें जो कुछ अभिलाष हो, वह वर मुझसे मांगो। इन्द्रका वचन सुनके मैं प्रसन्नचित्त नहीं हुआ। हे कृष्ण! उस समय मैंने देवराजसे यह वचन कहा, मैं तुमसे तथा महा देवके अतिरिक्त दूसरे किसी देवतासे भी वरकी अभिलाष नहीं करता यह मैं तुम्हारे समीप सत्य ही कहता हूं। हे शक्र! मेरा यह भली भांति निश्चित वचन अत्यन्त सत्य है; क्यों कि महेश्वरके अतिरिक्त मेरी दूसरे किसीके वचनमें भी रुचि नहीं होती है। पशुपतिके वचन अनुसार मैं उस ही समय कृमि अथवा अनेक शाखायुक्त वृक्ष हूंगा और महादेवके अतिरिक्त मैं दूसरेके वर वा कृपासे तीनों लोकके राज्य तथा ऐश्वर्य्यकी भी इच्छा नहीं करता। शिवचरणमें रत होकर मेरा चाण्डालकुलमें जन्म हो, तौभी उत्तम है और अनीश्वर भक्त होके इन्द्रभवनमें भी मेरा जन्म न होवे। सुरासुर गुरु विश्वेश्वरमें जिसकी भक्ति नहीं है, उस पुरुषके वायु भक्षण वा प्राशन करके निवास करनेपर भी किस प्रकार उसका दुःख नष्ट होगा? हरके चरणका स्मरण विच्छेदमें जिसकी इस समय भी रुचि न हो, उसे दूसरेके वचन तथा अन्य धर्म्मयुक्त वाक्यसे क्या प्रयोजन है? अनाजीव कलियुग उपस्थित होनेपर मनुष्योंको शिवचरणमें सदा रत होना उचित है, हरभक्ति रसायनको पीनेसे मनुष्यको संसारका भय नहीं होता। दिन, दिनका अर्द्ध भाग, मुहूर्त्त, क्षण

और लवमात्र समयमें भी जो शङ्करके प्रसाद पानेमें समर्थ नहीं है, उसको उनमें भक्ति नहीं होती। महादेवकी आज्ञानुसार चाहे कीट वा पतङ्ग योनिमें भले ही उत्पन्न होऊं। हे देवराज! परन्तु तुम्हारे दिये हुए तीनों लोकोंको भी मैं कामना नहीं करता; महेश्वरके वचनसे चाहे कुत्ता भलेही बनूं। क्यों कि वेही मेरे परम प्रार्थनीय हैं; और उनकी आज्ञा न पानेसे देवताओंके राज्यको भी इच्छा नहीं करता। मैं स्वर्गलोकको अभिलाष नहीं करता, देवराज्यकी इच्छा नहीं करता, ब्रह्मलोककी वाञ्छा नहीं है, निष्कलत्वकी स्पृहा नहीं करता और समस्त काम्य विषयोंकी भी कामना नहीं करता; केवल हरके दासत्व-प्राप्तिकी इच्छा करता हूं। जबतक शशाङ्कधवल, अमल, बहुमौलि भगवान महेश पशुपति प्रसन्न नहीं होते, तब तक जरा मरण और सैकड़ों जन्मोंके अभिघातके देह विच्छित क्लेशोंको ढोता रहूंगा। सूर्य्य चन्द्रमा और अग्निके द्वारा प्रकाशमान त्रिभुवन सारभूत और जिससे बढ़के सारभूत और कुछ भी नहीं है, उस एकमात्र आदि पुरुष अजर अमर रुद्रदेवको बिना प्रसन्न किये इस जगत्में कौन पुरुष शान्ति लाभ करनेमें समर्थ होगा? मेरे दोषसे यदि मेरा पुनर्व्वार जन्म हो, तो उन जन्मोंमें भी महादेवके विषयमें मेरी अक्षय भक्ति उत्पन्न होवे।

इन्द्र बोले, जब तुम महेश्वरके अतिरिक्त दूसरे किसी देवताके प्रसन्नताकी इच्छा नहीं करते हो, तब उस कारणके भी कारण ईश्वरकी सत्ताके विषयमें कौनसी युक्ति है। जो प्रलयकालमें समस्त जगत्का नाश करता है। तापकी शान्तिके निमित्त अग्निके निकट गमन करनेकी भांति उसके निकट वरकी इच्छा करनी तुम्हारा मूढ़ताका कार्य्य होरहा है।

उपमन्यु बोले, ब्रह्मवादी लोग जिसे सत्प्रवाद वा अनादि; असत् शून्य, व्यक्त, परमाणु और अव्यक्त प्रकृति कहते हैं, जो नित्य, अनंहत कार्य्य कारणात्मक है, उस परम शिवात्मा परमेश्वरसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है, जो ज्ञान, ऐश्वर्य्यमय और अचिन्तित परमात्मा है, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिससे सब ऐश्वर्य्य उत्पन्न हुए हैं, जो अव्यय है, जिसका बीज नहीं है, इसके अतिरिक्त जिससे सब बीज उत्पन्न हुए हैं, मैं उसहीसे वर पानेकी इच्छा करता हूं। जो अन्धकारको दूर करनेवाला परम ज्योति और अपनेमें निष्ठावान लोगोंके निमित्त परम तपस्वरूप है, जिसे जाननेसे पण्डित लोग शोक नहीं करते, उसहीसे मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। हे पुरन्दर! जो आकाश आदि भूतों और जीवोंको उत्पन्न करता है और जो सबके अभिप्रायको जानता है, तथा जो सब प्राणियोंका नाश करनेमें समर्थ है, मैं उस ही सर्व्वगत, सर्व्वद देवकी पूजा करता हूं। हे देवराज! पण्डित लोग जिसे महात्मा सुरेश्वर कहते हैं, उस गुरुदेवके निकट मैं वर पानेकी इच्छा करता हूं। जिसने बीजभूत अव्याकृत आकाशमें ब्रह्माण्ड रूपसे पूरण करके पहिले लोकभावन प्रजापतिको उत्पन्न किया है। अग्नि, जल वायु, अचला, आकाश अहङ्कार, मन और महत्तत्त्व,—इन सबको परमेश्वरके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष उत्पन्न कर सकता है? हे देवराज! मन शब्द वाच्य अव्यक्त और मति शब्दसे अभिधेय महतत्त्व तथा अहङ्कार तत्त्व पञ्चतन्मात्र और इन्द्रियें, इन सबके परम अवलम्ब शिवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष हो सकता है,—इसे तुमही वर्णन करो। इस लोकमें सब कोई पितामहको जगत् स्रष्टा कहा करते हैं, परन्तु वह प्रजापति देवेश्वर महेश्वरकी आराधना करके महती समृद्धि भोग किया करता है, एक दूसरा

गुणके प्रधान उपाधिक ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रदेवके सृष्टिकर्त्ता तुरीय मूर्त्तिवाले भगवानके निकटसे जो उत्तम ऐश्वर्य्य विद्यमान हैं, वह भी उन्हें महादेवके द्वारा प्राप्त हुए हैं, इसलिये कहो तो सही, परमेश्वरसे श्रेष्ठ और दूसरा कौन ईश्वर है? दैत्य दानवोंके बीच जिन्होंने प्रधानता लाभ की है, उन्हें आधिपत्य प्रदान और शत्रुओंको मर्द्दन करके दितिनन्दन हिरण्यकशिपु प्रभृतिको ऐश्वर्य्ययुक्त करनेमें देवेश्वर महादेवके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष समर्थ होसकता है। दिशा, काल, सूर्य्य, तेज, ग्रह, वायु, चन्द्रमा और नक्षत्रों तथा दैत्योंको जो परपीड़ा और दूसरेको निग्रह करनेकी सामर्थ्य है, वह सब ही ईश्वरके वशमें जानना योग्य है; इसलिये परमेश्वर महादेवसे श्रेष्ठ दूसरा कौन प्रभु है। यज्ञ और त्रिपुरासुरकी उत्पत्ति तथा विनाशके विषयमें तथा दैत्य दानवोंके बीच मुख्य मुख्य पुरुषोंके आधिपत्य प्रदान करनेमें शत्रुओंको मर्द्दनेवाले परमेश्वरके सिवा दूसरा और कौन समर्थ होसकता है। हे सुरसत्तम पुरन्दर! जब कि महेश्वरकी कृपासे तुम्हें ही देवताओंमें पूजित देखता हूं; हे कौशिक! महादेवकी कृपासे सिद्ध गन्धर्व्व, देवता और ऋषि लोग जब सहस्राक्षकी पूजा किया करते हैं, तब इस विषयमें अधिक हेतु वादका क्या प्रयोजन है? यह सब कार्य्य महादेवके ही कृपासे होरहा है। हे देवराज! चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंमें सर्व्वव्यापक ईश्वरका व्याप्य इदमात्मक सब वस्तुओंमें दिखाई देता है। जो कोई जीव जो कुछ भोग्यवस्तु भोग करता है, वह सब वस्तु महेश्वरसे ही प्राप्त हुई जानो। हे भगवन् इन्द्र! भूर्भुवः स्वः महः प्रभृति सब लोकों लोकालोक पर्व्वतके भीतर, दिव्य स्थानों सुमेरुके बीच, द्वीपस्थानों और चन्द्र सूर्य्य आदिसे युक्त ब्रह्माण्डकी अन्तरालमें तत्वदर्शी पुरुष उस देवोंके देवकी वन्दना किया करते हैं।

हे शक्र! देवता और असुर लोग यदि महादेवके समान दूसरी आकृति अवलोकन करते, तो वे लोग तथा असुरकुलके द्वारा अर्द्दित असुर लोग क्या उसके शरणापन्न न होते? यक्ष, राक्षस, सर्प और देवताओंके परस्पर विनाशरूप अभिघातके समय महादेव ही यथायोग्य स्वस्थानस्वरूप ऐश्वर्य्य प्रदान किया करते हैं। भला कहो तो सही; अन्धक, शुम्भ, दुन्दुभी, महर्षि, यक्ष, इन्द्र, बल, राक्षस और निवात कवचोंको वरदान तथा उनके नाश करनेके विषयमें महेश्वरके सिवाय दूसरा कौन समर्थ होसकता है? किस पुरुषके मुखमें पहिले समय सुरासुर गुरुके रेत हुत हुए थे? दूसरे किस पुरुषका इस प्रकार रेत है, जिसके द्वारा हिमगिरि निर्म्मित हुआ है। किसके अर्द्धाङ्गमें कान्ता निवास करती है? किस पुरुषके द्वारा अनङ्ग निर्ज्जित हुआ था? हे देवराज! कहो तो सही! किसके परम स्थानको देवता लोग प्रशंसा किया करते हैं? श्मशानके बीच क्रीड़ाके निमित्त नृत्य विषयमें कौन अभिभाषित होता है? किसका ऐश्वर्य्य समान भावसे रहता है? कौन पुरुष भूतगणके सङ्ग क्रीड़ा करता है? देवता लोग किसके बलसे बलवान होके ऐश्वर्य्यका अभिमान किया करते हैं? किसके अचल स्थानको त्रैलोक्यपूजित कहके लोग घोषणा करते हैं? उसके अतिरिक्त दूसरा कौन पुरुष जल बर्षाता है? कौन तेजसे प्रज्वलित होता है? किसके द्वारा औषधि सम्पत्ति हुआ करती हैं? कौन वसुको धारण करता है? स्थावर जङ्गमात्मक तीनों लोकके बीच कौन पुरुष यथेष्ट क्रीड़ा करता है? हे देवराज! ऋषि गन्धर्व्व, सिद्ध और योगी लोग ध्यानसिद्धि और क्रियायोगके सहारे जिसकी सेवा किया करते हैं, उसे ही कारण जानो। सुरासुरोंसे जो पुरुष कर्म्म योग्य क्रियायोगके निमित्त सेव्यमान होता है, उस कर्म्मफल रहितको ही मैं कारण

कहा करता हूं। स्थूल, सूक्ष्म, अनुपम, अप्रेय, गुणगोचर, गुणहीन, और गुणाध्यक्ष महेश्वर पद ही परमपद है। जो स्थिति और उत्पत्तिका कारण है, जो सब लोकोंका कारण है, जो वर्त्तमान, भूत और भविष्यको जाननेवाला तथा सबका कारण है; जो अक्षय, क्षर और अव्यक्त है, जिससे विद्या, अविद्या, कृताकृत, धर्म्म, प्रवर्त्तित होते हैं,—हे देवराज! मैं उसको ही कारण कहा करता हूं। हे देवराज! सृष्टि और संहारके हेतु देवोंके देव रुद्रके द्वारा भगाङ्कित लिङ्ग इस समय प्रत्यक्ष अवलोकन करो। हे शक्र! पहले माताने मुझसे कहा था, "लोक कारण महेश्वर सबके ही कारण हैं, महादेवसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है, इसलिये यदि इच्छा हो, तो उनके शरणमें जाओ।" हे सुरेश्वर! यह भी तुम्हें प्रत्यक्ष मालूम है, कि सविकार निर्गुण गुणयुक्त तीनों लोक, जो कि ब्रह्मादि रेतसे उत्पन्न हुआ कहा जाता है, वह योनिसंयोग विशिष्ट लिङ्गसे उत्पन्न है; क्यों कि ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि और विष्णुके सहित सब देवता, दैत्य और राक्षस लोग सहस्रों कामनासे कुन्ठित बुद्धि होकर भी जिससे बढ़के दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसा कहा करते हैं, वह चराचरोंमें विदित विख्यात देवोत्तम कल्याण दाता महादेवको मैं कामार्थी और सावधान चित्त होकर मोक्षके निमित्त प्रार्थना किया करता हूं। अन्यान्य युक्तियोंका क्या प्रयोजन है? ईश्वर ही सब कारणोंका कारण है, देवताओंके द्वारा दूसरेके लिङ्गका पूजित होना मैंने कभी नहीं सुना। महेश्वरको छोड़के देवता लोग दूसरे किसी देवताके लिंगकी पूजा करते वा किये हों,—उसे यदि तुमने सुना हो, तो वर्णन करो। ब्रह्मा, विष्णु और समस्त देवताओंके सहित तुम भी सदा शिवके लिङ्गकी पूजा किया करते हो, उससे बढ़के और इष्ट दूसरा कौन है? इसलिये वही सब लोगोंका आत्यन्तिक इष्ट है। जब कि प्रजासमूह पद्म चिन्ह, चक्रचिन्ह और वज्रचिन्हसे युक्त नहीं है, केवल लिङ्ग है, चिन्हित और योनिचिन्हित हुई है, तब अवश्य ही वह महेश्वर सम्बन्धीय हैं। देवीके कारणरूप भावजनित समस्त स्त्रियें योनिचिन्हसे युक्त और सब पुरुष महादेवके लिंगके द्वारा प्रत्यक्ष चिन्हित होरहे हैं। जो दुर्बुद्धि मनुष्य ईश्वरके अतिरिक्त दूसरेको कारण कहता है, तथा जो देवी चिन्हसे अङ्कित नहीं है, उसे कारण कहता है वह पुरुष चराचरयुक्त तीनों लोकसे बाहर हुआ करता है। पुलिंगमात्र ही महादेव और स्त्रीलिंगमात्रको ही भगवती जानो, स्त्री-पुरुष, इन दो शरीरोंके द्वारा स्थावर जंगमात्मक यह जगत व्याप्त होरहा है।

हे बलनिसूदन सुरराज! मैं उस ही महेश्वरसे वर अथवा मृत्यु की कामना करता हूं। तुम इच्छानुसार गमन करो अथवा निवास करो। मेरी यह अभिलाषा है, कि महेश्वरके द्वारा मुझे वर मिले अथवा शाप ही प्राप्त होवे परन्तु दूसरे देवताओंके सर्व्वकाम फलप्रद होनेपर भी मैं उनकी आकांक्षा नहीं करता। देवराजसे ऐसा कहके मैं दुःखपूर्व्वक व्याकुलेन्द्रिय हुआ; महादेव किस लिये मुझपर प्रसन्न नहीं होते हैं, ऐसी ही चिन्ता करके क्षणभरके बीच फिर उस ही ऐरावतको हंसकुन्द और इन्दुसदृश मृणाल और रजत समान प्रकाशमान साक्षात क्षीरसागरकी भांति वृषरूपधारी देखा उस महाकाय वृषकी पूंछ कृष्णवर्ण थी, नेत्र मधुकी भांति पिंगल वर्ण थे। वह वृषभ तपाये हुए सुवर्ण समान प्रकाशमान, उत्तम तीक्ष्ण, मृदु और रक्ताग्र वज्र सारमय था, सींगसे मानो पृथ्वीको विदीर्ण करता था; वह वृष सुवर्णके बने हुए दावेंसे सब प्रकार अलंकृत था, उसके मुख, कान, नासिका, कटि, कोखि अत्यन्त सुन्दर थे, कन्धा विशाल था। उस सुन्दर

मनोहर वृषभका ककुद स्कन्धपूरण करके अधिष्ठित था। देवोंके देव भगवान महादेव उमादेवीके सहित उस शिताग्र शिखर तथा तुषार गिरिकूट सदृश बैलपर चढ़के पौर्णमासीकी रात्रिके चन्द्रमाकी भांति शोभित हुए थे। उनके शरीरकी तेज बादलयुक्त अग्नि तथा सहस्र सूर्य्य समान आभा सब दिशाओंमें व्याप्त होरही थी। उस समय ईश्वरका तेज प्रलयकालके सम्वर्त्तक अनलकी भांति मानो सब भूतोंको जलानेका इच्छुक होकर उदित हुआ। उस समय दशों दिशा उसके तेजसे व्याप्त होकर दुर्निरीक्ष्य होगई। मैं उद्विग्नचित्त होकर चिन्ता करने लगा, कि यह क्या है? इतने ही समयमें जो तेज दशों दिशामें व्याप्त हुआ था, महादेवकी मायाके प्रभावसे मुहूर्त्तकालके बीचमें सब दिशाभाग प्रशान्त हुआ।

अनन्तर मैं धूमरहित अग्निकी भांति सौम्यदर्शन मनोहर सर्व्वाङ्गी पार्व्वतीके सहित सौरभेय बैलपर स्थित नीलकण्ठ महानुभाव अशक्त तेजके निधि अष्टादश भुज सब आभूषणोंसे भूषित सफेद अम्बर और श्वेतमालाधारी, सफेद ध्वजा, अनाधृष्ट शुक्लयज्ञोपवीती भगवान स्थाणु महेश्वर परमेश्वरका दर्शन किया। वह आत्मतुल्य पराक्रम, नृत्य, गीत और बाजा बजानेवाले दिव्य अनुचरोंके द्वारा सब भांतिसे परिवृत्त थे, बालेन्दु मुकुटवाले पाण्डुरवर्ण देव मानो शरच्चन्द्रकी भांति उदित हुए। तीन उदित सूर्य्योंकी भांति उनके तीनों नेत्र प्रकाशमान थे। उस देवके सितप्रभायुक्त शरीरमें सुवर्णमय पद्मके द्वारा ग्रथित रत्नभूषित माला थी। हे गोविन्द! मैंने अमित तेजस्वी महेश्वरके सर्व्वतेजोमय मूर्त्तिमान अस्त्रोंको अवलोकन किया। उस महात्माकी इन्द्रायुध समान वर्णवाला धनुष जो पिनाक नामसे विख्यात है, मैंने देखा, कि वह शतशिर महाकाय तीक्ष्णदन्त विषोल्वणज्या-वेष्टित महाग्रीव पुरुषविग्रह महान् पन्नगरूपसे स्थित है; और प्रलयकालकी अग्नि तथा सूर्य्यके समान प्रकाशमान जो बाण निरीक्षण किया। उसहीका नाम दिव्य महत् पाशुपत अस्त्र है, वह अद्वितीय, अनिर्देश्य, सर्व्वभूत भयावह महाकाय है और मानो अङ्गारके सहित अग्नि विसर्जन कर रहा था। वह एक चरणवाला महादंष्ट्र सहस्रशिर, सहस्र उदर, सहस्रभुज, सहस्र जिह्वा और सहस्राक्षरूपसे अग्नि उद्गीरण कर रहा था। हे महाबाहो! वह ब्राह्म, नारायण ऐन्द्रेय आग्नेय और वारुण अस्त्रसे श्रेष्ठ और सर्व्वशस्त्र विघातक था। हे गोविन्द! महादेवने लीलाके क्रमसे एक मात्र जिस बाणके सहारे उस त्रिपुरको जलाके भस्मीभूत किया था, वही अस्त्र यदि महादेवकी भुजासे छूटे तो अर्द्धनिमेषमें चराचर सहित त्रिलोकके सहित समस्त जगत्को निःसन्देह भस्म करे। इस लोकमें ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके बीच जिससे कोई भी अवध्य नहीं है। हे तात! मैंने उस आश्चर्य्य और अद्भुत अस्त्रको देखा था, उसके समान अथवा उससे श्रेष्ठ गुह्यतर और एक दूसरा परम अस्त्र देखा, जो कि सब लोकोंमें महादेवका त्रिशूल कहके विख्यात है। वह महादेवके हाथसे छूटनेपर स्वर्ग तथा समस्त पृथ्वीमण्डलका विदारण, समुद्रका शोषण और समस्त जगत्को नष्ट कर सकता है। पहिले समयमें जिस शूलके लवण राक्षसके हाथमें स्थित होनेपर युवनाश्व और त्रिलोकविजयी महातेजस्वी बलवान इन्द्रके समान पराक्रमी चक्रवर्त्ती राजा मान्धाता सेनाके सहित मारे गये थे। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाला भयङ्कर वह लोमहर्षण शूल, त्रिशिखा भ्रुकुटी करके तर्ज्जन करते हुए स्थित था। हे कृष्ण! प्रलयकालके सूर्य्यकी भांति उदित उस विधूम अग्नियुक्त अनिर्द्देश्य पाशधारी अन्तकके समान वर्ण उस अस्त्रको मैंने रुद्रके निकट देखा। हे गोविन्द!

इसके अतिरिक्त पहले महादेवने प्रसन्न होके रामको जो क्षत्रियोंका नाशक तीक्ष्ण धारवाला परशु प्रदान किया था, जिसके द्वारा महासंग्राममें चक्रवर्त्ती राजा कार्त्तवीर्य्य मारा गया, उसे भी मैंने उनके निकट देखा। हे गोविन्द! अक्लिष्टकर्म्मा जामदग्न्य रामने जिसके सहारे इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया था, वह तीक्ष्णधारवाला रौद्रमुख सर्प-कण्ठाग्रमें अधिष्ठित जलती हुई अग्निकी शिखा समान परशु महादेवके समीप था। हे अनघ! उस धीमान्‌के निकट और भी अनगिनत अस्त्र थे, मुख्य करके तुमसे मैंने इन तीन अस्त्रोंका विषय वर्णन किया है। उस देवके दाहिनी ओर लोकपितामह ब्रह्मा हंसयुक्त मनोजव दिव्य विमानमें स्थित थे, बाईं ओर शंख चक्र गदाधारी नारायण गरुड़पर चढ़के विराजमान थे। देवीके निकट द्वितीय अग्निकी भांति स्कन्द शक्ति और घण्टा धारण करके मयूरपर निवास करते थे। महादेवके सम्मुख द्वितीय शङ्करकी भांति शूल ग्रहण करके खड़े हुए नन्दीको देखा। स्वायम्भुव आदि मुनि, भृगु आदि ऋषि और इन्द्र आदि सब देवता उस स्थानमें उपस्थित थे। समस्त भूत और विविध मातृकागण उस महात्माको सब प्रकारसे घेरके और प्रणाम करके स्थित थी। देवताओंने उस समय विविध स्तोत्रोंसे महादेवकी स्तुति की थी; अनन्तर ब्रह्मा रथन्तर साम उच्चारण करते हुए महेश्वरकी स्तुति करने लगे। नारायणने देवेश्वरको अत्यन्त प्रसन्न करनेके लिये जेष्ठ साम गान किया। देवराज उत्कृष्ट शतरुद्रिका पाठ करते हुए परब्रह्मकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा, नारायण और देवराज कौशिक, ये तीनों महानुभाव तीनों अग्निकी भांति शोभित हुए। देवोंके देव भगवान् महेश्वर बीचमें शरदकालके बादलोंसे रहित सूर्य्यकी भांति विराजमान थे। हे केशव! उस समय मैंने आकाशमण्डलमें इस सहस्रके परिमाणसे चन्द्रमा और सूर्य्य देखे। अनन्तर मैं समस्त जगत्‌के प्रभु महादेवकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त हुआ।

उपमन्यु बोले, तुम देवादिदेव हो इसलिये तुम्हें नमस्कार है; तुम शक्ररूप, शक्र, शक्रवेषधारी महादेव हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम कृष्णवासा, कृष्णकुञ्चित केश, कृष्णाजिन वस्त्रधारी, कृष्णाष्टमीरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है। तुम शुक्लवर्ण, शुक्ल, शुक्लाम्बरधर, श्वेतभस्मधारी और शुक्ल कर्म्ममें रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम रक्तवर्ण रक्ताम्बरधारी, रक्तध्वज पताका और लालमालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम पीताम्बरधारी, पीतवर्ण ध्वजा पताकायुक्त और पीली माला धारण करनेवाले हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम उच्छ्रितच्छत्र, किरीटवरधारी, अर्द्धहार, अर्द्धकेयूर और अर्द्ध कुण्डलकर्णी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम ही वायुवेग हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है, हे देव! तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और महेन्द्र हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम उत्पल मिश्रित, पद्माक्ष-मालाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम अर्द्ध चन्दन लिप्त, अर्द्ध माल्य अनुलेपी आदित्य वक्त्र, आदित्यतनय हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम आदित्य वर्ण, आदित्यप्रतिम हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम सोम, सोमवक्त्रधर, सौम्यरूप मुख, सोमदन्त विभूषित हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्याम गौर, अर्द्ध पीत और पाण्डुवर्ण हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; नर नारीरूप, स्त्री-पुरुष स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम वृषभ-वाहन, गजेन्द्रगमन, दुर्गम और अगम्य गमन हो, इससे तुम्हें प्रणाम है, तुम गणगीत, गणवृन्द रत, गणानुयात मार्ग और गणनित्यव्रत हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम श्वेताद्रि वर्ण, सन्ध्याराग प्रभ, अनुद्दिष्टाभिधान स्वरूप हो, इससे तुम्हें प्रणाम है;

तुम रक्तमालाधारी, रक्तानुलेपन, बालकाला चिह्नित, रक्ताम्बरधारी, मणिभूषितमूर्द्धा और अर्द्धचन्द्र भूषित हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विचित्र मणिमण्डित मस्तकपर अष्टकुसुमधारी, अग्निमुख, अग्निनेत्र और सहस्र शशिनेत्र हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम अग्निरूप कान्त ग्रहण हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम खेचर और गोचराभिरत हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम भूचर भुवन, अनन्त, शिव, दिगम्बर, पुष्पादि गन्धवासित और उत्तम वस्त्र धारी हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम जगन्निवास, ज्ञान और सुखस्वरूप हो, सदा उद्दतमुकुट, महाकेयूरधारी सर्व्वकण्ठोपहार, विचित्र आभूषण, लोकयात्रा निर्व्वाहक अग्नि-सूर्य्य चन्द्र रूप तीनों नेत्रोंके नेत्रस्वरूप और सहस्र शतलोचन हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम स्त्री-पुरुष और नपुंसक हो, तुम ही साङ्ख्य योगी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम शम्बुसंज्ञक, यज्ञपाड् गुणवर्त्ती, देवताओंके प्रसादस्वरूप हो, अथवा तुम सर्व्वान्त नाशकर और शोक हरनेवाले हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम ही बादलोंके बीच गर्ज्जना शब्द और बहु मायाधारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम बीजपाल, क्षेत्रपाल और स्रष्टा हो, इससे तुम्हें नमस्कार है, तुम सब देवताओंके ईश और विश्वेश्वर हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम पवनवेग, पवनरूपी, काञ्चनमाला और गिरिमाल अर्थात् पर्व्वतके बीच क्रीड़ापरायण हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम सुरारिमाल चण्डवेग, ब्रह्माके सिरको हरनेवाले और महिषघ्न हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम मेघनिनाद, बहुमायाधारी हो; इससे तुम्हें नमस्कार है; त्रिमूर्त्तिधारी, सर्व्वरूपधारी, त्रिपुरहर और यज्ञविध्वंसकारी हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम कामाङ्गनाशक, कालदण्डधारी, स्कन्दविशाख और ब्रह्मदण्ड हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम भव, सर्व्व, विश्वरूप, ईशान, भवघ्न और अन्धकान्तक हो, इससे तुम्हें नमस्कार है; तुम विश्वमायावी, चिन्त्य, अचिन्त्य हो, इससे तुम्हें प्रणाम है; तुम हमारे लिये श्रेष्ठ तथा गतिस्वरूप हो, तुम ही हम लोगोंके हृदयस्वरूप हो, तुम सब देवताओंके बीच ब्रह्मा, रुद्रगणोंके बीच नीललोहित सर्व्व प्राणियोंकी आत्मा और साङ्ख्ययोगमें पुरुषरूपसे वर्णित हुआ करते हो; तुम पवित्र लोगोंके बीच ऋषभ, योगियोंमें निष्कल शिव, आश्रमी पुरुषोंमें गृहस्थ और ईश्वरोंमें महेश्वर हो; तुम यक्षोंके बीच कुबेर हो, यज्ञोंमें विष्णु कहके वर्णित होते हो, तुम पर्व्वतोंमें मेरु और नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हो, ऋषियोंमें वशिष्ठ और ग्रहोंके बीच सूर्य्य कहके अभिहित हुआ करते हो, तुम जङ्गली पशुओंके परम ईश्वर हो सिंह और ग्रामवासी पशुओंके बीच लोकपूजित गऊ वृषभस्वरूप हो, तुम आदित्योंके बीच विष्णु, वसुओंमें अग्नि, पक्षियोंमें गरुड़, सर्पोंके बीच अनन्त, वेदोंमें सामवेद, यजुर्व्वेदके बीच शतरुद्रीय, योगियोंमें सनत्कुमार और साङ्ख्योंके बीच कपिलस्वरूप हो। हे देव! तुम देवताओंके इन्द्र तथा पितरोंके देवराज हो, तुम लोकोंके बीच ब्रह्मलोक और गतियोंके बीच मोक्षरूपसे वर्णित हुआ करते हो। तुम समुद्रोंमें क्षीरसागर, पर्व्वतोंके बीच हिमालय, वर्णोंमें ब्राह्मण, विप्रोंके बीच विद्वान् ब्राह्मण हो, तुम सब लोकोंके आदिकर्त्ता और कालक्रमसे संहर्त्ता हो; लोकमें जो कुछ अधिक तेजसे युक्त वस्तु दीख पड़ती है, वह सब ही भगवानका स्वरूप है,—ऐसा ही मेरी बुद्धिमें निश्चय हुआ है। हे भगवन्! हे देव! तुम्हें नमस्कार है; हे भक्तवत्सल! तुम्हें प्रणाम है; हे योगीश्वर! तुम्हें नमस्कार है। हे जगत्की सृष्टि करनेवाले तुम्हें प्रणाम करता हूं; मैं दीन कृपण तुम्हारा भक्त हूं, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे सनातन!

इस अनैश्वर्य्ययुक्त भक्तके प्रति होइये। हे परमेश्वर! हे देवेश! मैंने अज्ञानके वशमें होकर जो कुछ अपराध किया है, आपको मुझे अपना भक्त समझकर उन अपराधोंको क्षमा करना उचित है। हे देवेश्वर! मैं तुम्हारे रूपविपर्य्यय वशसे मोहित हुआ था, इसही निमित्त मैं तुम्हें पाद्य अर्घ प्रदान नहीं कर सका। इस ही प्रकार मैंने महादेवकी स्तुति करके भक्ति भावसे हाथ जोड़के पाद्य अर्घ आदि प्रदान किया। हे तात! अनन्तर मेरे शिरपर शीतल जलसे पूरित दिव्य गन्धयुक्त शुभ पुष्पवृष्टि होने लगी। देवताओंके सेवक दिव्य दुन्दुभी बजाने लगे। पवित्र गन्धवाला सुखदायक पुण्यजनक वायु बहने लगा। उसके अनन्तर सपत्नीक वृषभध्वज महादेव प्रसन्न होकर उस समय मानो मुझे हर्षित करते हुए देवताओंसे बोले, हे देववृन्द! मेरे विषयमें महात्मा उपमन्युकी एकाग्र भावसे स्थित परम भक्ति अवलोकन करो।

हे कृष्ण! जब शूलपाणिने देवताओंसे ऐसा कहा, तब वे लोग हाथ जोड़के वृषभध्वजको नमस्कार करके बोले, हे भगवन्! हे देवदेवेश जगत्पति लोकनाथ! यह द्विजवर आपके निकटसे सब काम्यमान फल लाभ करे। भगवान् शङ्कर ब्रह्मा प्रभृति देवताओंका ऐसा वचन सुनके हंसकर मुझसे कहने लगे।

भगवान् बोले, हे पुत्र मुनि पुङ्गव उपमन्यु! मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं, तुम मेरा दर्शन करो। हे विप्रर्षि! तुम मेरे दृढ़ भक्त हो, इस ही निमित्त मैं तुमसे पूछता हूं। तुम्हारी भक्तिके वशमें होकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं, इसलिये इस समय तुम्हारी जो कुछ अभिलाष होगी, उन सब काम्य विषयोंको प्रदान करूंगा। धीमान् महादेवका ऐसा वचन सुनके हर्षपूर्व्वक मेरे नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे और रोएं खड़े होगये। उस समय मैं दोनों जानु पृथ्वीपर स्थापितकर उस देवको बार बार प्रणाम करके हर्षित होकर गद्गद वचनसे कहने लगा, कि जब सुरासुर गुरु महादेव मेरे आगाड़ी निवास करते हैं, तब आज मेरा जन्म ग्रहण करना सफल हुआ। देवता लोग आराधना करके भी जिस देवेश्वरका दर्शन करनेमें समर्थ नहीं होते मैंने उसका दर्शन किया; इसलिये मेरे समान और कौन धन्य पुरुष है? विद्वान् लोग इस ही सम्मुखवर्त्ती मूर्त्तिरूप सनातन परम तत्त्वका ध्यान किया करते हैं। यह मूर्त्ति ही देवान्तर अपेक्षा विशिष्ट मूर्त्ति होके भी नित्य अक्षर उत्पत्तिरहित ज्ञान स्वरूपसे विख्यात् है। यह वही भगवान् सत्त्वादि अव्यय देव, सर्व्वतत्त्व विधानज्ञ-प्रधान परम पुरुष है, जिसने दक्षिण अङ्गसे लोक-विधाता पितामहको और वाम-अङ्गसे लोकरक्षाके निमित्त विष्णुको उत्पन्न किया है और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर ईश्वर रुद्रको उत्पन्न करता है, वही रुद्र स्थावर जंगममय समस्त जगत्को संहार करते हुए सम्वर्त्तक अग्निकी भांति महा तेजस्वी काल स्वरूपसे युगके अन्तमें सब भूतोंको ग्रास करके स्थित होता है। यह महादेव सचराचर जगत्की सृष्टि करता और कल्पान्तमें सबकी स्मृति लोप करके निवास करता है। यही सर्व्वग, सर्व्वभूतात्मा, सर्व्वभूत, प्रभवोद्भव, सदा सर्व्वगत होके भी सब देवताओंको नहीं दीख पड़ता। हे देव! हे सुरेश्वर! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हुए हो और मुझे वरदान करना उचित समझते हो, तो मैं यही वर मांगता हूं, कि तुम्हारे ऊपर मेरी सदा भक्ति बनी रहे। हे विभु! हे सुरसत्तम! भूत, वर्त्तमान और जो कुछ भविष्य विषय हैं, उसे मैं तुम्हारी कृपासे जान सकूं, यही मेरी प्रार्थना है और मैं बान्धवोंके सहित अक्षय क्षीरोदन भोजन करूं तथा मेरे आश्रमके निकट आपका निवास रहे। लोक पूजित चराचर गुरु महातेजस्वी भगवान् महेश्वर मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके मुझसे बोले।

भगवान् बोले, हे द्विजवर ! तुम मेरी कृपासे अजर अमर दुःख रहित, यशस्वी और दिव्य ज्ञानसे संयुक्त होकर ऋषियोंमें आदरणीय होगे। तुम शीलवान् गुणवान्, सर्व्वज्ञ और प्रियदर्शन होगे। तुम्हारा अग्निके समान तेज और यौवन अक्षय होवे। तुम जिस स्थानको प्रिय समझोगे, उस ही स्थानमें तुम्हारी इच्छाके अनुसार क्षीरोदसागर निकटवर्त्ती होगा, तुम बान्धवोंके सहित अमृत समान क्षीरोदन भक्षण करो। अनन्तर कल्पान्तकालमें मेरे निकट गमन करोगे। हे द्विजश्रेष्ठ ! तुम्हारे बान्धवोंका कुल और गोत्र सदा अक्षय होगा और मुझमें तुम्हारी शाश्वती भक्ति रहेगी। हे द्विजोत्तम ! मैं सदा तुम्हारे आश्रमके निकट रहूंगा। हे पुत्र ! तुम इच्छानुसार निवास करो, उत्कण्ठित न होना। पुनर्व्वार स्मरण करनेसे भी मैं तुम्हें दर्शन दूंगा। कोटिसूर्य्य समान प्रकाशसे युक्त भगवान ईशान ऐसा कहके वरदान देकर उस ही स्थानमें अन्तर्द्धान होगये।

हे कृष्ण ! इस ही प्रकार समाधिके द्वारा मैंने देवोंके देव महादेवका दर्शन किया था। उन्होंने जो कुछ कहा था, मुझे वह सब प्राप्त हुआ है। हे कृष्ण ! प्रत्यक्ष देखो; सिद्ध, ऋषि, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्व्व और अप्सरावृन्द स्थित हैं। सर्व्वपुष्प फलप्रद वृक्ष, लता और गुल्म अवलोकन करो, ये सब ऋतुओंमें ही पुष्प युक्त सुखपत्र और सुगन्धमय होरहे हैं। हे महाबाहो ! महानुभव देवोंके देव ईश्वरकी कृपासे ये सब दिव्य भावसे सम्पन्न हैं।

श्रीकृष्ण बोले, मैंने प्रत्यक्ष दर्शनकी भांति उस महामुनिका वाक्य सुनके अत्यन्त विस्मय युक्त होकर उनसे कहा, हे विप्रेन्द्र ! तुम ही धन्य हो, तुम्हारे अतिरिक्त और पुण्यवान् दूसरा कौन है ? क्यों कि देवोंके देव तुम्हारे आश्रमके निकटवर्त्ती हैं। हे मुनिपुङ्गव ! कल्याणदाता भगवान शङ्कर प्रसन्न होके मुझे भी दर्शन दे सकते हैं ?

उपमन्यु बोले, हे अनघ पुण्डरीकाक्ष ! मैंने जिस प्रकार दर्शन किया था, तुम भी थोड़े ही समयमें उस ही भांति महादेवका दर्शन करोगे। हे अमितविक्रम पुरुषोत्तम ! मैं दिव्य नेत्रके सहारे देखता हूं, कि तुम छठवें महीने महादेवका दर्शन करोगे। हे यदुश्रेष्ठ ! सपत्नीक महादेवके निकट तुम चौबीस वर पाओगे, यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं। हे महाबाहो ! उस महेश्वरके प्रसादसे भूत, वर्त्तमान और भविष्य विषय सदा मुझे विदित होते हैं। हे माधव ! भगवान् भवानीपतिने इन सब तथा दूसरे सहस्रों पुरुषों पर कृपा की है, तब तुम पर कृपा क्यों न करेंगे ? विशेष करके तुम्हारे समान पुरुषके सङ्ग समागम होना देवताओंमें श्लाघनीय है। मैं तुम्हें ब्रह्मण्य अनृशंस और श्रद्धाके सहित जपका फल प्रदान करता हूं, उसहीके द्वारा तुम महादेवका दर्शन करनेमें समर्थ होगे।

विष्णु बोले, मैंने उनसे कहा, हे ब्रह्मन् ! हे महामुनि ! मैं आपकी कृपासे दितिज दलको मर्द्दनेवाले त्रिदशेश्वरका दर्शन करूंगा। हे भारत ! अनन्तर इस ही प्रकार महादेवाश्रित कथा कहते कहते मुहूर्त्तकालकी भांति आठ दिन बीत गया। आठवें दिन मैंने उस विप्रसे विधिपूर्व्वक दीक्षा पाई। दण्डधारी, मुण्डितसिर, कुशचीरधारी और घृताक्त होकर मेखला धारण किया। एक महीनेतक फलाहार करके रहा, दूसरे महीनेमें जल पीके और तीसरे चौथे तथा पांचवें महीनेतक वायु पीके निवास किया। हे भारत ! मैं ऊर्द्ध्वबाहु और अतिन्द्रिय होकर एक पदसे स्थित था, अनन्तर मैंने आकाशमण्डलमें सहस्र सूर्य्यका तेज अवलोकन किया। हे पाण्डुनन्दन ! उस तेजके बीचमें इन्द्रायुध-पिनद्धाङ्ग विद्युन्माला रूपगवाक्ष समन्वित नीलगिरिके निकट बकपंक्ति विभूषित मेघमण्डल स्थित था। महातेजस्वी भगवान्

महेश्वर देवीके सहित उस ही मेरुदमण्डलमें स्थित रहके तपोतेज कान्ति और दीप्यमान उमाके सहित मेघमण्डलमें स्थित चन्द्रमासे युक्त सूर्य्यकी भांति विराजते थे। हे कुन्तीनन्दन! मैंने लोमाञ्चित शरीर और विस्मयोत्फुल्ल नेत्रसे देवताओंकी गति तथा आर्त्तिहर महादेवका दर्शन किया। मैंने देखा, कि ये ही किरीट मण्डित हाथमें लिये हुए, शूलपाणि, बाघाम्बरधारी जटिल दण्डपाणि पिनाकी वज्री तीक्ष्णदन्त शुभाङ्गद व्याल यज्ञोपवीती देव ऋषियोंके समाप्तिमें सन्ध्याके सहित घिरे हुए चन्द्रमाकी भांति वक्ष:स्थलमें गुल्फ पर्य्यन्त अनेक वर्णकी दिव्यमाला धारण करके निवास करते हैं। शरदकालमें निर्म्मल दुष्प्रेक्ष्य प्रकाशमान सूर्य्यकी भांति भूतगणोंसे सब प्रकार घिरे हुए थे, ग्यारह सौ रुद्रगण मन और कर्म्मसे सदा शुभ कर्म्मशील उस वृषभवाहन महेश्वरकी स्तुति करते थे। आदित्यगण, वसु, साध्य, विश्वदेव और दोनों अश्विनीकुमार विश्वस्तुतिके सहारे उस विशेश्वरकी आराधना करते थे। अदिति-नन्दन इन्द्र, विष्णु और ब्रह्मा महादेवके निकट रथान्तर सामगान करते थे। हे राजन्! बहुतेरे योगीश्वरवृन्द, पुत्रोंके सहित ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पृथ्वी, आकाश, नक्षत्र ग्रह, मास, पक्ष, सब ऋतु, रात्रि, सम्वत्सर, क्षर, मुहूर्त्त, निमेष, युगपर्य्याय, दिव्य विद्या और सत्यवित् सब प्राणी उस योगदाता, पिता तथा गुरुको नमस्कार करते थे। सनत्कुमार, समस्त वेद, इतिहास, मरीचि, अङ्गिरा अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु; सप्तमनु, सोम, अथर्व्वा, बृहस्पति, भृगु, दक्ष, काश्यप, वसिष्ठ, काश्य, समस्त छन्द, दीक्षा, यज्ञ, दक्षिणा, अग्नि, हवि, मूर्त्तिमत यज्ञके उपकरण तथा सब सामग्री, समस्त प्रजापालगण, नदियें, पन्नग और नागगण, देवगणोंकी माता, कन्या और समस्त स्त्रियें, सहस्र अयुत और अर्ब्बुद संख्यक मुनिवृन्द, पर्व्वत, समुद्र और सब दिशा, गीतवाद्यके जाननेवाले गन्धर्व्व तथा अप्सरागण दिव्य तानके सहित गान करती हुई शान्त विभुवकी प्रणाम और अद्भुतभावसे स्तुति कर रही थीं। हे महाराज! विद्याधर, दानव, गुह्यक, राक्षस और स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी वचन मन और कर्म्मसे उस महेश्वरको प्रणाम करते थे; देवेश्वर महादेव मेरे अगाड़ी स्थित थे। हे भारत! मेरे अगाड़ी महादेवको खड़े हुए देखके ब्रह्मा और इन्द्र पर्य्यन्त सब लोग मुझे देखने लगे उस समय महादेवकी ओर देखनेमें मेरी सामर्थ न हुई। अनन्तर महेश्वर मुझसे बोले हे "कृष्ण! तुम मेरा दर्शन करो और जो कुछ अभिलाष हो, वह मुझसे कहो; तुमने सैकड़ों सहस्रों बार मेरी आराधना की है, तीनों लोकोंके बीच तुम्हारे समान प्रियपात्र मेरा कोई भी नहीं है।" मैंने जब सिर नीचा करके महादेवकी वन्दना की, तब उमादेवी प्रसन्न हुईं। अनन्तर मैंने ब्रह्मादि देवताओंके स्तवनीय महादेवसे कहा।

विष्णु बोले, हे अपरिणामिन् सर्व्वयोनि शङ्कर! तुम्हें प्रणाम है ऋषि लोग तुम्हें सब वेदोंके स्तवनीय कहते हैं साधु लोग तुम्हें ही तप, सत्त्व, रज, तम और सत्यस्वरूप कहा करते हैं। तुम ही ब्रह्मा, रुद्र, वरुण, अग्नि, मनु, भव, धाता (ईश्वर,) त्वष्टा (रूप निर्म्माता) विधाता (धर्म्माधर्म्मरूपी कर्म्मफल देनेवाले) और तुम सर्व्वतोमुख प्रभु हो। स्थावर जङ्गम समस्त प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं, ये चराचरोंके सहित तीन लोक तुमसे प्रकट हुए हैं। इस शरीरमें जो सब इन्द्रियें, मन और प्राण आदि पञ्चवायु हैं, और गार्हपत्य, दक्षिण, आवहनीय, सभ्य, आवसथ्य, ये पांचों श्रौत, छठवीं स्मार्त्त, सातवीं लौकिक, ये सात प्रकारकी अग्नि और देव अर्थात् सुरात्मायें जिनकी समाप्ति हुई हैं, तथा जो स्तुतिके योग्य

देवता हैं, उन सबके नेत्र और अपनेही अधि लोग तुम्हें गोचर कहा करते हैं। सब वेद, यज्ञ, सोम दक्षिणाग्नि, हवि तथा जो कुछ यज्ञकी सामग्री हैं, भगवान् ही निःसन्देह उन सबके स्वरूप हैं। इष्टदत्त अधीन व्रत, नियम, लज्जा, कीर्त्ति, श्री, द्युति, तुष्टि और सिद्धि, ये सभी तुम्हारे स्वरूप प्राप्तिके कारण हैं। हे भगवन्! काम, क्रोध, भय, लोभ, मद, स्तम्भ, मत्सरता, आधि और व्याधि, ये सब तुम्हारे पुत्र हैं। क्रिया विकार अर्थात् क्रिया फलभूत हर्ष आदि उसके भाव प्रबल वासनाबीज प्रधान मनको परमयानि शाश्वत प्रभाव अज्ञान अव्यक्त पवन अचिन्त्यचित्तमें ज्योतिरूपी सूर्य्य तथा अव्यक्त तत्वोंको आदि हो, आप ही उन सबके जीविताश्रय अर्थात् नदियोंके निमित्त समुद्रकी भांति प्राप्य स्थान; महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, स्वयम्भु बुद्धि, प्रज्ञा, उपलब्धि, संवित्ख्याति, धृति, स्मृति, आदि पर्य्यायवाचक शब्दोंके द्वारा वेदार्थ जाननेवाले पुरुषोंसे तुम ही वेदमें महान् आत्मा कहके वर्णित हुआ करते हो। विद्वान् ब्राह्मण लोग तुम्हें जानके मोहजनक अज्ञान निवारण करते हैं। तुम सब प्राणियोंके हृदयमें वास करनेवाले क्षेत्रज्ञ और मन्त्रोंके स्तवनीय हो। तुम्हारे पाणि और पादका अन्त सर्व्वत्र विद्यमान है। तुम्हारे नेत्र, सिर और मुख सब ठौर विराजमान है; तुम सर्व्वत्र मूर्तिमान होकर सारे जगत्को परिपूर्ण कर रहे हो, तुम ही सूर्य्यकी प्रभा तथा किरण और निमेष आदि कर्म्मोंके फल हो, तुम सबके हृदयस्थ पुरुष हो। तुम अणिमा (सूक्ष्म स्वरूप) हो, तुम लघिमा (विविध परिच्छेदसे रहित) हो, तुम प्राप्तिस्वरूप ईशान और अव्यय ज्योति हो, तुममें बुद्धि, मति और समस्त लोक स्थित होरहे हैं। जो लोग ध्यान-निष्ठ नित्ययोगमें रत सत्यसन्ध और जितेन्द्रिय हैं, वे तुममें ही संस्थित होरहे हैं। जो तुम्हें निश्चल गुहाशय प्रभु पुराण, पुरुष विशिष्टानुभव स्वरूप निष्कलङ्कप्राप्ति मात्र हिरण्मय और बुद्धिमान पुरुषोंकी परम गतिको जानते हैं, अथवा जानके शिष्योंको जनाते हैं, वे महा बुद्धिमान पुरुष बुद्धिको अतिक्रम करके निवास किया करते हैं। विद्वान् पुरुष सातों सूक्ष्म विषयों अर्थात् महत् अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्र और षडङ्ग अर्थात सर्व्वज्ञता, तृप्ति, अनादि, बोध, स्वतन्त्रता, नित्य, अलुप्तशक्ति और अत्यन्त शक्तियुक्त तुम्हें मूर्त्तिमान रूपसे जानके और चित्तसत्त्वके आत्मा भिन्नत्व रूपसे ज्ञापनरूपी विधिके अनुसार योगयुक्त होकर तुममें ही प्रवेश करते हैं। हे पार्थ! आर्त्ति विनाशन महादेवसे जब मैंने ऐसा कहा, उस समय चरा-चरोंसे युक्त समस्त जगत् सिंहनाद करने लगा। उस समय ब्राह्मण, देवता, असुर, सर्प, पिशाच, पितर, पक्षीन्द्र राक्षसों, समस्त प्राणियों तथा महर्षियोंने उन्हें प्रणाम किया। मेरे सिरपर दिव्य सुगन्धियुक्त फूलोंकी वर्षा हुई, और महा सुखस्पर्श वायु बहने लगा। जगद्धित कर भगवान शङ्कर और उमादेवी, मुझे और इन्द्रको देखके स्वयं मुझसे कहने लगे। हे शत्रुनिसूदन कृष्ण! यह मैं जानता हूं कि मुझपर तुम्हारी परमभक्ति है, तुम अपना कल्याण साधन करो, तुमपर मेरी परम प्रीति उत्पन्न हुई है। हे सत्तम कृष्ण! तुम वर मांगो मैं तुम्हें आठ वर दूंगा। हे यादवश्रेष्ठ! तुम जिन सब दुर्लभ वरोंकी अभिलाष इच्छा करते हो उन्हें मांगो।

१४ अध्याय समाप्त।

श्रीकृष्ण बोले, अनन्तर मैंने परम हर्षसे सिर झुकाके उन्हें प्रणाम किया और तेजपुञ्जसे स्थित भगवान्से कहा। हे भगवन्! मैं धर्म्ममें दृढ़बन्धन, युद्धमें शत्रुहनन, श्रेष्ठ यश, अत्यन्त बल, योगके सहित प्रियत्व और सैकड़ों पुत्र

पानेके लिये आपके निकट प्रार्थना करता हूं। महादेव मेरी ऐसी प्रार्थना सुनके बोले, "ऐसा ही होवे।" अनन्तर जगन्माता सर्व्वधारिणी सर्व्वपावनी तपस्याकी निधि सर्व्वाणी उमादेवीने मुझसे कहा, हे पापरहित कृष्ण! भगवानने तुम्हें शाम्ब नामक पुत्र प्रदान किया। अब तुम निज अभिलषित आठ वर मुझसे मांगो, मैं तुम्हें वर देती हूं। हे पाण्डुनन्दन! मैंने उस समय सिर झुकाके देवीको प्रणाम करके कहा, हे माता! ब्राह्मणोंके विषयमें अक्रोध पिताकी प्रसन्नता, शतपुत्र, परम भोग, कुलमें प्रीति माताकी कृपा, शमप्राप्ति और दक्षताकी मैं प्रार्थना करता हूं।

उमा बोली, हे परमप्रभाव! तुमने जो वर मांगा वह तुम्हें प्राप्त होगा; इसके अतिरिक्त मैं और भी आठ वर देती हूं, मैं कदापि मिथ्या नहीं कहती इसलिये तुम भी महाप्रभावयुक्त होगे और मिथ्या न कहोगे, तुम्हारे सोलह हजार भार्य्या होंगी, उनपर तुम्हारा प्रियत्व और धनधान्य आदिका अक्षयत्व रहेगा, तुम बान्धवोंके निकट परम प्रीति प्राप्त करोगे; तुम्हारे शरीरकी कमनीयता होगी और तुम्हारे गृहमें प्रतिदिन सत्तर सौ अतिथि भोजन करेंगे, मैंने तुम्हें यह आठ वर और प्रदान किया।

श्रीकृष्ण बोले, हे भीमाग्रज भारत! महादेव और देवी इस ही प्रकार चौबीस वर देके उस ही समय निजगणोंके सहित अन्तर्द्धान हुए। हे नृपवर! यह अत्यन्त अद्भुत समस्त विषय पहिले मैंने ब्राह्मणश्रेष्ठ तेजस्वी उपमन्युके समीप वर्णन किया। हे सुव्रत! उन्होंने महादेवको नमस्कार करके कहा।

उपमन्यु बोले, महादेवके समान देवता नहीं है, न महादेवके समान गति है, दानविषयमें महादेवके समान कोई नहीं है और न कोई पुरुष संग्राममें ही महादेवके समान है।

१५ अध्याय समाप्त।

उपमन्यु बोले, हे तात! सत्ययुगमें तण्डि नामसे विख्यात् एक ऋषि था, उस भक्तने दश हजार वर्षतक ध्यान योगके सहारे एकाग्र होकर महादेवकी आराधना की थी, तपस्या पूर्ण होनेपर उन्हें जो फल प्राप्त हुआ वही सुनो, उन्होंने विभु महादेवका दर्शन करके स्तुतियुक्त वचनसे उनका स्तव किया था, तण्डि मुनि तपोयोग निबन्धनसे अव्यय महात्मा परमात्माका इस ही प्रकार ध्यान करके अत्यन्त विस्मय युक्त होकर यह वक्ष्यमाण वचन बोले सांख्यवादी लोग जिस परमप्रधान पुरुष अधिष्ठाता ईश्वरकी स्तुति किया करते हैं, योगीजन जिसका सदा ध्यान करते हैं, ज्ञानी लोग जिसे उत्पत्ति और विनाशका कारण कहते हैं; देवता, असुर और मुनियोंके बीच जिससे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है मैं उस जन्मरहित अनादि निदान सर्व्व शक्तिमान अत्यन्त सुखी पापरहित रुद्रदेवका शरणागत होता हूं। तण्डि मुनिने ऐसा वचन कहते कहते उस अव्यय तपोनिधि अनुपम अचिन्तनीय शाश्वत कूटस्थ निष्कल और निर्गुण गुणगोचर ब्रह्मका दर्शन किया। वही योगियोंका परम आनन्द अविनाशी और मोक्ष संज्ञित है; वही मनु, इन्द्र अग्नि, वायु, जगत और देवताओंका अवलम्ब है। वह अग्राह्य अचल, शुद्ध बुद्धिसे मालूम होने योग्य और मनोमय है। वह दुर्व्विज्ञेय असंख्येय और अकृतात्म लोगोंको दुष्प्राप्य है; वह समस्त जगतकी योनि है, तमोगुणके परे स्थित पुराण पुरुष और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ देवता है, जो आत्माको प्राणविशिष्ट करके उसमें आवृत जीव तथा मनोरूप ज्योति स्वरूपसे स्थित रहता है, उस ही देवके दर्शनकी इच्छा करके तण्डि ऋषि अनेक वर्ष पर्य्यन्त उग्रतपस्या करनेके अनन्तर ईश्वरका दर्शन करके स्तुति करने लगे।

तण्डि बोले, हे अतिमतान्वर! तुम मङ्गल आदि पवित्र पदार्थोंसे भी पवित्र और श्रेष्ठ